राष्ट्रीय संचेतना में डॉ0 हेडगेवार का योगदान

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ0प्र0) में प्रस्तुत

इतिहास विषयान्तर्गत पी–एच0डी0 की उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोध निदेशक:
डॉ0 श्री मोहनलाल श्रीवास्तव
एम0 ए0, डी0 फिल्0
रीडर, एवं अध्यक्ष इतिहास विभाग
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उरई जिला जालौन (उ0 प्र0)

शोधार्थी
ब्रह्मानन्द खरे, एम0 ए0 (इतिहास)
एम.एस–सी. (रसायन विज्ञान)
आत्मज पूर्व प्राचार्य डॉ0 राम स्वरूप खरे
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
5, प्राध्यापक निवास, राठ रोड, उरई
जिला जालौन (उ0 प्र0)

शोध केन्द्र

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई (उ0 प्र0)

अनुक्रमणिका

शोध निदेशक का प्रमाण पत्र

प्रमाण पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुये अत्यन्त हर्ष है कि श्री ब्रह्मानन्द खरे आत्मज युगकवि डॉ० राम स्वरूप खरे पूर्व प्राचार्य, दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई ने मेरे निर्देशन में इतिहास विषयान्तर्गत 'राष्ट्रीय संचेतना में डॉ० हेडगेवार का योगदान' विषय पर अपना मौलिक शोध प्रबन्ध तैयार किया है।

निःसन्देह डॉ० हेडगेवार ने एक ऐसी अभिनव सोच दी जिससे मृतप्राय हिन्दुओं में नवीन प्राणों का संचार हुआ। वे एक युग निर्माता कुशल संगठक और एक महापुरुष थे। उन्होंने अपनी विचारधारा द्वारा कोटि–कोटि व्यक्तियों को प्रभावित करके भारत के नव–निर्माण में अभूतपूर्व योगदान किया है। ऐसे महान पुरुष ही युग को प्रभावित करते हैं एवं इतिहास के निर्माण का काम करते हैं। आपने 'हिन्दु' शब्द की अभिनव अवधारणा दी उनकी इन्हीं सब विचारों का सप्रमाण और सटीक अध्ययन प्रस्तुत किया है शोधार्थी ने अपने इस नवीन शोध प्रबन्ध में। स्वाध्याय, परिश्रम और गम्भीर चिन्तन की झलक मिलती है इसमें। अतएव मैं इस शोध प्रबन्ध को परीक्षणार्थ 'विद्वत्–मण्डल' के समक्ष प्रस्तुत किये जाने की संस्तुति करता हूँ।

SML Srivastava

डॉ० श्री मोहन लाल श्रीवास्तव

शोध निदेशक

प्राक्कथन

संघ के सात वर्ष के पश्चात अर्थात् सन् 1932 ई0 में मेरे पिता श्री का जन्म ग्राम गुढ़ा, जिला झाँसी में हुआ। वहीं उनकी प्राथमिक शिक्षा सम्पन्न हुई। मिडिल की शिक्षा प्राप्त करने वे तहसील के प्रधानास्पद महरौनी आये और वहीं से उन्होंने सन् 1948 ई0 में प्रथम श्रेणी में इलाहाबाद बोर्ड द्वारा मिडिलकी परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्राप्त की तथा गणित एवं आर्ट में विशेष योग्यता भी प्राप्त की। यहीं पर वे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सम्पर्क में आये। तत्पश्चात उन्होंने लगातार बारह वर्ष मध्य प्रदेश में शिक्षा–विभाग में भिन्न–भिन्न जगहों पर कार्य किया और सन् 1966 में वे दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई के हिन्दी विभाग में हिन्दी प्रवक्ता नियुक्त हुये। संघ से आपका सम्बन्ध निरन्तर बना रहा और वे उसके तहसील संघ चालक, जिला कार्यवाह एवं विभाग धर्म जागरण प्रमुख जैसे उत्तर दायित्वपूर्ण पदों का निर्वाह करते रहे। अब भी वे उसके नैष्ठिक कार्यकर्ता हैं।

उरई में ही मेरा जन्म 10–5–1969 में हुआ। वहीं मैंने अपनी प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा प्राप्त की। संघ के तत्कालीन अनेक पदाधिकारी पिता श्री से मिलने आया करत थे। उनकी सेवा का सुअवसर मुझे मिल जाया करता था। इन सबका और पिता श्री के व्यक्तित्व का प्रभाव मुझ पर पड़ना स्वाभाविक था। फलतः मैं 1979 में संघ का बाल स्वयं सेवक बना। पुनः संघ शिक्षा वर्ग (ओ0 टी0 सी0) का प्रथम वर्ष भी अपने पिता श्री के साथ जुगुल देवी विद्या मन्दिर इ0 का0 कानपुर से जून 1983 में पूरा किया और शिवाजी शाखा का मुख्य शिक्षक बना। इस मध्य अनेक पदाधिकारियों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आया और उनके अनेक बौद्धिक सुने। परिणाम स्वरूप डॉ0 हेडगेवार के प्रति अगाध श्रद्धा मन में उत्पन्न हुई। इसी बीच 1988 बी0एस–सी और 1990 में एम0 एस–सी0 करने के उपरान्त इतिहास विषय से 1994 में परास्नातक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली। तभी मेरे मन में यह विचार आया कि क्यों न इस इतिहास–पुरुष के ऊपर शोध किया जाये। मैंने यह बात पिता श्री के सहयोगी आदरणीय डॉ0 श्री मोहनलाल श्रीवास्तव के समक्ष रक्खी।

उन्होंने मेरे प्रस्ताव को स्वीकृति दी और रूपरेखा बनाकर विश्वविद्यालय भेज दी। विश्वविद्यालय की शोध समिति ने "राष्ट्रीय संचेतना में डाक्टर हेडगेवार का योगदान" शीर्षक स्वीकार कर लिया। इसकी जब मुझे सूचना मिली तब मुझे अपार प्रसन्नता का अनुभव हुआ।

मैंने सुविधा की दृष्टि से इस शोध प्रबन्ध को ग्यारह अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय प्रस्तावना से सम्बन्धित है। जिसके अर्न्तगत मैंने स्वंत्रता पूर्व की युगीन परिस्थितियों का आकलन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियाँ उपशीर्षकों में विभाजित करके उनका विश्लेषण करने का प्रयास किया है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति पर उसके युग का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। व्यक्तित्व निर्माण में इन परिस्थितियों का विशेष योगदान रहा करता है।

द्वितीय अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर युगीन परिस्थितियों का प्रथम अध्याय की भाँति ही चारों प्रकार की परिस्थितियों का वर्णन किया है। क्योंकि डॉ0 हेडगेवार साहब का जन्म 1 मार्च सन् 1885 ई0 को हुआ था। परिस्थितियों को देखने का भी अपना–अपना दृष्टिकोण होता है। डॉ0 हेडगेवार की प्राथमिक शिक्षा की एक घटना का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। जब उन्होंने विक्टोरिया के सिंहासनारूढ़ होने के उपलक्ष्य के बाँटी गई मिठाई को यह कहकर फेक दिया था कि यह घटना हम सब भारतीयों का अपमान है जब कि बालक स्वभावतः मिष्ठान प्रिय होते हैं।

तृतीय अध्याय डॉ0 हेडगेवार के पूर्वज के लिये समर्पित है। इसके अन्तर्गत मैंने डाक्टर साहब के जन्म स्थान की खोज करते हुये तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का आकलन किया है। इन विषम परिस्थितियों से यह युग प्रेरक व्यक्तित्व कैसे उभरा। डॉ0 हेडगेवार साहब की क्या आजीविका रही और क्या उनके जीवन में उल्लेख्य घटा। इस पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला है।

चतुर्थ अध्याय 'डॉ0 हेडगेवार के जीवन परिचय को समर्पित किया है। इसके

अन्तर्गत मैंने उनकी जन्मतिथि, उनके भाई–बहन, एवं अन्य परिवारीय जनों के स्वभाव और विचारों का उल्लेख किया है। इसी के अन्तर्गत एक उप शीर्षक में डाक्टर हेडगेवार की शिक्षा और उनके जीवन–उद्देश्य को निरूपित करने का प्रयास किया है।

पंचम अध्याय "डॉ0 हेडगेवार का बहुमुखी व्यक्तित्व" को समर्पित है। इसके अन्तर्गत मैंने राष्ट्रीय स्वयं संघ की स्थापना की चर्चा करते हुये डॉक्टर हेडगेवार की वैचारिक सोच की अवधारणा और उसके द्वारा समाज में हुये अभिनव परिवर्तनों की ओर संकेत किया है। जाति–पाँति विभेद जैसे कुसंस्कारों का डॉक्टर हेडगेवार ने समूलोच्छेदन करते हुये उत्कट राष्ट्र भक्ति और प्रेम की भावना को जन्म दिया। जिससे प्रत्येक स्वयं सेवक अपने को भारत–माता के पावन चरणों में समर्पित करने के लिये सहर्ष प्रस्तुत हो उठा।

षष्ठ अध्याय "आद्य सरसंघ चालक" से सम्बन्धित है। डॉक्टर हेडगेवार कैसे ओर कब आद्य सरसंघ चालक बने। संघ की दैनिक शाखाओं का विचार कैसे उनके मन में आया? संघ की सांगठनिक व्यवस्था कैसे और कब से क्रियान्वित की गई। इन तथ्यों पर प्रकाश डालते हुये संघ के विकास क्रम को दिखलाने का प्रयास किया है।

सप्तम अध्याय 'स्वाधीनता के पश्चात संघ" को समर्पित है। इसके अन्तर्गत द्वितीय सरसंघ चालक माननीय गुरु गोलबलकर की नियुक्ति और शाखाओं का विकास, का विश्लेषण करते हुये स्वयं सेवक की परिभाषा सुस्पष्ट की गई है। पुनश्च तृतीय सर संघ चालक माननीय भाउराव बाला साहब देवरस और चतुर्थ सरसंघ चालक माननीय प्रोफेसर राजेन्द्र सिंह उपाख्य 'रज्जू भैया' के व्यक्तित्व का दिग्दर्शन कराने का प्रयास करते हुये संघ के आनुषांगिक अन्य संगठनों जैसे भारतीय जनता पार्टी, विश्व हिन्दू परिषद्, विद्यार्थी परिषद्, बजरंग दल, विद्या भारती इत्यादि का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

अष्टम अध्याय "डॉ0 हेडगेवार द्वारा संस्थापित संघ का क्रमिक विकास" को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत मैंने संघ की प्रार्थना, एकात्मकता स्त्रोत, प्रातः

स्मरण के महत्व पर प्रकाश डाला है तथा शाखाओं में गाने–जाने वाले राष्ट्रीय गीतों की उपादेयता पर विचार करते हुये संघ द्वारा राष्ट्रीय साहित्य के निर्माण एवं प्रकाशन पर विचार प्रस्तुत किये है क्योंकि इनके द्वारा ही बाल और युवा–वर्ग को उद्बोधित एवं प्रेरित किया जा सकता है।

नवम अध्याय "भारतीय इतिहास की अभिनव संरचना" को समर्पित है। इसके अन्तर्गत मैंने विशिष्ट शोधों द्वारा आंग्ल इतिहासकारों की पूर्वाग्रही सोच का खण्डन करते हुये शुद्ध भारतीय दृष्टिकोण रखने का प्रयास किया है और प्रामाणिक नवीन इतिहास के लेखन को प्रारम्भ करने का सुझाव दिया है जिससे हमारी भावी पीढ़ी वस्तु स्थिति से भली भाँति अवगत होकर स्वयं ही अपने लक्ष्य का निर्धारण करने में पूर्णरूपेण सक्षम हो सके।

दशम अध्याय "डॉ0 हेडगेवार की हिन्दुत्व की अवधारणा" को समर्पित किया है। इसके अन्तर्गत मैंने डॉक्टर हेडगेवार का वह विचार दिया है कि 'भारत में जन्म लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है।' इसी अध्याय के एक उप शीर्षक के अन्तर्गत "हिन्दू" शब्द की व्युत्पत्ति देते हुये 'भारत हिन्दू राष्ट्र है' इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। पुनश्च यह प्यारी भारत–भूमि हम सब की असीम वात्सल्यमयी माता है और हम सब उसकी प्यारी सन्तान हैं। अतएव हम सब का कर्त्तव्य हो जाता है कि अपने–अपने प्राण–प्रसून चढ़ाकर भी उसके ऋण से उऋण होने का प्रयास करें और इस गीत की पंक्ति को सार्थकता प्रदान करें कि –"तेरा वैभव अमर रहे माँ, हम दिन चार रहें न रहें।" यह भारत पुनः विश्वगुरु के पद पर आसीन हो समूचे संसार को 'बसुधैव कुटुम्बकम्' के मन्तव्य को समझाने में सफलीभूत हो।

एकदश अध्याय 'उपसंहार' से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध का सार–संक्षेप देते हुये "राष्ट्रीय संचेतना में डॉ0 हेडगेवार के योगदान पर प्रकाश डाला है। वास्तव में डाक्टर हेडगेवार एक इतिहास पुरुष ही नहीं वरन् वे एक युगदृष्टा और युग सृष्टा महामनीषी भी थे। उनका उत्कट योगदान अविस्मरणीय एवं चिरस्मरणीय रहेगा,

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

इसके पश्चात इस शोध प्रबन्ध में चार परिशिष्ट भी है। प्रथम परिशिष्ट में डॉ0 हेडगेवार साहब की जन्म कुण्डली, द्वितीय परिशिष्ट में उनकी हस्तलिपि, तृतीय परिशिष्ट में कुछ प्रमुख चित्र एवं चतुर्थ परिशिष्ट में अखण्ड भारत की अवधारणा को प्रदर्शित करते हुये भारत का मानचित्र अंकित है। इन सभी परिशिष्टों के पूर्व सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पत्र–पत्रिकाओं की सूची अकारादिक्रम से देने का प्रयास किया गया है। यदि मुझे अपने विद्वान निदेशक डॉ0 श्री मोहन लाल श्रीवास्तव रीडर एवं विभागाध्यक्ष का पितृतुल्य स्नेह और शुभाशीष प्राप्त न होता तो यह शोध प्रबन्ध का स्वप्न अधूरा ही रहता। उनके प्रति सश्रद्ध कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

अपने पिता श्री युगकवि डॉ0 राम स्वरूप खरे एवं असीम वात्सल्यमयी माता श्री मती कमला देवी के अशेष शुभाशीषों ने मुझे समय–समय पर जो प्रेरणा और कार्य करने की क्षमता प्रदान की, उसे कभी भी विस्मृत नहीं कर सकता। उन दोनों के चरण–कमलों में श्रद्धावनत हूँ। श्री ब्रजेश कुमार (फरीदाबाद) श्री राजेश कुमार (भरतपुर) श्री शतमन्यु (भोपाल) आदरणीय ताऊ श्री जमुना प्रसाद जी, ताई श्री मती कृष्णा देवी की अपार कृपा मेरे ऊपर रही उनके शुभाशीषों की भावी जीवन में भी अपेक्षा रहेगी। सबसे बड़ी भगिनी श्री मती स्नेहलता और बहनोई साहब श्री सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव, श्री मती सुषमा, बहनोई श्री वीरेन्द्र श्रीवास्तव, श्री मती अर्चना एवं बहनोई श्री संजय श्रीवास्तव को भी किसी प्रकार विस्मृत नहीं किया जा सकता। इन सबकी कृपा को भी किसी प्रकार विस्मृत नहीं किया जा सकता इन सबकी कृपा और मंगल आशीष से मैं सदैव सिक्त होता रहा हूँ। प्रिय अनुजा कु0 अपर्णा की साध आज पूरी हुई। क्यों कि वह मेरे नाम के पूर्व भी अन्य भ्रातजनों की भाँति 'डाक्टर' शब्द जुड़ा देखना चाहती थी।

मेरे अग्रज श्री सर्वेश कुमार प्राध्यापक हिन्दी, दयानन्द सुभाष नेशनल स्नाकोत्तर महाविद्यालय उन्नाव, श्री अतुल कुमार स्वामी दर्पण प्रकाशन नडियाड (गुजरात) श्री देवेश

कुमार (आकाशवाणी, लखनऊ) और भाभियों में श्रीमती शशि, श्रीमती उमंग श्री मती रंजना, श्रीमती रश्मि, श्रीमती सीमा एवं श्री मती आभा का जो स्नेह–शुभाशीष प्राप्त हुआ उसी के बल पर मैं यह कण्टकाकीर्ण पथ सफलता पूर्वक पूर्ण पूरा कर पाया।

अपनी जीवन संगिनी श्रीमती सीता, उनके पिता महाकवि एवं पिंगल शास्त्री मायाहरीश्याम 'पारथ' उनकी माता श्री माया देवी, उनके तीनों भाई श्री राहुल, विवेकानन्द, नारायणदास एवं उनकी भाभियाँ श्री मती सुमन, श्रीमती सविता, श्री मती कुमुदिनी एवं मेरे साढ़ू भाई श्री अतुल पुष्पार्थी का स्मरण आना स्वाभाविक है। इन सबकी शुभेच्छायों ने मेरे शोघ–मार्ग को प्रशस्त किया। इन सभी के प्रति उपकृत हूँ।

जाने–अनजाने जिन महानुभावों ने मुझे इस शोध–लेखन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जो सहायोग प्रदान किया, उन सबको हार्दिक धन्यवाद!

ब्रह्मानन्द खरे

समर्पण

जिन्होंने मुझे घुटनों के बल
उँगली पकड़ कर चलना सिखाया
सम्यक् शिक्षा देकर
मेरे ज्ञान–चक्षुओं को उन्मीलन किया
एवं
कठिन परिश्रम तथा अपने दुख की चिन्ता न करते हुये
मेरी सुविधाओं का ध्यान रक्खा
अपने ममत्व की एक ऐसी दीप–शिखा प्रज्ज्वलित की
जिसके आलोक में
मैंने अपने भावी–पथ एवं गंतव्य का निर्धारण किया
उन्हीं
असीम वात्सल्यमयी जननी
श्रीमती कमला देवी खरे
एवं आदर्शो की प्रतिभूर्ति मेरे श्रद्धास्पद पिता श्री
युगकवि डॉ0 राम स्वरूप खरे
पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं प्राचार्य
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यलाय, उरई
के कर–कमलो में
सश्रद्ध समर्पित है प्रस्तुत शोध–कृति

ब्रह्मानन्द खरे

प्रथम अध्याय

स्वातंत्र्यपूर्व युगीन परिस्थितियाँ

सामाजिक परिस्थितियाँ

राजनीतिक परिस्थितियाँ

आर्थिक परिस्थितियाँ

ऐतिहासिक परिस्थितियाँ

प्रथम अध्याय

"प्रत्येक युग समाज की विभिन्न परिस्थितियों का एक प्रामाणिक दस्तावेज होता है। इन्हीं परिस्थितियों से युगीन इतिहास के भव्य–भवन की नींव का शिलान्यास किया जाता है। यदि नींव सुदृढ और कुशलता से भरी जाती है तब उस पर निर्मित होने वाला भव्य भवन भी चिर स्थायी और आकर्षक होता है। उस पर चमचमाते हुए उन सुखद सौधों पर स्वर्ण–शिखर सबका मन मोह लेते हैं। युग–युगों तक ऐसे भव्य और दिव्य भवन अपनी कीर्ति विकीर्ण करते रहते हैं।

जहाँ परिस्थितियाँ समाज को प्रभावित करती हैं वहीं समाज भी उनका जन्मदाता बन जाता है। तत्कालीन वातावरण और विचार सभ्यता, साहित्य और संस्कृति के क्रमशः सोपान बनकर इतिहास का निर्माण करने में सक्षम होते हैं। आशय यह कि सभ्यता संस्कृति और साहित्य जहाँ इतिहास विनिर्मित करते हैं वहाँ इतिहास में भी इनकी उत्तमोत्तम छवियाँ विद्यमान रहती हैं। इस प्रकार इतिहास और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध सदैव बना रहता है। इसी अर्थ में इतिहास का विभिन्न सामाजिक विषयों से ही नहीं वैज्ञानिक विषयों से भी उसका सम्बन्ध अटूट सिद्ध होता है। साहित्य, मनोविज्ञान, कला, संस्कृति, भूगोल, इतिहास, पुरातत्व, विज्ञान, अर्थ शास्त्र, राजनीति, समाज शास्त्र, आध्यात्म प्रभृति विषय तिल–तण्डुल की भाँति एक दूसरे में समाविष्ट रहते हैं।

1857 ई0 का स्वतंत्रता का महासमर इन तथ्यों को पूरी तरह उजागर करता है। अत्याचार और दमन की भी अपनी एक सीमा होती है। सीमा के परे जाने पर विप्लव की चिनगारियों का फूट पड़ना स्वाभाविक है। विषम और विद्वेष पूर्ण व्यवहार क्रान्ति के बीज बोते हैं और क्रमशः अंकुरित होकर पौधे के रूप में आँधी–तूफानों में झूमते हुए भी वृहद वृक्ष का आकार धारण कर लेते हैं। ऐसे विशालतम् वृक्ष शीत, घाम और वर्षा का प्रकोप सहकर भी पल्लवित पुष्पित और फलित होते हैं।

अत्याचार और अनीति तथा 'फूट डालो और राज्य करो' के अंग्रेजीय सिद्धान्त ने

भारतीय जन–मानस को विक्षुब्ध कर रक्खा था। डच, पुर्तगाली, फॉसीसी इत्यादि के आगमन से लूट–खसोट की भावना और प्रबल होती चली गई। इन सबने अपना–अपना स्वार्थ साधन करते हुए भारत को मात्र एक चरागाह समझा, सोने की चिड़िया समझा और अपने–अपने मन्तव्य पूरे किये। जिस प्रकार अन्धकार सदैव नहीं रह सकता, उसके पश्चात् प्रभात का आना निश्चित होता है ठीक उसी प्रकार अत्याचार और अत्यन्त वर्वर दुर्दमनीय नीतियाँ भी सदैव नहीं टिक पातीं। जागरण का उद्घोष होने पर जन–जन के मन में नवीन आशाओं का सुखद प्रभात उदित होने लगता है। दृढ़ लगन, अदम्य इच्छा और अशेष परिश्रम तथा अपराजेय साहस के विचार ही क्रान्ति की पतायें बनकर असीम व्योम में लहर उठते हैं।" संघ संस्थापक, डॉ0 हेडगेवार, डॉ0 राम स्वरूप खरे, भूमिका भाग से पृष्ठ, 2

सन् 1885 ई0 में राष्ट्रीय कॉग्रेस का प्रादुर्भाव एक ऐसी ही स्मरणीय घटना है।

"भारत में भारतीयता की भावना पैदा हुई, इसलिये नहीं कि ब्रिटिश शासन इसे पैदा करना चाहते थे, वह इसलिये नहीं बढ़ी कि वे इसे बढ़ाना चाहते थे। राष्ट्रीय भावना इसलिये पैदा हुई और बढ़ी कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी भारत को बुरी तरह से लूट रहे थे और भारत की गरीबी का मूल कारण वे ही थे जो कि चरम सीमा तक जा पहुँची थी।"[1]

सामाजिक परिस्थितियाँ– भारत में समाज और धर्म, परिवर्तन के कई दौरों से गुजरें हैं। उजाले और अंधेरें के लम्बे इतिहास में यदि प्रगति, पुनरुत्थान और सुधार के दौर आये हैं तो अवनति, विघटन, और ह्रास के युग भी आये।

अंग्रेजों के प्रभुत्व के साथ ही भारत में राजनीतिक अव्यवस्था का जो दौर शुरू हुआ उससे समाज को अस्थिरता और असुरक्षा के दौर से गुजरना पड़ा और उसके अंदर एक प्रकार की जड़ता आ गई। जो कमजोर थे उन पर बलवान अपनी धौंस जमातें, गरीबों का दमन हो रहा था, राह चलतों को लूटा जा रहा था और सभी ओर अराजकता का तांडव नृत्य हो रहा था।"[2]

उस समय निःसन्देह भारतीय समाज राजनीतिक घटनाओं के प्रति उदासीन रहा और आगे कठिन राजनीतिक समय के प्रभावों को उन्होंने भाग्यवादी बनकर झेला। उनकी इस उदासीनता के बड़े दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम निकले। भारतीय समाज और भी छोटे दायरे में सिमट गया और उनका सामाजिक जीवन अधिकाधिक जड़ और निष्क्रिय बन गया। सामाजिक व्यवस्थाओं, परम्पराओं और प्रभावों ने कठोर तथा ठोस रूप धारण करना शुरू कर दिया। इसका एक मुख्य कारण था धर्मों का और अधिक रूढ़िवादी हो जाना।"[3] समाज का धार्मिक दृष्टिकोण लकीर का फकीर बन गया। धर्म का मतलब था कड़े नियम और प्रतिबन्ध, यानी क्या खाओ और क्या न खाओ, किसे छुओ और किस से दूर रहो, किस तरह के बर्तन में कहाँ खाना पकाओ या खाओ"[4] धार्मिक शुद्धता बनाये रखने के लिये लोग एक दूसरे के प्रति सामाजिक रूप से असहिष्णु हो गये थे।

एकेश्वरवाद और 'सर्व खल्विंद ब्रह्म' के सिद्धान्त वाले सर्वेश्वरवाद में विकास और आस्था रखने वाले लोग थे, लेकिन अधिकांश लोग बलि, झाड़–फूँक, जादू–टोने विभिन्न पूजाओं और तांत्रिक क्रियाओं आदि में विश्वास रखते थे।

दूसरी तरफ 17वीं शताब्दी में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच उपजा वैमनस्य 20 वीं शती के मध्य तक चलता रहा। दोनों प्रमुख सम्प्रदायों को सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में आपसी सद्भाव के स्थान पर एक दूसरे से अलग–थलग रहने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई। मुस्लिम समाज अपनी ही रूढ़ियों के दायरें में सिमट गया।"[5]

जब धर्मों ने आंतरिक सत्य से अधिक बाह्यरूपों को महत्त्व देना शुरू किया तो धार्मिक अंधविश्वास, सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं पर छाने लगे। पंडित वर्ग धर्मग्रन्थ के आध्यात्मिक मूल्यों को महत्त्व नहीं देते थे। लेकिन समाज उनक आदेशों का पालन करता था।"[6] ये वर्ग किसी भी सामाजिक बुराई को शास्त्रोचित बताकर इसे धार्मिक कार्य का रूप दे सकते थे। बाल–बध, बाल–विवाह, बहु–विवाह, विधवाओं को जीवित जला देना आदि अन्य सामाजिक बुराईयों को शास्त्रोचित और धार्मिक क्रियायें करार दे दिया

गया। इसी प्रकार जात–पाँत, अस्पृश्यता, महिलाओं को पर्दे में रखने और गुलाम प्रथा जैसी सामाजिक प्रणालियाँ शास्त्रोंचित समझी गई।"[7] इसलियें उन्हें विधि सम्मत और गौरव की बात मान लिया गया।

प्रारम्भ में अंग्रजों का मानना यह था कि भारत पर शासन करने के लिये भारतीयों से सामाजिक दूरी बनाये रखना आवश्यक है। इस कारण अंग्रेजों ने भारतीय दुर्व्यवस्था को दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। लेकिन ऐसी विषम परिस्थितियों में भी कुछ ऐसी ऐतिहासिक शक्तियाँ सक्रिय थीं जिसमें भविष्य में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आने वाले थे। ये शक्तियाँ दो प्रकार की थी। पहली शक्ति पश्चिम की आधुनिक संस्कृति के भारत पर प्रभाव से अवतरित हुई। दूसरी शक्ति का जन्म इस सम्पर्क के खिलाफ भारतीय जनता की प्रतिक्रिया से हुआ।"[8] इन दोनों शाक्तियों के सम्मिलित प्रभाव से 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में एक ऐसे आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ और सम्पूर्ण भारत में एक ऐसी जागृति आई जिसे विद्वानों ने भारतीय पुनर्जागरण के नाम से पुकारा है।"[9]

अंग्रेज व्यापारियों के साथ आये धर्म प्रचारकों के कारण भारतीय पुनर्जागरण को काफी बल मिला। पहला अनेक प्रयत्नों से देश में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ जिससे पाश्चात्य ज्ञान एवं विचार भारतीयों तक पहुँचने लगे और उनमें जागरण की चिन्तनधारा फूटने लगी। दूसरे जब ईसाई मिशनरियों ने भारतीयों को ईसाई बनाना शुरू किया तो इसके विरुद्ध भारतीय समाज की तीखी प्रतिक्रिया हुई और सभी अपने धर्मों की रक्षा के प्रयत्न में जुट गये।"[10]

भारतीय पुनर्जागरण लाने में उन कतिपय यूरोपीय विद्वानों का भी हाथ था जो भारत की प्राचीन संस्कृति की उपलब्धियों से प्रभावित थे। वे चाहते थे कि भारत का वह गौरवमय अतीत पुनः वापस आये और भारत का सामाजिक एंव सांस्कृतिक विकास हो। ऐसे यूरोपीय विद्वानों में विलियम जोन्स का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने 1784 ई0 में

कलकत्ता में 'एशियाटिक सोसायटी'[11] की स्थापना की। इस सोसायटी के विद्वानों ने खोज निकाला कि प्राचीन काल में भारत ने एक ऐसी महान सभ्यता को जन्म दिया था जो संसार की महानतम् सभ्यताओं में से एक थी।''[12]

19 वीं शती के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजी शासन की अपनी कुछ आवश्यकताओं के चलते अंग्रेजो ने भारतीयों के सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में अपनी प्रारम्भिक अहस्तक्षेप की नीति को धीरे–धीरे समाप्त करना शुरू किया। जवाहरण लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'भारत एक खोज'[13] में लिखा–भारत के प्रतिक्रियावादियों के साथ इस स्वाभाविक गठजोड़ के कारण ब्रिटिश शासन अनेक बुरी प्रथाओं और कर्मकाण्डों का रक्षक तथा सार्थक बन गया। हालांकि वह इसकी निन्दा करता है। समाज सुधार के सम्बन्ध में ''अंग्रजों की स्थिति' एक तरफ कुँआ दूसरी तरफ खाई, वाली थी।'' अंग्रेज इस सम्बन्ध में पूरी तटस्थ भी नहीं रहे, बल्कि सामाजिक बुराइयों को संरक्षित भी किया। राजनीतिक लाभ के लिये जातिवाद तथा साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहित करना उनकी इसी नीति का परिणाम था।

समाज जैसे जीवित अवयव में 'पुनर्जीवन' का सवाल नहीं उठता अतः उसकी उन्नति के लिये 'सुधार ही एक मात्र विकल्प है।''[14] अतः सुधारों के सम्बन्ध में विचार में परिवर्तन आवश्यक हो गया। अब अतीत पर अनावश्यक निर्भरता के बजाय मानव, विवेक, तर्क और समसामयिक उपयोगिता को ही सुधारों का आवश्यक आधार माना गया।

सबसे पहले सामाजिक सुधार की जागृति बंगाल से प्रारम्भ हुई। सामाजिक सुधारकों ने सुधार के लिये कई प्रणालियों का प्रयोग किया। प्रथम आंतरिक सुधार प्रणाली की शुरूआत राजा राम मोहन राय द्वारा की गई। इस प्रणाली के सुधारकों का यह विश्वास था कि किसी भी सुधार को प्रभावशाली होने के लिये यह आवश्यक है कि वह समाज के अन्दर से ही हो अर्थात् लोगों के अंदर जागरूकता की भावना पैदा हो। यह कार्य सुधारकों ने साहित्य प्रकाशन द्वारा तथा विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर परिचर्चा का आयोजन इत्यादि करके किया। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा (1829) के विरुद्ध

प्रचार किया। इसी प्रकार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा विधवा विवाह तथा मालावारी द्वारा विवाह के न्यूनतम आयु बढ़ाने का प्रयास आदि कार्य किये गये।"[15]

दूसरी प्रणाली कानूनी हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव लाने के विश्वास पर आधारित थी। बंगाल के केशव चन्द्र सेन, महाराष्ट्र के रानाडे, तथा आंध्र प्रदेश में वीरेन्द्र लिंगम जैसे सुधारकों का मानना था कि सुधार के प्रयास तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक कि उन्हें राज्य का कानूनी सहयोग प्राप्त न हो। इसलिये इन नेताओं ने विधवा विवाह, विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाना जैसे सुधारों के लिये कानूनी सहयोग की माँग की।[16]

तीसरी प्रणाली प्रतीकात्मक बदलाव लाने की थी। इस प्रणाली से सुधारात्मक प्रयास करने वाले लोगों ने परम्पराओं रूढ़ियों आदि का बहिष्कार किया और समाज की पुरानी मान्यताओं के खिलाफ विद्रोह किया। इन सुधारकों पर पश्चिमी विचारधारा का बहुत अधिक प्रभाव था। उन्होंने सामजिक समस्याओं के प्रति समझौता न करने वालों की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया।

यह प्रवृत्ति हेनरी विवियन डेरोजियों के यंग बंगाल आंदोलन तक ही सीमित थी। इनका नारा था— वह जो तर्क नहीं करेगा, धर्मान्ध है, वह जो नहीं कर सकता, वेवकूफ है और जो नहीं करता गुलाम है।"[17]

चौथी प्रवृत्ति सामाजिक कार्यों के द्वारा सुधार की थी, जैसे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, अलीगढ़ आन्दोलन की गतिविधियों से स्पष्ट है। इन लोगों का मानना था कि बुद्धिजीवियों के बौद्धिक चिंतन का तब तक कोई अर्थ नहीं है। जब तक कि उसका व्यवहार में प्रयोग न हो। जैसे प्रो० कर्वे ने विधवा विवाह की वकालत के लिये प्रवचनों तथा किताबों का प्रकाशन करके ही खुश नहीं थे, बल्कि उन्होंने अपने आपको विधवा से विवाह कर इस समस्या से एकरूप कर लिया।

20वीं शताब्दी में पश्चिमी शिक्षा की प्रगति और राजनीतिक चेतना बढ़ती जाने से देश में एक नया वातावरण पैदा हो गया। सामाजिक समस्याओं को समुचित महत्त्व देने

के काम में समाचार–पत्रों ने भी लाभकारी योग दिया। जिन विधान–मण्डलों में भारतीय निर्वाचित होकर पहुँचे वे जन आवश्यकताओं पर विचार के मंच बन गये और अंत में स्वाधीनता प्राप्ति के साथ ही सामाजिक समस्याओं पर पूरी तरह नये दृष्टिकोण से देखा जाने लगा।[18]

1893 में कर्वे ने पूना में एक विधवा आश्रम स्थापित किया। जिसमें विधवाओं को जीविकोपार्जन का साधन प्रदान किया जाता था। 1906 में कर्वे के सहयोग से बम्बई में भारतीय महिला विश्वविद्यालय स्थापना की।[19]

1872 के Native marriage act के प्रभावशाली न होने के कारण पारसी सुधारक बी. एम. मालाबारी के प्रयत्नों के फलस्वरूप 1891 में Age of condrny act पास हुआ जिसमें 12 वर्ष से कम आयु की कन्याओं के विवाह पर रोक लगा दी गई।''[20] भारत सरकार ने बाल–विवाह के विरुद्ध सबसे महत्त्वपूर्ण कदम 1930 में उठाया। उस वर्ष हरविलास शारदा के प्रयत्नों से बाल–विवाह निरोधक कानून पास हुआ, जिसे 'शारदा एंक्ट' के नाम से जाना जाता है।[21]

स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार के लिये प्रायः सभी तात्कालिक सुधार आन्दोलनों ने प्रयत्न किया। स्त्री–शिक्षा के प्रसार में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की देन महान थी। वे बंगाल के कम से कम 35 बालिका विद्यालयों से सम्बन्धित थे। 1879 में बैथुन कालेज प्रथम महिला कांलेज बना यही पर 1883 में कादम्बनी गांगुली और चन्द्रमुखी बोस भी पहली स्नातिका बनी।[22]

जब बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय आन्दोलन ने जोर पकड़ा तो इससे नारी मुक्ति आन्दोलन को काफी बल मिला। स्वतन्त्रता संग्राम में औरतों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। यहाँ तक कि वे क्रान्तिकारी आन्दोलनों में भी सरीक हुई। महिलाओं ने किसान आन्दोलनों और ट्रेड यूनियन आन्दोलनों में भी भाग लिया और 1927 में 'अखिल भारतीय महिला सभा'[23] की स्थापना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। 1937 के हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिकार

कानून 18 में स्त्रियों को कुछ निश्चित परिस्थितियों में आर्थिक दर्जा प्रदान कराने का प्रयत्न था।"[24] देश में नारी आन्दोलन के उद्भव और विकास से नारी मुक्ति–आन्दोलन की प्रक्रिया बहुत तेज हो गई। इस तीव्रता को बढ़ाने के लिये गाँधी जी, नेहरू सरदार बल्लभ भाई पटेल एनीबेसेण्ट, सरोजनी नायडु, आदि लोगों ने बहुत सहयोग किया।

1950 के भारतीय संविधान ने महिलाओं और पुरुषों को बराबरी का दर्जा दिया। 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ने लड़की को पिता की सम्पत्ति का उसके पुत्र के साथ बराबरी हकदार करार किया। संविधान ने पुरुष और स्त्री दोनोंके लिये बहु विवाह निषिद्ध कर दिया। दहेज प्रथा को भी समाप्त करने का प्रयत्न किया गया है।"[25] हालाकिं इस दिशा में अब तक बहुत सफलता नहीं मिली है।

अंग्रेजी प्रशासनिक व्यवस्था के साथ भारत में कानून का शासन और कानून के सम्मुख समानता के सिद्धान्त का प्रवेश हुआ। इससे सामाजिक समानता को बल मिला, जातिवाद और असमानता की भावना को धक्का लगा। राष्ट्रीय अन्दोलन जब प्रारम्भ हुआ तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये जातीय भेद भाव की समाप्ति और व्यापक सामाजिक समता अनिवार्य शर्त बन गये। इस प्रकार शुरू से ही राष्ट्रीय कांग्रेस ने सभी जातिगत विशेषाधिकारों और छुआछूत का विरोध किया तथा सभी भारतीयों के लिये समान नागरिक अधिकार, जाति–धर्म लिंग के भेद–भाव के बिना सभी को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये समान अधिकार एवं स्वतंत्रता की माँग की।"[26]

इस दिशा में विशेषकर छुआछूत समाप्त करने और दलित एवं अछूत वर्ग के उद्धार के लिये गाँधी ने भी भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने अछूतों को हरिजन अर्थात् भगवान का आदमी और कालिपराज[27] या अश्वेतजन को उजली पराज/ रानी पराज कहा। उन्होंने उनकी भलाई के लिये हरिजन नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला और 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की।

सामाजिक जाग्रति और शिक्षा के प्रसार से नीची जातियों में भी जाग्रति आई। उन्हें

मौलिक मानव अधिकारों का ज्ञान हुआ और वे स्वयं अपने अधिकारों की रक्षा के आगे आये। ऐसे आन्दोलन के नेताओं में डॉ० भीम राव अम्बेडकर[28] का नाम उल्लेखनीय है। वे आजीवन जाति प्रथा के खिलाफ विशेषकर ऊँची जातियों की नीची जातियों पर मनमानी के विरूद्ध लड़ते रहे। अपने उद्‌दश्यों की प्राप्ति के लिये उन्होंने 'ऑल इण्डिया डि प्रेस्ड क्लास फैडरेशन' की स्थापना की। दक्षिण भारत में जातीय कट्‌टरता और छुआछूत अपनी चरम सीमा पर था। 1920 के बाद वहाँ गैर–ब्राह्मण जातियों ने एक 'सेल्फ रेसपेक्ट आन्दोलन' चलाया और अपनी स्थिति सुधारने की कोशिश की। मंदिर में प्रवेश और ऐसे ही अन्य निषेधों के खिलाफ उन्होंने अनेक सत्याग्रह किये। जिनमें प्रमुख श्री नारायण गुरु थे उनका प्रमुख नारा 'मानव के लिये एक धर्म, एक जाति, तथा एक ईश्वर।''[29] ज्योतिराव फुले ने 1873 में सत्य शोधक समाज की स्थापना की उनका उद्‌देश्य था कि समाज के कमजोर वर्ग को सामाजिक न्याय दिला सके।[30]

इन सबके बावजूद भी स्वतन्त्रता प्राप्ति तक इस दिशा में सरकार का सहयोग न मिलने के कारण जातीय कट्‌टरता एवं अस्पृश्यता का अंत नहीं हो पाया। भारत की स्वाधीनता के साथ ही सदियों से चली आ रही भयंकर सामाजिक बुराई अस्पृश्यता को तुरन्त समाप्त करने के लिये कदम उठाये गये। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17[31]में अस्पृश्यता खत्म की जाती है और किसी भी रूप में इसके पालन की मनाही की जाती है। 1950 के जातीय अयोग्यता उन्मूलन कानून 21[32] में व्यवस्था है कि जाति से बाहर कर दिये जाने पर किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति छीनी नहीं जा सकती या उसे उत्तराधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

सामाजिक कानूनों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि आम तौर पर समाज से किस प्रकार का सहयोग मिल रहा है। यह सहयोग किस हद तक मिलेगा। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि लोगों का मानसिक और शैक्षणिक विकास कितना हुआ है। 20वीं शताब्दी के बाद के वर्षों में सामाजिक उदारता में काफी तेजी हुई है, लेकिन आंतरिक

रूप से सामाजिक चेतना इतनी बढ़ गई है कि अब ये प्रंणालियाँ और प्रथायें बेकार हो चुकी हैं।

राजनैतिक परिस्थितियाँ— 1 नवम्बर 1858 को अंग्रेजी सरकार ने एक उद्घोषणा कर कम्पनी का राज्य औपचारिक रूप से समाप्त कर दिया तथा भारत के 10 करोड़ निवासियों पर सीधा प्रशासन आरम्भ किया। इस घोषणा में कम्पनी के समस्त सैनिक तथा असैनिक, पदाधिकारियों की अपने–अपने पदों पर नियुक्ति की पुष्टि की गई तथा इनके सम्बन्ध में बने हुये समस्त कानून तथा नियम जो बने हुये थे अथवा आने वाले समय में बनाए जाने थे उनके इन सब पर लागू रखने का वचन था।[33]

शनैः शनैः क्राउड का आधिपत्य स्थापित होने लगा। इसी के चलते ब्रिटिश संसद ने एक राज–उपाधि अधिनियम पारित किया जिससे महारानी विक्टोरिया को कैसर–ए–हिन्द की उपाधि से विभूषित किया। इसी समय 1876–78 में भारत में पड़े भीषण अकाल के समय दिल्ली दरवार का भव्य आयोजन भारतीयों के गले नहीं उतरा। रमेश चन्द्र दत्त का मानना है कि लगभग 50 लाख लोग 1 वर्ष में मारे गये।[34] परन्तु विक्टोरिया की ताजपोषी ने अंग्रजो के समक्ष भारत के दारिद्रय को नगण्य कर दिया। 1899 में लार्ड कर्जन ने वायसराय पद सम्भाला। इस समय 1896–97 के अकाल और उसके पश्चात् फैली प्लेग ने समस्यायें उत्पन्न कर दी थीं। परिवर्तनशील समय की पुकार थी कि प्रशासन व्यवस्था में कायापलट होनी चाहिए। राज वातावरण अत्यन्त शोचनीय था। पुनर्जाग्रत भारत अंगेजो के शासन करने के अधिकार को चुनौती दे रहा था। बढ़ते हुये यूरोपीय साम्राज्यबाद में भारत की रक्षा की समस्या नए परिमाण प्राप्त कर रही थी। कर्जन जानता था कि प्रशासनिक व्यवस्था को शीघ्रतिशीघ्र और पूर्णतया सुधारना आवश्यक है लण्डन में 1904 में उसने एक बार कहा था–प्रत्येक देश के इतिहास में एक ऐसा समय आता है जब प्रशासनिक व्यवस्था को पूर्णतया टुकडे–टुकडे करके समय के अनुकूल उसकी कायापलट और पुनर्गठन का होना आवश्यक हो जाता है।[35] कर्जन ने 1902 में सर एण्ड्रयू फेजर की

अध्यक्षता ने एक पुलिस आयोग नियुक्त किया ताकि प्रत्येक प्रान्त के पुलिस प्रशासन की जाँच हो सके। 1903 में आयोग की रिपोर्ट पर कर्जन ने कहा–इससे अधिक स्पष्ट और लाभदायक रिपोर्ट भारत सरकार के सम्मुख कभी भी प्रस्तुत नहीं की गई। रिपोर्ट में पुलिस दल को सर्वथा अक्षम, प्रशिक्षण व संगठन की दृष्टि से दोषपूर्ण, अपर्याप्त रूप से निरीक्षित, भ्रष्ट और दमनकारी और जनता का सहयोग और विश्वास प्राप्त करने में पूर्णतया असफल बताया गया था। इनके सुझावों में से अधिकतर स्वीकार कर लिये गये और कार्यान्वित किये गये। इसके फलस्वरूप पुलिस का व्यय 1898 में 21,17, 000 पौण्ड से बढ़कर 1908–09 में 32,12,189 पौण्ड हो गया। इसके अतिरिक्त भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता को पूर्णतया संशोधित कर दिया गया। परन्तु फसलों में देरी को कम करने के लिये कुछ नहीं किया गया। कर्जन के कार्यों की चरम सीमा बंगाल को दो भागों में विभाजित करना था। उसने गोपनीय पत्र में 17फरवरी 1904 को भारत सचिव को लिखा था–ये बंगाली अपने आपको एक राष्ट्र मानते है और वे उस समय का स्वप्न ले रहे है जब अंग्रेज यहाँ से निकाल दिये जा चुके होंगे और कलकत्ता के राजभवन में एक बंगाली बाबू बैठा होगा वे लोग निश्चय ही अपने इस स्वप्न की साकार करने में किसी बाधा को उपस्थित करने को अच्छा नहीं मानते। यदि हमने इस समय तनिक भी शिथिलता दिखाई और उनके शोर से हम पीछे हट गए तो हम बंगाल को पुनः कभी भी जीतने में सफल नहीं होंगे और आप भारत के पूर्व भाग में उन शक्तियों को दृढ़ कर रहे होंगे जो हमारे लिये भविष्य में निश्चय ही कष्ट दायक सिद्ध होंगी।[36] प्रशासनिक दृष्टि से यह विभाजन कितना ही न्याय संग क्यों न हो परन्तु यह कर्जन की सबसे बडी भूल थी। अतः 1911 में यह विभाजन रद्द कर दिया गया। कर्जन की साम्राज्यवादी व प्रतिक्रियावादी नीति ब्रिटिश शासन के प्रति विरोध उत्पन्न कर रही थी। उसने कलकत्ता नगर निगम को पूर्ण सरकारी प्रभाव के अधीन बना दिया तथा सन् 1899 में निगम की सदस्य संख्या एक तिहाई कम करके यूरोपीय लोंगोको बहुमत दे दिया।[37] इस विकट परिस्थिति से निपटने हेतु 1909 अधि0 पारित किया गया।

इससे पूर्व अगसत 1907 में दो भारतीयों ko G Gipt तथा सैय्यद हुसेन बिलग्रामी भारत राज्य सचिव की परिषद् के सदस्य नियुक्त किये जा चुके थे और 1909 में फिर श्री सत्येन्द्र सिंह वाइसर की कार्यकारिणी के सदस्य नियुक्त किये गये। यद्यपि उन्हें केवल विधि विभाग ही दिया गया 1909 अधिनियम के प्रमुख प्रावधान–

1–वैधानिक कार्य के लिये ग0ज0 की कार्यकारी परिषद् में अतिरिक्त संख्या बढ़ाकर 60 कर दी गई।

2 अतिरिक्त सदस्यों का व्यौरा–
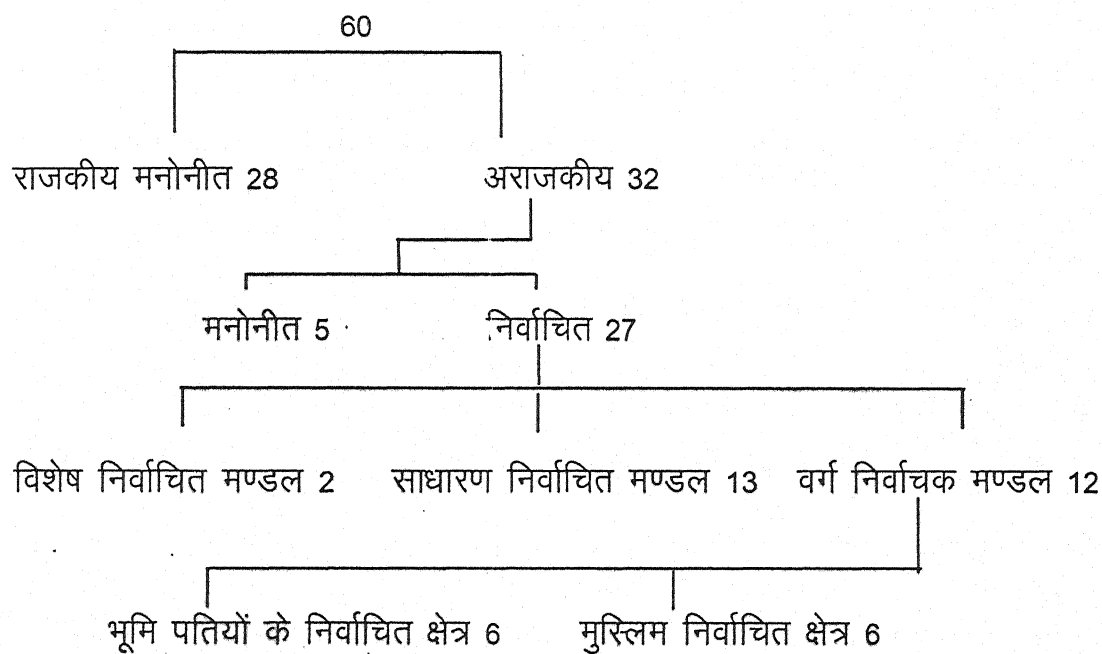
3–केन्द्रीय विधान परिषद् की कुल संख्या 69 कर दी गई 60 अतिरिक्त सदस्य +7 कार्यकारी पार्षद +ग0ज0 + प्रधान सेनापति।

4–अतिवादी नेताओं को बाहर रखने के उद्देश्य से यह निश्चित किया गया कि वे लोग जिन्हें कोई जेल की सजा हुई हो अथवा देश से निष्कासित किया हो अथवा सरकारी सेवा से विमुक्त किया गया हो अथवा वे सभी लोग जिन्हें गवर्नर अयोग्य समझे, चुनाव में भाग नहीं सकेंगे।

5–सदस्यों को प्रश्न तथा अनुपूरक प्रश्न पूछने का अधिकार।

6—विधान परिषदों में पहली बार वर्ग तथा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रबन्ध किया गया।

7—विधान परिषदों में पहली बार वर्ग तथा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रबन्ध किया गया।

1909 अधिनियम का सम्भवतः सब से घिनौना पक्ष वे विनियम थे जो ऐंग्लों इण्डियन नौकरशाही ने ऐक्ट को लागू करने के लिये बनाए। 1918 में संविधानिक सुधार प्रतिवेदन के लेखकों ने कहा 1909 के सुधारों ने भारतीय राजनीतिक समस्याओं का कोई समाधान नहीं किया और न वे दे हीं सकते थे।............उत्तरदायित्व जन—शासन का स्वाद है और इस स्वाद की वर्तमान कौंसिलों में पूरी कमी है।[38] मार्ले मिण्टो सुधारों का मूल मकसद राष्ट्रवादी खेमे में फूट डालना और मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भड़काकर भारतीयों के बीच दिन—ब—दिन बढ़ती एकता को रोकना था।[39] इन सुधारों के प्रति भारत में इतना असन्तोष था कि सरकार को इसे दबाने के लिए दमन नीति अपनानी पड़ी। 1910 का समाचार अधिनियम, 1911 को विद्रोही सभा अधिनियम 1913 का फौजदारी अधिनियम, सभी इस दिशा में निश्चित प्रयत्न थे। 1915 का भारत रक्षा अधिनियम, जिससे क्रान्तिकारी अपराधियों पर मुकदमा चलाने के लिये एक सुदृढ़ न्यायिक गण की नियुक्ति और जिसमें अपील नहीं हो सकती थी तथा संदिग्ध व्यक्तियों को नजरबन्द करना विशेष रूप से घिनौने कानून थे।

केन्द्रीय विधान परिषद के 19 सदस्यों जिनमें जिन्ना, श्रीनिवास शास्त्री तथा सुरेन्द्र नाथ बनर्जी सम्मिलित थे, ने पहले ही एक ज्ञापन दे दिया था, उन्होंने कहा था—केवल अच्छी अथवा रक्ष सरकार जो जनता को स्वीकार हो क्योंकि वह उस के प्रति उत्तरदायी हैं।[40] अतः 20 अगस्त 1917 को कामन्ज सभा में भारत सचिव लार्ड माण्डेस्वयु ने एक घोषणा की। भारत सचिव स्वयं नबम्बर 1917 में भारत आये और उन्होंने चेम्सफोर्ड कुछ

प्रतिष्ठित असैनिक अधिकारियों तथा भारत के सभी विचार के नेताओं से बातचीत की। एक समिति जिसमें सर विलियम डयूक, भूपेन्द्रनाथ बसु और अंग्रेजी संसद के सदस्य चार्ल्स रॉवर्ट जिन्होंने संसद में प्रश्न पूछा था, जिसके उत्तर में अगस्त घोषणा की गई थी, सम्मिलित थे, गठित की गई जिसने वायसराय के साथ मिलकर माण्टेग्यु महोदय के सुधारों का मसविदा तैयार करने में सहायता दी। यह योजना जुलाई 1918 में प्रकाशित की गई और इसको आधार मानकर 1919 का भारत सरकार अधिनियम बनाया गया।

प्रावधान–

1–भारत सचिव का वेतन अंग्रेजी कोष से आयेगा।

2–भारत परिषद की संख्या 8–12 के बीच निश्चित की गई। भारत सचिव का भारत परिषद से परामर्श करना आवश्यक नहीं था सिवाय (1) वित्तीय मामलों में (2) भारतीय जनपद सेवा के मामलों में।

3–भारतीय सचिव का भारतीय प्रशासन पर नियन्त्रण बना रहा परन्तु प्रान्तों को हस्तान्तरित किये हुये विषयों के सम्बन्ध में यह नियन्त्रण कम से कम हो गया।

4–वायसराय की 8 सदस्यों की कार्यकारी परिषद् में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 3 कर दी गई।

5–ग0ज0 की शक्तियां बढ़ी। वह अनुदान मांगों में की गई कटौतियों का प्रत्यावर्तन कर सकता था तथा पारित न किय गये विधेयकों को प्रमाणित कर सकता था पारित न किय गये विधेयकों को प्रमाणित कर सकता था और अध्यादेश जारी कर सकता था।
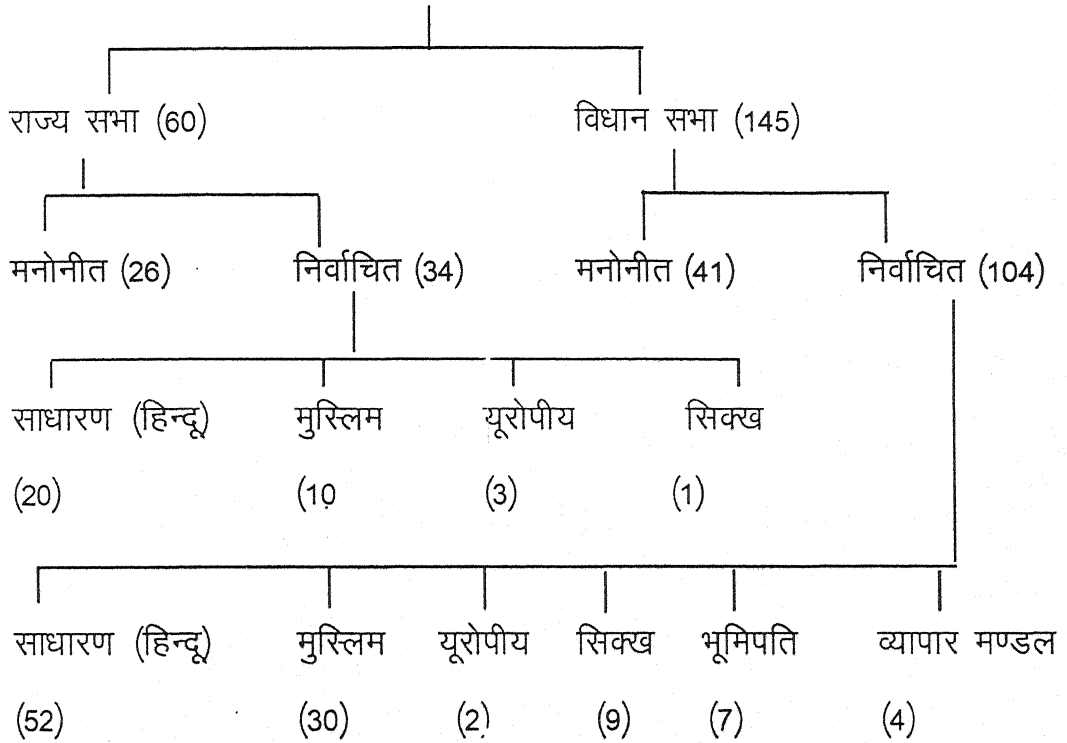
7–राज्य परिषद की कार्यअवधि पाँच वर्ष तथा विधान सभा की अवधि तीन वर्ष निश्चित की गई।

8–साम्प्रदायिक तथा वर्ग मतदाता व्यवस्था और बढ़ा दी गई और उसमें सिक्ख, भारतीय ईसाई, ऐंग्लो इण्डियन तथा यूरोपीयों को भी प्रतिनिधित्व दिया गया।

9–द्वैध प्रणाली अर्थात् (1) कार्यकारी पार्षद (2) लोकप्रिय मन्त्रियों की व्यवस्था। दोंनो भागो का गर्वनर ही प्रधान होता था।

10–प्रान्तीय विषयों का दो भागों में विभाजनः–

(1) आरक्षित विषय–वित्त, भूमिकर, न्याय, पुलिस, कानून

(2) हस्तान्तरित विषय–स्थानीय स्वशासन, शिक्षा, समाचार पत्र आदि

11–प्रान्तीय बजट केन्द्रीय बजट से अलग कर दिया गया।

सुधार की लगातार माँग और असहयोग आन्दोलन से उत्पन्न स्थिति के कारण

ब्रिटिश सरकार ने 1928 में एक कानूनी आयोग नियुक्त किया। इसकी नियुक्ति के बारे 1919 अधिनियम में उपबन्ध किया गया था। (धारा 84 क)। आयोग ने जिसके अध्यक्ष जान साइमन थे ने 1930 में अपना प्रतिवेदन दिया। इस प्रतिवेदन पर एक गोलमेज परिषद में विचार किया गया। जिसमें ब्रिटिश सरकार के ब्रिटिश भारत के और देशी रियासतों के शासकों के प्रतिनिधि थे।[41] इस सम्मेलन की परिणति पर तैयार किये गये एक श्वेत पत्र की ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की एक संयुक्त प्रवर समिति द्वारा परीक्षा की गई और प्रवर समिति की सिफारिशों के अनुसार भारत शासन विधेयक का रूप तैयार करके उसे कुछ संशोधनों के साथ भारत सरकार अधिनियम 1935 के रूप में किया गया। 1935 अधिनियम के अन्तर्गत—

1—प्रान्तों में द्वैध शासन समाप्त।

2—केन्द्र में द्वैध शासन लागू।

3—प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्तता (मन्त्रियों की सलाह से गवर्नर जनरल कार्य करेंगे)।

4—भारत में क्राउन की शक्ति का निदेशन महामहिम सम्राट द्वारा अथवा महामहिम सम्राट के सचिव द्वारा किया जायेगा।

5—भारत परिषद समाप्त कर दी गई।

6—इण्डिया ऑफिस का सारा व्यय अंग्रेजी राजकोष से।

7—भारत सचिव की सहायता के लिये उसे लेकर 6 सदस्यों की एक परामर्शदात्री समिति की नियुक्ति की गई।

8—भारतीय संघ में समस्त भारतीय प्रान्तों का सम्मिलित होना आवश्यक और भारतीय रियासतों का वैकल्पिक।

9—संघीय विधान मण्डल द्विसदनीय होना था जो इस प्रकार था—
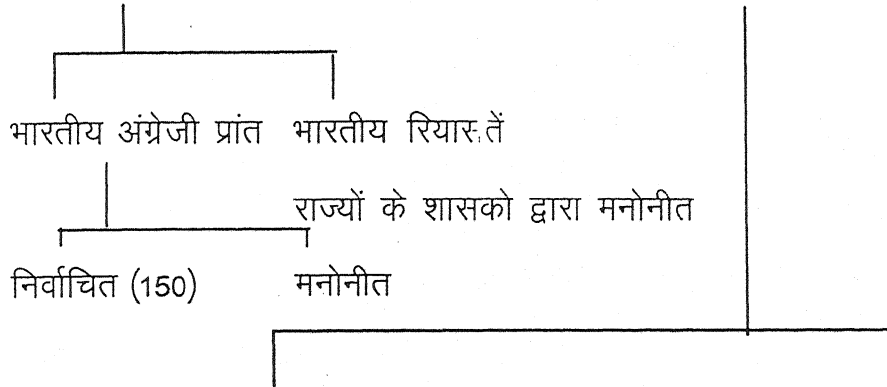
भारतीय अंग्रेजी प्रांत 250 निर्वातिच भारतीय रियासतें(125) शासकों द्वारा मनोनीत

10—सबसे विलक्षण व्यवस्था यह थी कि उपरि सदन अर्थात् राज्य परिषद के चुनाव सीधे अथवा प्रत्यक्ष होंगे और निम्न सदन अर्थात संघीय विधान सभा के चुनाव अप्रत्यक्ष।

11—संघीय न्यायालय जिसमे मुख्य न्यायाधीश तथा 6 अतिरिक्त न्यायाधीश हो सकते थे, दिसम्बर 1937 में स्थापित किया गया।

12—बर्मा भारत से अलग कर दिया गया जहाँ अलग व्यवस्था की गई।[42]

चुनाव की कार्यावधि 3 जुलाई 1936 को आरम्भ कर दी गई और अप्रैल 1937 को प्रान्तीय स्वन्त्रता लागू कर दी गई। 1936—37 के प्रथम चुनावों में कांग्रेस को 5 प्रांतों (मद्रास, मध्य प्रांत, संयुक्त प्रान्त, बिहार तथा उडीसा) में बहुमत प्राप्त हो गया। जुलाई 1937 में कांग्रेस ने अधिकतर गवर्नर शासित प्रांतों में मन्त्रिमण्डल बना लिये।[43] बहुत सारी रुकावटें होते हुये भी ये लोग सफलता पूर्वक कार्य करते रहे। पंजाब, बंगाल, सिंध, आसाम को छोड़कर शेष 7 प्रांतों में कांग्रेस की सरकारें बन गई थी। परन्तु अक्टूबर 1939 में कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने भारत के द्वितीय विश्व युद्ध में बिश उसकी सहमति को खेंच लिये जाने के विरोध में त्याग—पत्र दे दिये। उन्हें यह भी शिकायत थी कि अंग्रेजो ने अपने युद्ध के उद्देश्य जिनमें भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में मान्यता देनी होगी, स्पष्ट नहीं किये हैं। कांग्रेस मंत्रिमण्डलों के त्यागपत्र दे े पर बम्बई, मद्रास, संयुक्त प्रांत, बिहार और मध्य

प्रांत में प्रशासन गवर्नरों ने अपने हाथों में ले लिया और यह व्यवस्था 1946 तक चलती रही और यहाँ कोई उत्तरदायी सरकार नहीं रही। इस दौरान कांगेस ने न तो साम्राज्यवाद से समझौता किया और न ही साम्राज्यवाद–विरोधी चरित्र में कोई बदलाव आया। कांगेस के कमजोर पड़ने की बात तो दूर, वह और मजबूत और लोकप्रिय हो गई।[44]

उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत में मुस्लिम लीग द्वारा मंत्रिमण्डल स्थापित किया गया। परन्तु 1945 में पुनः कांग्रेस शक्ति में आ गई। उड़ीसा में एक मिलाजुला, मंत्रिमण्डल बनाया गया। इसी प्रकार आसाम में भी लीग मंत्रिमण्डल स्थापित हो गया था। परन्तु 1946 में वहाँ कांग्रेस शक्ति में आ गई। सिंध व बंगाल में लीग मंत्री मण्डलो की स्थिति दृढ़ हो गई परन्तु पंजाब में संघीय दल का राज्य चलता रहा और 1946 में कांग्रेस सिक्खों तथा संघीय दल का संयुक्त मंत्रिमण्डल बन गया। लार्ड लिनलिथगो ने इस सुधारों पर बोलते हुये कहा था–इग्लैण्ड और भारत के राजनीतिज्ञों के संयुक्त प्रयत्नों के फलस्वरूप एक ऐसे प्रतिनिधि स्वशासन का सूत्रपात होने वाला है जो उन सभी धारणाओं के विस्तार तथा साहस के लिये इतिहास में अद्वितीय है। इसमें पुराने साम्राज्यवादी विचारों को साझेदारी और सहकारिता के बदलें में छोड़ने की बात है।[45] कांग्रेस ने तो इस नए संविधान को पूर्णतया रद्द कर दिया। तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष नेहरू ने इसे अनैच्छिक, अप्रजातन्त्रीय और अराष्ट्रवादी संविधान की संज्ञा दी जो कि समस्त देश पर और सर्वसम्मत इच्छा के विरुद्ध लाद दिया जायेगा।

पण्डित मदनमोहन मालवीय ने इसे बाह्य रूप से कुछ जनतंत्रवादी परन्तु अन्दर से पूर्णतया खोखला बतलाया। सी0 राजगोपालाचारी ने इसे पूर्णतया सड़ा हुआ, मूल रूप से बुरा और बिल्कुल अस्वीकृत बताया। पं0 मुखम चेट्टी ने कहा–प्रादेशिक स्वशासन व्यवस्था और 1935 के अधिनियम के बीच की दूरी बहुत अधिक है। न हमें अपने आन्तरिक न बाह्य मामलों पर नियन्त्रण है। गर्वनर जनरल के आरक्षण और विशेषधिकारों और भारतीय विधान सभी की त्रुटियों ओर संघ में तथा प्रांतों के मंत्रियों के उत्तरदायित्व न होने

के कारण यह स्पष्ट है कि यह प्रादेशिक न होने के कारण यह कि यह प्रादेशिक स्वशासन व्यवस्था नहीं है। बंगाल के मुख्यमंत्री फजल–उल–हक ने कहा था–कि न तो यह हिन्दू राज है और न ही मुस्लिम राज है।

कैबिनेट मिशन द्वारा सिफारिश पर निर्मित संविधान सभा की 9 अक्टूबर 1946 को जब पहली बैठक हुई तो लीग के सदस्य उपस्थित नहीं हुए और संविधान सभी ने लीग के सदस्यों के बिना ही कार्य प्रारम्भ कर दिया।[46] इसके बाद बिटिश सरकार ने बेबल के स्थान पर माउण्ट बेटन को भारत के गवर्नन जनरल के रूप में भारत भेजा। जिससे शक्ति के हस्तान्तरण की तैयारियाँ शीघ्र हो सकें। बिटिश सरकार भी अब भारत में अपनी प्रभावी भूमिका निभाने में असमर्थ होती जा रही थी।[47] माउण्टबेटन न लीग व कांग्रेस ने यह स्पष्ट समझौता कराया कि पंजाब व बंगाल के समस्या वाले प्रांतों का विभाजन किया जायेगा। जिससे इन प्रांतों में हिन्दू व मुस्लिम बहुमत वाले खण्ड बनाये जायेंगे। 26 जुलाई 1947 को गर्वनर जनरल ने पाकिस्तान के लिये पृथक सभा की स्थापना की घोषणा की। 3 जून 1947 की योजना के क्रियान्वित हो जाने पर उस घोषणा के अनुसार ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा अधिनियम बनाकर शक्ति का अन्तरण करने में अब कोई कठिनाई नहीं थी। और आश्चर्यजनक गति से विधेयक पारित करके भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 के रूप में (10 और 11 षष्ठ जार्ज, अध्याय30) बना दिया।

प्रावधान

1–15 अगस्त 1947 से भारतीय अंग्रेजी प्रान्तों को भारत और पाकिस्तान नाम के दो स्वतन्त्र राज्यों में बाँट दिया गया।

2–पाकिस्तान में सिन्ध, बलोचिस्तान, उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त, पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल जिसकी सीमायें आयोग द्वारा निश्चित की जायेंगी, सम्मिलित होंगें।

3–भारत के शेष अंग्रेजी प्रांत स्वतन्त्र भारत में सम्मिलित होंगे।

4–भारतीय रियासतों पर अंग्रेजी सर्वश्रेष्ठता समाप्त कर दी गई।

5—भारतीय रियासतों को यह स्वतन्त्रता मिल गई कि वे भारत तथा पाकिस्तान में से जिसमें चाहें सम्मिलित हो अथवा न भी हों।

6—प्रत्येक राज्य का अपना गवर्नर जनरल होगा।

7—प्रत्येक राज्य में 1935 अधिनियम लागू होगा।

8—भारतीय सेना का भी भारत तथा पाकिस्तान में बंटवारा किया जायेगा।[48]

इस अधिनियम के प्रावधान के अनुसार—पाकिस्तान 14 अगस्त तथा भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्र हो गये। जिन्ना पाकिस्तान के प्रथम गवर्नर जनरल बन गये। परन्तु भारत के माउण्ट बेटन से प्रार्थना की कि वह भारत के गवर्नर जनरल बने रहें।

राष्ट्रीय अस्थाई सरकार में सरदार पटेल रियासती विभाग के कार्यवाहक थे। उन्होंने भारतीय रियासतों की देशभक्ति को ललकारा और उनसे अनुरोध किया कि वे भारतीय संघ में अपनी सत्ता, विदेशी मामले और संचार व्यवस्था को भारत अधीनस्थ बनाकर सम्मिलित हो जायें। 15 अगस्त 1947 तक 136 क्षेत्राधिकारी रियासतें भारत में सम्मिलित हो गई थी। कश्मीर ने विलय पत्रों पर 20 अक्टूबर 1947 को जूनागढ़ और हैदराबाद ने 1948 में हस्ताक्षर कर दिये।

बहुत सी छोटी—छोटी रियासतें जो एक अगल इकाई के रूप में आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में नहीं रह सकती थी। संलग्न प्रान्तों में विलय कर दी गई। जैसे उडीसा और छत्तीसगढ़ की 39 रियासतें उड़ीसा अथवा मध्य प्रान्त में विलय कर दी गई और गुजरात की रियासतें बम्बई प्रान्त में। इन रियासतों के विलय का एक अन्य रूप ऐसी इकाईयों के रूप में गठन करना था जो केन्द्र द्वारा प्रशासित की जायें। इसी श्रेणी में हिमाचंल प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश, त्रिपुरा, मणिपुर, भोपाल, विलासपुर और कच्छ की रियासतें थी। एक अन्य प्रकार का विलय राज्य संघों का गठित करना था। इस प्रकार कठियावाड़ की संयुक्त रियासतें थी। एक अन्य प्रकार का विलय राज्य संघों का गठित करना था। इस प्रकार कठियावाड़ की संयुक्त रियासतें, मध्य प्रदेशकी संयुक्त रियासतें विंध्य प्रदेश

और मध्य भारत के संघ, पटियाला और पूर्वी पंजाब रियासती संघ (PEPSU) राजस्थान, ट्रावनकोर और कोचीन की संयुक्त रियासतें अस्तित्व में आयी।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में राष्ट्रीय कांग्रेस की एक मांग, भाषाई सीमाओं पर आधारित प्रान्तों का पुनर्गठन था। स्वतन्त्र भारत में इसने उग्ररूप धारण कर लिया। तेलगु भाषा–भाषी आंध्र प्रदेश के लिये आन्दोलन करते हुये श्रीरामलू की मृत्यु के कारण 1953 में यह प्रांत अस्तित्व में आ गया। 1954 में सरकार ने एक आयोग का गठन किया जो इस प्रश्न की निष्पक्ष जाँच करे। फजल अली इसके अध्यक्ष और पण्डित हृदयनाथ कुजरू और सरदार के० एम० पन्निकर इसके सदस्य थे।[49]

इस आयोग ने सितम्बर 1955 में रिपोर्ट सरकार को दे दी और सुझाव दिया। कि 16 राज्य और तीन केन्द्र शासित प्रदेश बनने चाहिए। इसके फलस्वरूप ट्रावनकोर, कोचीन, मैसूर, कुर्ग, सौराष्ट्र, कच्छ, मध्य प्रदेश, भोपाल, विन्ध्य प्रदेश अजमेर, त्रिपुरा, हिमांचल प्रदेश, और पेप्सू भिन्न भिन्न इकाईयों के रूप में नहीं रहे और A,B,C श्रेणी के राज्यों की व्यवस्था भी समाप्त कर दी गई।

1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम, भारतीय संसद ने पारित कर दिया और इसके अनुसार 14 राज्य और 6 केन्द्र शासित प्रदेश बनाये गये। 1961 में बम्बई का गुजरात और महाराष्ट्र में बाँट दिया गया। 1962 में नागालैण्ड को पूर्व राज्य का पद दिया गया। 1966 में पंजाब में से हरियाणा अलगकर दिया गया। पिछले कई वर्षों से कुछ प्रदेशों को विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों की यी माँग रही है, कि बड़े राज्यों में कुछ क्षेत्रों की अनदेखी की जा रही है। तथा उन्हें एक अलग राज्य की अस्मिता मिलनी चाहिए। अतएव संसद ने 2000 के वर्षाकाल अधिवेशन में तीन नये राज्यों के गठन के लिये विधेयक पारित कर दिये। अब उत्तर प्रदेश के उत्तरी क्षेत्रों को अलग करके उत्तरांचल बिहार के दक्षिणी क्षेत्रों को अलग करके झारखण्ड तथा मध्य प्रदेश में से छत्तीसगढ़ के जिले अलग करके छत्तीसगढ़ राज्य गठित कर दिया है अब भारत में 28

राज्य व 7 केन्द्र शासित प्रदेश है।

आर्थिक परिस्थितियाँ– भारत के लोंगो का आर्थिक जीवन आमतौर पर भौगोलिक भौतिक और मौसम की परिस्थितियों पर निर्भर करता था। साथ ही यह सामाजिक संस्थाओं और शताब्दियों से चली आ रही प्रथाओं तथा धार्मिक आस्थाओं पर निर्भर था। सदियों से यहाँ के निवासियों की मूल जीवन पद्धति एक निश्चित आर्थिक प्रणाली से स्थिर हो चुकी थी और ये प्रणाली प्राचीन काल से मध्ययुग तक बराबर चली आ रही थी। हमेशा से भारत एक समृद्ध देश माना जाता रहा है जहाँ एक क्षेत्र में अकाल व अभाव भी असाधारण घटनायें न थी। इतने विशाल देश में अनाज की आपूर्ति एवं अकाल जैसी अनियमिततायें स्वाभाविक थी। पर इस अनियमितता को स्थाई स्वरूप बिट्रिश सरकार की अन्यायपूर्ण आर्थिक नीतियों ने दिया भारतीय इतिहास में ब्रिट्रिश युग विश्व आर्थिक संक्रमण काल में था। इसके बाद क्या लाभ–हानि हुई उसका एक विवरण 1885 से 1947 ई0 तक के भारत के आर्थिक जीवन का उद्योग, कृषि आदि तथ्यों के आधार पर निम्नवत प्रस्तुत किया गया है।

19 वीं सदी के अन्तिम चतुर्थांश में भारत एक पिछड़ी अर्थ व्यवस्था वाला देश था। यद्यपि उस पर विश्व के सर्वाधिक विकसित और उद्योगीकृत देश का राज था। एक तो देश, विदेशी राजनैतिक हस्तक्षेप से पीड़ित था दूसरी ओर परंपरावादी तकनीकि ने कृषि और उद्योगों को जड़ बना दिया था। अतः निम्न उत्पादकता व अतिरिक्त पैदावार की लक्ष्मण रेखा लाँघने मे असमर्थ भारतीय अर्थतंत्र किस प्रकार विदेशी साधनों व तकनीकि का सामना कर पाता। यद्यपि 19वीं सदी औद्यौगिक पूंजी का काल माना जाता है, पर उभरते अंग्रेज पूंजीपतियों एवं उद्योग पतियों ने जिस द्रुतगति से भारत की कृषि, उद्योग, करनीति, मुद्रा प्रणाली, पर अधिकार किया उसने भारत को हीन दशा में ला खड़ा किया। लार्ड विलियम बेंटिक ने 1834 में ही इस भावी दुर्दशा का व्यापार के इतिहास में जोड़ नहीं। भारतीय बुनकरों की हड्डियाँ भारत के मैदानों में बिखरी पड़ी हैं।"[50]

उपर्युक्त कथन यद्यपि शिल्प के सन्दर्भ में कहा गया है पर लगभग यही स्थिति हर क्षेत्र में थी। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि भारत की अर्थ व्यवस्था पतनोन्मुखी थी। वस्तुतः भारत के लिये इस समय आर्थिक पिछड़ापन का दौर था जिसके मध्य परम्परावादी व आधुनिक साधनों की खाई थी। भारत में यह पिछड़ापन उतना ही नया था। जितना कि ब्रिटिश शासन। भारतीय संदर्भ मे औपनिवेशिक शासन द्वारा उत्पन्न इसी विरोधाभास[51] में भारतीय अर्थव्यवस्था (1885–1947) की वास्तविक स्थिति के विन्दु निहित हैं। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत में ब्रिटिश नीतिकी अधिकाधिक आलोचना की गई। भारतीयों ने भी साम्राज्यवाद के आर्थिक सिद्धान्तों को चुनौती के रूप में स्वीकार कर अपने मत प्रकट किये। इसीलिये यह काल 'आर्थिक राष्ट्रवाद'[52] के नाम से जाना जाता है। दादा भाई नौरोजी[53] और आर0 सी दत्त[54] जैसे राष्ट्रवादी आर्थिक चिंतको ने विदेशी शासन और भारत के बढ़ते जा रहे पिछड़ेपन के मध्य सम्बन्ध खोजने का प्रयास किया। नौरोजी ने अपनी अर्थ मीमांसा में तीसरा चरण 'वित्तपूँजीवाद' (1886–1947) का काल बताया है। जिसमें उन्होंने ब्रिटिश पूँजी का व्यापक पैमाने पर नियोजन सार्वजनिक ऋणों, रेल निर्माण, सिंचाई, बागवानी आदि में बताया। परन्तु यदि हम उद्योग की विस्तृत चर्चा करे तो इस काल में निरूउद्योगीकरण के अन्तर्गत व्यक्ति शिल्प कर्म छोड़कर कृषि की ओर उन्मुख हो गये। परन्तु यदि उद्योगों की स्थापना पर दृष्टि डालें तो यह बात तर्क संगत नहीं लगती। टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी (1907), हुगली पर बाली मिल्ज की स्थापना (1870) चीनी उद्योग के क्षेत्र में (1930–40) अग्रणी भूमिका, 1937 में कलकत्ता के पास एल्युमिनियम केन्द्रो की स्थापना।[55]

आर्थिक समीक्षाकारों ने इस अवस्था को नव उद्योगीकरण काल से प्रस्तुत किये जाने का प्रयास किया। यदि हम 1900–1904 ई0 तक औद्योगिक आय पर विचार करें तो यह राष्ट्रीय आय के 100 पैसों में से 13 पैसे, 1925–29 में 17 पैसे से कम था। दरअसल भारत में औद्योगिकरण की इस प्रक्रिया क़ी शुरूआत बेहद आश्चर्य जनक हुई। इसे समझने

के लिये सूती कपड़े का उदाहरण लेते है। 1880–1885 के दशक में सूती कपड़ा उद्योग पहले की अपेक्षा तीव्र गति से बढ़ा था पर 1895–1914 का चरण इस उद्योग के लिये अनुकूल नहीं था। संमवतः इसका कारण भारतीय सूती वस्त्र के उद्योग को जापान के रूप में एक प्रतिद्वन्दी मिल गया था। अगले चरण में 1914–22 में महायुद्ध का प्रभाव एवं गाँधी जी के 1921 के असहयोग आन्दोलन मे विदेशी वस्त्रों को पुनर्जीवित कर दिया। इस प्रकार परवर्ती वर्षों में इस उद्योग में अत्यधिक तेजी देखी गई जो भारत की अर्थव्यवस्था में व्यापक बदलाव के संकेत देते है। नगरीकरण व औद्योगीकरण का परस्पर गहन संबन्ध है यही कारण है कि 1881 से 1941 के मध्य नगरवासियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई।

वर्ष	नगरवासियों की संख्या (करोड़ो में)	कुल जन संख्या में प्रतिशत
1891	2.67	9.4
1901	2.82	10.0
1911	2.86	9.4
1921	3.11	10.2
1931	3.75	11.1
1941	4.97	12.8

किग्सले डेविस Popylation of India and pakidtan

भारतीय उद्योगों के इस विकास एवं प्रभाव का असर प्रत्यक्ष रूप से व्यक्तियों की आय पर भी पड़ा आर्थिक प्रगति का जो मापदण्ड हम इन विकसित उद्योगो को लेकर प्रयोग करते है वस्तुतः उसमें सर्वाधिक विदेशी पूँजी निहित थी। भारत में औपनिवेशिकता के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिये भारत में कितनी विदेशी पूँजी आई उसकी प्रकृति

एवं उसका गुणात्मक मूल्यांकन करना अत्यन्त आवश्यक था। सारी दुनियाँ में विनियोजित विट्रिश पूँजी का 14 प्रतिशत हिस्सा एशिया व 40 प्रतिशत ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न भागों में गया।[56] जार्ज पैश, घनश्याम दास विडला, वी.के. आर–वी राव सभी ने अपने–अपने तरीके से यह गणना की।

भारत में विनियोजित विदेशी पूँजी (1929) का वी. के. आर. वी. राव की दृष्टि में विभाजन (लाख पौंड स्टलिंग में)

सरकारी ऋण और रेल	--	3394
नगरपालिका व पोर्ट ट्रस्ट	--	130
भारंतीय पंजीकृत कंपनियाँ	--	425
विदेशी पंजीकृत कंपनी	--	1677
अन्य	--	809

कुल =6435 लाख पौंड स्टर्लिंग

कहने का तात्पर्य यह है कि भारत में विदेशी पूँजी का ढाँचा अभी तक औपनिवेशिक था। पर इस काल में (1885 से 1947 तक) उद्योगो के लिये आन्दोलन व नियम कानून बनाये जाने लगे थे। 1891 का द्वितीय फैक्ट्री अधिनियम काम के धन्टे तय करने व अन्य तथ्यों पर आधारित था। अद्योगीकरण एवं वाणिज्य विभाग की स्थापना ने इसे नया आयाम दिया। वामपंथी विचारकों ने 1920 में इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस बनाकर अपना पक्ष प्रस्तुत किया। महात्मा गाँधी ने भी अहमदाबाद में अपना मिल मजदूर आन्दोलन[57] चलाया 1923 में उद्योगो के संरक्षण हेतु विधान सभा ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसकी अनुसंशा पर टैरिफ बोई, फिसकल कमीशन[58] का गठन किया गया। 1931 में रूपये के स्वर्ण मान के बजाय स्टर्लिंग से जोड़ दिया गया। इसके पहले 1926 में Hilton ypnng commision ने 1 रुपया= 1 शिलिंग 6 पैसे का प्रस्ताव दिया। अतः भारत को इस काल

में उद्योग के क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि का काल माना जा सकता है। यद्यपि इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी पड़े जिसने भारत की अर्थव्यवस्था के क्षीण कर दिया पर निरुद्योगीकरण को नव–औद्योगीकरण में बदलने का समय 1885 से 1947 तक ही था। 1885 से 1947 तक के काल में भारतीय अर्थव्यवस्था अधिकतर कृषि पर निर्भर थी। इस समय ब्रिटिश नीति भी अधिकाधिक ग्रामीणीकरण को प्रोत्साहन देने की थी। जिसके परिणाम स्वरूप कृषि में पाम्परिक निर्भरता बढ़ गई और देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर रहने लगी।

वर्ष	कृषि पर आधारित जनसंख्या का प्रतिशत
1891	61.1 प्रतिशत
1901	66.5 प्रतिशत
1911	72.2 प्रतिशत
1921	73.0 प्रतिशत

स्रोत : वी. एल. गोवर, पेज न0 450

भारत की कृषि के आधुनिक न हो पाने में यद्यपि बहुत से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक कारणों का पाया जाना माना जाता है। भारत में कृषि की उत्पादकता तो अभी भी स्थिर रही और निरंतर बढ़ती जनसंख्या ने गरीबी को जन्म दिया। भूराजस्व चूँकि कृषि क्षेत्र से प्राप्त आय की सबसे बड़ी मद थी इस कारण ब्रिटिश सरकार इस पर निरंतर नियंत्रण व प्रयोग करती रहती थी। सरकार ने कृषि का वाणिज्यीकरण कर दिया। कृषि में आई इस जड़ता को डेनियल थारनर को शब्दों में "1890–1947 का काल कृषि की स्थिरता का काल था।[59] यदि हम कृषि के राजनैतिक इतिहास पर चर्चा करें तो पायेंगे कि भारत में उपजने वाली नगदी फसलों की लिप्सा और अत्यधिक भूराजस्व प्राप्ति ने अंग्रेजी को नैतिक पतन की पराकण्ठा तक पहुँचा दिया। बात चाहे निलहे सरकारों की हो या जबरन लगान वसूली के विरोध में गाँधी जी के खेडा व चंपारण

आंदोलन हो। ब्रिटिश सरकार का औपनिवेशिक चरित्र सर्वत्र उजागर होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1900—1947 के बीच भारत में प्रति एकड उपज की वास्तविक मात्रा घटी थी। हो सकता है कि मिट्टी के कटाव, खाड़ बीज, व अनुपजाऊपन इसके कारण हो पर वास्तविकता में उन्नत बीज, सुधरे औजार व रासायनिक उर्वरकों के वावजूद उक्त कमी आई। वस्तुतः यह ब्रिटिश सरकार का कृषि के प्रति अन्याय था जो कभी—कभी दंगों के रूप में भी सामने आ जाता था। उदाहरणार्थ पावना दंगे (1873), दक्कन (1875), असम (1894) आदि।

सामान्यतः यह विद्रोह औपनिवेशिक चरित्र के खिलाफ थे जिसमें इन्हें दोहरे शोषण का सामना करना पड़ता था। एक ओर सरकार का शोषण व दूसरी तरफ विचौलियों व साहूकारों की ऋणग्रस्तता। इन दंगों व अनियमितता से निपटने के लिये सरकार ने काश्तकारी कानून भी बनाये।[60]

(1) 1881 —पश्चिमोन्तर प्रांत लगान अधिनियम

(2) 1883 —मध्यप्रांत काश्तकारी विधेयक

(3) 1885 —बंगाल, पंजाब काश्तकारी कानून

(4) 1886 —अवध लगान अधिनियम।

इसके अलावा 1900 में पंजाबी भूमि हस्तांरण, 1904 सहकारी ऋण समितियाँ, 1905 कृषि अन्वेषण संस्था आदि ने कृषि के प्रति सरकारी नीतियों को प्रमाणित किया। इनके अलावा एक अन्य मुहिम तेजी से चल रही थी वा थी। गाँधी जी द्वारा कृषकों व मजदूरों का राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने की प्रवृत्ति आगे चलकर यही प्रवृति अपने विशाल रूप में 1936 में प्रकट हुई जब लखनऊ में स्वामी सहजानद ने अखिल भारतीय किसान सभा का गठन किया। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के बाद तो किसानों ने स्वतंत्रता प्राप्ति तक लगान देना ही बन्द कर दिया था।

1885 से स्वतंत्रता प्राप्ति तक भारतीय भूमि व्यवस्था पर सरकारी कर नीति में

समय–समय पर फेरबदल होते रहे पर वास्तविकता में राजस्व वसूली को तीन बिन्दुओं पर सकेतिक कर सरकार ने समय, काल, पात्र के आधार पर व्यवस्था लागू की। ये तीन विन्दु थे–[61]

(1) राजस्व के लिए जिम्मेवार कौन होगा (जमींदार या रैययत)

(2) राजस्व कितना होगा (नेट उत्पादनदर से या पुराने मूल्यों से)

(3) राजस्व का निर्धारण कब होगा (एक बार या समयांतरालों पर)

कई प्रयोगों के दौर से गुजरी भारतीय कर नीति 1857 के गदर पर खर्च, ब्रिटिश अधिकारियों के व्यय व चाँदी के मूल्य में गिरावट के फलतः सरकार ने 1882 में अस्थाई बंदोवस्त लागू किया। पर आर0 सी दत्त ने स्थाई बंदोवस्त की माँग की जिसका समर्थन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी किया। अंततः यह माँग 1947 तक आते–आते स्वतंत्रता आन्दोलन में समाहित हो गई। इसी क्रम में 1882 के बाद चावल के अलावा सभी प्रधान कृषि उत्पाद बिना बाधा के निर्यातित होते थे। विल्सन के बजट के प्रायः 60 वर्ष बाद निर्यात शुल्क शुरू हुआ। कच्चे चमड़े पर (1919) पटसन व चाय पर (1922), कच्ची रुई पर (1932) में यह शुल्क लगाया गया।

कृषि में आई इस अनियमितता ने अकालों को जन्म दिया। 1943 के अकाल की छाया बंगाल की चेतना पर आसानी से नहीं जायेगी। भारत में बिट्रिश शासन का दूसरा चरण शुरू होने तक देश में गरीबी इतनी गहरी जड़ें जमा चुकी थी कि लोगों को मुश्किल से दो वक्त की रोटी भी नहीं मिल पा रही थी। लोगों के पास इतना अनाज संग्रह न था कि फसल न होने की दशा में जिंदा रह सकें। प्रकृति भी हमेशा की तरह अनिश्चित ही रही। 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध व 20वीं सदी के प्रारम्भ में कई अकाल पड़े। उपर्युक्त विवरिणित बंगाल के अकाल के 'मानव निर्मित अकाल'[62] कहा जाता है। 1888–89 में बिहार के उत्तरी जिलों, 1896–97 में भारत के उत्तर व दक्षिण, 1900 ई0 1908 में देश के विभिन्न भागों में 1942 में शरद ऋतु में तटवर्ती बंगाल व उड़ीसा में आई समुद्री लहरों

के कारण अकाल की स्थिति आ गई।

अकाल की इस स्थिति से निपटने के लिये सरकार ने धीमे कदम उठाये। लायल कमीशन (1897) मैक्डोनल आयोग (1900) इन्हीं धीमी गति की समीक्षा के लिये गठित की गई थी। चूँकि सरकार का मुख्य ध्येय व्यावसायिक था अतः अकाल के नाम पर मानव कल्याण को सहजता से स्वीकार करना उसने उचित न समझा। पर बाद में सरकार ने इसके लिये कुछ प्रयास किया। वस्तुतः यह अकाल सरकारी नीतियों का ही परिणाम था। परम्परागत खाद्य फसलों के स्थान पर जबरन नकदी फसलों का उत्पादन, अनाजों का बाहर निर्यात एवं अत्यधिक लगान वसूली ने साधारण कृषक को दास की स्थिति में ला खड़ा किया। जिसमें न तो मानवीय प्रतिकार की क्षमता थी और न ही प्राकृतिक आपदाओं से निपटने का सामर्थ। इस प्रकार कृषि का क्षेत्र पूर्णरूप से ब्रिटिश नीति निर्देशों पर चल रहा था। जिसने प्राचीन कृषि प्रधान देश को अभी तक के भंयकतरतम अकालों से परिचित कराया।

कृषि, उद्योग, मुद्रा, कर–प्रणाली आदि बिन्दुओं के अतिरिक्त यदि हम राष्ट्रीय आय को आर्थिक प्रगति का मापदण्ड माने तो न्यायोचित होगा। वस्तुतः आर्थिक प्रगति का मापन इसी आय के माध्यम से होता है। ऐसा नहीं है कि स्वतंत्रता के पूर्व इस दिशा में कोई सार्थक प्रयत्न न किया गया है। 1871 में भारत उपसचिव ग्रोटउफ ने भारत की औसत वार्षिक आय[63] 2 पाउण्ड स्टलिंग या 20 रूपये बताई थीं जो बाद में भारतीयों द्वारा भी पुष्टि की गई।

भारत की राष्ट्रीय आय अनुमान लगाने के स्वतंत्रता पूर्व प्रयास–

(1) Willium Digvi 1899

(2) फिडले सिराज 1911, 1922, 1923

(3) वी. के. आर. बी. राव. 1925–29 व 1931–32 (यह भारत में राष्ट्रीय आय अनुमान लगाने का सर्वप्रथम वैज्ञानिक प्रयास था।)

इसी प्रकार लार्ड क्रोमर (27 रुपये 1881 में), लार्ड कर्जन (30 रूपये 1901), आदि ने राष्ट्रीय आय की गणना की। 1900–1946 के मध्य वार्षिक आय वृद्धि की दर प्राथमिक क्षेत्र (कृषि आदि) में 0.42 प्रतिशत द्वितीयक क्षेत्र (उद्योग इत्यादि) में 1.82 प्रतिशत व तृतीयक (सेवा क्षेत्र) क्षेत्र में 2.22 प्रतिशत रही। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय 1938–39 के स्थिर मूल्यों पर तीनों क्षेत्रों की प्रतिशत गणना स्वतः इस प्रगति की तस्वीर साफ करती है।[64]

वर्ष	प्राथमिक क्षेत्र	द्वितीयक	तृतीयक
1901–05	63.6	12.7	23.7
1915–20	59.6	13.7	26.7
1930–35	51.4	15.8	32.8
1940–45	49.6	16.7	35.7

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि प्राथमिक क्षेत्र पिछड़ा है जबकि द्वितीयक क्षेत्र धीमे–धीमे आगे बढ़ा है और तृतीय क्षेत्र खूब आगे बढ़ा। आगे चलकर यही विकास क्रम भारत की राष्ट्रीय प्रगति का सूचक बनी।

1885–1947 तक के आर्थिक जीवन में ब्रिटिश नीतियों द्वारा प्रदत्त कृषि उत्पादनों का नुकासन, औद्योगिक ढाँचे की अव्यय स्थित दशा, अगाध गरीबी व निष्ठुर अकालों ने सोने की चिड़िया माने जाने वाले देश को पतन के कगार पर ला खड़ा किया। इन्हीं कारणों से परोक्ष रूप से भारतीय राष्ट्रवाद की भी उत्पत्ति हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने आगे बढकर इस शोषण–प्रणाली को रोकने हेतु, औपनिवेशिक चरित्र का भंडाफोड के विचार से कुछ समाधान निकाले। 1938 में अखिल भारतीय स्तर पर व्यापक योजनाओं के लिए उसने एक 'राष्ट्रीय परियोजना समिति'[65] का गठन किया। जिसने औद्योगिक सुरक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक पुनरुस्थान की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाते हुए पंचवर्षीय योजनाओं को जन्म दिया जो आज भी अनवरत जारी हैं।

ऐतिहासिक परिस्थितियाँ— मुगलकालीन राज विछिन्नता व अस्थिरता का लाभ उठाकर अंग्रेजों ने अपने पैर जमाने प्रारम्भ कर दिये थे। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से बिटिश साम्राज्यवादी नीतियों और भारत के शोषण के विरुद्ध विक्षोम प्रारम्भ हुआ। यद्यपि 1957 का विद्रोह व्यक्तिगत हितों से ओत–प्रोत था परन्तु यह उस युग की बदलती हुई राज–हालातों का फल था। जिसके परिणाम अत्यन्त दूरदर्शी हुये। इससे भारत का अंतःकरण जाग उठा और अब भारतवासी राज में सक्रिय भूमिका निभाते हुये ब्रिटिशों के तत्काल अंत हेतु कृत संकल्प हुये। भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ–साथ राज0 संगठनों का भी जन्म होना स्वाभाविक था। अतएव 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पूर्व ही बंगाल, बम्बई, मद्रास एवं अन्य स्थानों में ऐसी ऐसी राज0 संस्थायें जन्म ले चुकी थीं।

1885 से भारत के इतिहास में एक नया युग आरम्भ होता है। 18 दिसम्बर 1885 को मुम्बई के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज में हुये कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन से ही भारतीयों की राज0 चेतना का प्रारम्भ माना जा सकता है। परन्तु अब भी सीले ने भारत को केवल एक भौगौलिक इकाई की संज्ञा दी जिसमे राष्ट्रीय एकता की कोई भावना नहीं थी।[66] जॉन स्ट्रैची जो एक भूतपूर्व भारतीय जनपद सेवक थेः ने कैम्ब्रिज वि0 वि0 के भतपूर्व छात्रों को बतलाया–भारत के विषय में सबसे पहली तथा प्रमुख आवश्यक जानने योग्य बात यह है कि भारत न एक है और न एक था।[67] इस सबके साथ कांग्रेस 19वीं सदी भर मुख्यतः सरकारी जीति की आलोचना और सुधारों के लिये माँगो में लगी रही। इसके विचार प्रस्तावों के रूप में निर्धारित होते थे। ये प्रस्ताव सरकार के पास विचारार्थ भेजे जाते थे। इसने सरकार का ध्यान देश की भयंकर गरीबी की ओर खींचा तथा उचित जाँच और प्रतिकार की माँग की।[68] जहाँ तक सुधारों की बात है इसने निम्न खास कार्यों पर विशेष जोर डाला–

1–केन्द्रीय और प्रांतीय दोनों सरकारों में प्रतिनिधि–चालित परिषदों के सहारे

स्वायत्व शासन का विकास।

2—इण्डिया कौंसिल का उठा दिया जाना।

3—सामान्य और टेक्निकल दोनों प्रकार की शिक्षा का प्रसार।

4—सैनिक खर्च की कमी तथा भारतीयों का सैनिक प्रशिक्षण।

5—फौजदारी न्याय के शासन में न्यायपालक एवं कार्य पालक कृत्यों का पृथक करण।

6—विशेषकर इंग्लैण्ड और भारत दोनों में आई.सी.एस. परीक्षायें चलाकर, सार्वजनिक सेवा (नौकरी) के उच्चतर पदों पर भारतीयों की आधिकारिक नियुक्ति।

प्रारम्भिक तौर पर कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य एक ऐसी राज0 संस्था का गठन करना था। जिसमें अंग्रेजी राजभक्त सम्मिलित हों जो सरकार को प्रशासन की त्रुटियाँ बतायें और उन्हें दूर करने के लिये सुझाव दें। आर0 पी0 दत्त लिखते है कि इसका उद्देश्य अतिवादियों को राज भक्तों से अलग करना था।[69] इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक साक्ष्य यह भी स्पष्ट करते हैं कि ह्यूम को भारत में बढ़ते हुये असन्तोष और सम्भावित विद्रोह के प्रति बहुत चिन्ता थी। अतः शिमला बैठक में ह्यूम ने डफरिन को अपनी चिन्ता से अवगत कराया। डफरिन ने निजी प्रतिक्रिया के विषय में कुछ स्पष्ट विचार व्यक्त नहीं करते। अपितु राज0 अवस्था के विषय में इतने चिन्तित नहीं थे जितने कि ह्यूम। डफरिन ने लार्ड रे को कांग्रेस सभापति पद न स्वीकार करने की मंत्रणा दी और ह्यूम की योजना पर अपनी अप्रसन्नता व्यक्त की।[70]

ह्यूम की जीवनी लेखक वेडरवर्न लिखता है कि 1876 की लिटन की प्रतिक्रियावादी नीतियों तथा आर्थिक संकट ने परिस्थितियाँ ऐसी बना दी थी कि अवस्था क्रान्ति के किनारे पहुँच गई थी। बेडरवर्न लिखता है कि ह्यूम को सात बड़े—बड़े ऐसे विवरण मिले जिनमें भारत के भिन्न—भिन्न भागों से लगभग 30,000 प्रतिवेदकों ने सूचनाओं की एक बड़ी संख्या सरकार को भेजी हुई थी। जिनमें जन साधारण के असन्तोष तथा भूमिगत

षड्यन्त्रकारी संस्थाओं की वृद्धि के विषय में ब्यौरा दिया हुआ था। उनमें लिखा था–जंगल सूखा पड़ा है ऐसे में आग बहुत तेजी से फैलती है विशेषकर जब ठीक दिशा में पवन चल रही हो और इस समय यह ठीक दिशा में तेजी से चल रही है। इस बात के भी प्रमाण थे कि लोगों ने तलवारें, भाले, तथा तोड़ेदार बन्दूकें प्रयोग के लिये एकत्रित कर ली थीं।[71] भारतीय भाषा समाचार पत्र सरकारी नीतियों की बहुत आलोचना कर रहे थे और लोगों को यूरोपीय अत्याचार से मुक्ति पाने के लिये प्रेरित कर रहे थे।

स्पष्टतः कांग्रेस के गठन का उद्देश्य सम्पूर्ण देश के हित की बात सोचना था। 1885–1947 के 62 वर्ष के उतार–चढाव के राज0 क्षेत्र में इसके लक्ष्यों व उद्देश्यों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये। अपने अस्तित्व के प्रथम दो दशकों में कांग्रेस पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त मध्यम वर्गीय बुद्धिजीवियों के प्रभाव में थी। 1885–1905 के युग में कांग्रेस की राज0 में उदारवाद का चरण था। अतएव कांग्रेस कुछ रियासतें माँगती थी न कि देश के लिए स्वशासन। प्रारम्भिक कांग्रेसी नेता जनता के कल्याण की इच्छा तो करते थे परन्तु वे कांगेस को जनसाधारण का आन्दोलन बनाने को उद्यत नहीं थे। 1895 में पूना कांगेस के अधि0 के अध्यक्ष पद से बोलते हुये एस0 एन0 बैनर्जी ने कहा था– कांगेस ने प्रतिनिधि संस्थाओं की माँग कभी नहीं की अपितु केवल ऐसे शिक्षित वर्ग के लिये जो अपनी संस्कृति के कारण तथा अंग्रेजी विचारों के अंगीकृत करने के कारण तथा अंग्रेजी प्रशासन विधि से जानकारी रखने के कारण ऐसे वरदान के लिये योग्यता रखते हों, केवल उनके लिये कुछ रूपान्तरित–सी प्रतिनिधि–संस्थाओं की मांग करती है।[72] राज0 भिक्षावृत्ति के इस युग में दादा भाई नौराजी, फीरोजशाह मेहता, दीनशावाचा, व्योमेश और सुरेन्द्र नाथ बनर्जी जैसे नेता राज0 पर छाये हुये थे और वे उदारवादी, व परिमित राजनीति में विश्वास करते थे। उन्हें उदारवादियों को संज्ञा इसलिये दी गई ताकि उन्हें आरम्भिक बीसवीं शताब्दी के नवीन राष्ट्रवादियों से पृथक किया जा सके।[73] ये लोग अपनी राजनीति की व्याख्या उदारवाद और संयम के समन्वय से करते थें ये लोग भारतीयों के लिये धर्म व जाति के

पक्षपात का अभाव, मानव में समानता, कानून के सामने बराबरी, नागरिक स्वतन्त्रताओं के प्रसार और प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास की इच्छा करते थे। उनके ढँगों के विषय में महादेव गोविन्द रानाडे ने लिखा था–संयम का अर्थ यह है कि उस वस्तु की अथवा उन आदेशों की झूठी आशा ही मत करो, जो मिलनी असम्भव है अपितु समीपतम वस्तु की ओर समझौते और न्यायसंगत भावना से प्रेरित होकर दिन–प्रतिदिन आगे बढ़ते जाओ।[74]

उदारवादियों को संवैधानिक आंदोलन में पूरा विश्वास था। इसके लिये उन्होंने समाचार पत्रों, भाषणों, वार्षिक अधिवेशनों का सहारा लिया। अपनी समस्याओं की सरकार तथा जनता तक पहुँचाने के लिये समाचार पत्र–पत्रिकाओं का भी सहारा लिया गया। 1888 में कांग्रेस ने अपनी एक शाखा इंग्लैण्ड में स्थापित की जिसका नेतृत्व विलियम डिग्वी कर रहे थे। यहाँ से इण्डिया नामक पत्रिका प्रारम्भ की गई। नौरोजी ने इस कार्य में बढ. चढ़ कर हिस्सा लिया। कांग्रेस अपनी स्थापना से 1892 तक विधायी परिषदों के प्रसार और सुधार की माँग उठाती रही। इन्हीं के दबाव में ब्रिटिश सरकार को 1892 में भारतीय परिषद् अधिनियम पारित करना पड़ा। इसके द्वारा केन्द्रीय विधायी परिषद् तथा प्रान्तीय परिषदों ने सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी। उदारवादियों ने प्रशासकीय पदों पर भारतीय की नियुक्ति की माँग की। उदारवादी पहले भारतीय थे जिन्होंने गरीब मजदूरों के हितों में आवाज उठायी।

1965–1918 के राष्ट्रवादी चरण को उग्र राष्ट्रवाद का नाम दिया गया है। वास्तव में उग्र राष्ट्रवाद कोई वैधानिक शब्द नहीं है। इसका सन्दर्भ तुलनात्मक है। तिलक के अनुसार–उदारवादी और उग्रवादी शब्द वस्तुतः समय के साथ विशिष्ट सम्बन्ध रखते हैं आज के उग्रवादी कल उदारवादी थे और उसी प्रकार आज के नरम पंथी कल उग्रवादी होंगे। भारतीय राजनीति में यह नया दौर दो रूप में प्रकट हुआ–(1) कांगेस के भीतर उग्रवादी दल का उदय (2) देश में आतंकवादी व क्रान्तिकारी दल का उदय। इस समय की प्रमुख राजनैतिक घटना 1905 का बंगाल विभाजन (कर्जन) था। यह कार्य बंगाल और

कांग्रेस[75] के कड़े विरोध की उपेक्षा करके किया गया। इस आन्दोलन ने शीघ्र ही भारत का राजनीतिक परिदृश्य पूर्णतः रूपान्तरित कर दिया। कांग्रेस की सक्रिय भूमिका के साथ ही प्रत्येक वर्ग ने इसमें बढ़चढ़कर हिस्सा लिया। जैसा कि आर0 सी0 मजूमदार लिखते है मेमन सिंह के मोचियों ने अंग्रेजी जूतों को ठीक करने से, काली घाट के धोबियों ने अंग्रेजी कपड़ों को धोने से तथा बारीसाल के उड़िया रसोइयों ने अंग्रेजी भोजन पकाने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार बंगाल विभाजन के विरोध में प्रारम्भ हुया स्वदेशी आन्दोलन एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में अग्रगामी आन्दोलन का एक प्रमुख हिस्सा बना रहा यही एक ऐसा आन्दोलन था जो अपने उद्देश्य में सफल रहा और 1911 में बंगाल विभाजन रद्द कर दिया गया। स्वदेशी आन्दोलन ने सिद्धान्त और भावनाओं की परिधि को तोड़कर राष्ट्रवाद को व्यावहारिक राजनीति की उच्च पीठ पर प्रतिष्ठित किया। डॉ0 एस0 गोपाल लिखते हैं– बंग भंग ने अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं को अज्ञात प्रेरणा दी थी और स्वतन्त्रता का जहाज अनेक वर्षों की यात्रा के बाद वापस बन्दरगाह पर लौट आया था। वस्तुतः उग्रवादियों के कार्यक्रमों में विदेशी माल का वहिष्कार और स्वदेशी माल अंगीकार करना था। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय शिक्षा व सत्याग्रह पर भी बल दिया गया।

प्रथम विश्व–युद्ध आरम्भ होने के समय भारतीय राजनैतिक कांग्रेस उदारवादी दल के नेतृत्व में थी। कांग्रेस ने अंग्रेजो के युद्ध प्रयत्नों में सहायता देने को, एक कर्त्तव्य तथा सौदा करने की भावना से समर्थन दिया परन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे जो यह समझते थे कि कोई रियासतें नहीं मिलेंगी जब तक कि सरकार पर लोकप्रिय दबाव नहीं डाला जायेगा। इसलिये एक लोकप्रिय आन्दोलन और स्वशासन संघ की आवश्यकता अनुभव की गई। 1915 में ऐनी वेंसेण्ट ने आइरिश होम रूल के नमूने पर भारत में होमरूल लीग स्थापित करने की घोषणा की। 1916 में तिलक ने पूना में अपनी होमरूल लीग स्थापित की। इनका उद्देश्य आपसी तालमेल के साथ सरकार पर दबाब डालकर भारत को स्वशासन दिलाना था।[76] इसके अतिरिक्त 1916 में कांग्रेस और लीग में समझौता हो गया

ताकि संवैधानिक सुधारों की एक योजना अपनाई जां सके और इसके फलस्वरूप 19 स्मरण पत्र में समकालीन राजनैतिक विचारों को साकार रूप दिया गया। इन समकालीन राजनैतिक गतिविधियों और युद्ध में अंग्रेजों की स्थिति बहुत अच्छी न होने के कारण सचिव लार्ड माण्टेस्क्यू ने अंग्रेजी संसद की लार्डज सभा में 20 अगस्त 1917 को एक विशेष महत्वपूर्ण घोषणा की और 1919 में भारत सरकार अधिनियम 1919 अंग्रेजी संसद में पारित कर दिया गया। परन्तु जिस तरह 1909 में घोषित संवैधानिक सुधारों ने नरम पंथियों व गरम पंथियों दोंनों को बहुत निराश किया था।[77] उसी प्रकार के अधिनियम से भी राजनैतिक आकाक्षायें पूर्ण नहीं हुई।

1907 के अन्त में भारतीय राजनैतिक में एक ओर मोड़ आया। फिरंगी हुकूमत से विक्षुब्ध बंगाल के नवयुवकों ने व्यक्तिगत वीरता और क्रान्तिकारी आतंकवाद की राह पकड़ी। अपनी भावनाओं को व्यक्त करने व आजादी के लिये संघर्ष करने के लिये उनके पास कोई तरीका शेष नहीं बचा था। नरमपंथी राजनीति अव्यावहारिक हो चुकी थी। सरकार दमन पर उतारू थी और गरमपंथी राजनीति भी असफल सिद्ध हो रही थी। ये घटनायें भी क्रान्तिकारी आतंकवाद को पनपाने के लिये जिम्मेदार थीं।[78] अब मुख्य सवाल था कि बल प्रयोग का कौन सा तरीका अपनाया जाये? अतः क्रान्तिकारियों ने तत्काल के लिये आयरलैण्ड राष्ट्रवादियों और रूसी निहिलिस्टों व पापुलिस्टों के संघर्ष के तरीकों को अपना लिया। बदनाम अंग्रेज अफसरों की छापा की योजना बनी। इनका मानना था कि ऐसी हत्याओं से शासकों का दिल दहल जायेगा और भारतीय जनता को संघर्ष की प्रेरणा मिलेगी।

1904 में वी० डी० सावरकर ने अभिनव भारत नामक क्रान्तिकारी संगठन बनाया। चापेकर बन्धुओं ने रैण्ड व एमहर्स्ट की हत्या की, प्रफुल्लचाकी व खुदीराम बोस ने किंग्सफोर्ड की हत्या का असफल प्रयास किया, रास बिहारी बोस, सचिन सान्याल ने लार्ड हार्डिग को मारने का असफल प्रयास किया तथा एच० आर० ए० के सदस्यों ने काकोरी

काण्ड को अंजाम दिया। अतः यह सावित कर दिया कि अब अंग्रेजी हुकूमत की मनमानी नहीं चलेगी। देखते–देखते पूरे देश में क्रान्तिकारियों के अनेक गुप्त संगठन बन गये। जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे 'अनुशीलन–समिति– व 'युगान्तर'। सुभाष चन्द्र बोस ने कहा–The ultimate object of the revolutionaries is not terrorism but revolution and the purpose of the revolutiou is to install a national govrernment"[80]

1908–18 के बीच 186 क्रान्तिकारी या तो मारे गये या गिरफ्तार हो गये। क्रान्तिकारी आतंकवाद धीरे–धीरे समाप्त होने लगा। बलपूर्वक अंग्रेजी हुकूमत का तख्ता पलटने का प्रयास सफल न हो सके। व्यापक जनाधार के बिना व्यक्तिगत वीरता साम्राज्यवाद से कब तक लोहा लेती। ये क्रान्तिकारी गुट साम्राज्यवादी उपनिवेशवादी सत्ता के दमन के सामने न टिक सकी। परन्तु इन मुटठी भर क्रान्तिकारियों ने जिस अदम्य साहस व बलिदान का परिचय दिया यह राष्ट्रीयता को मजबूत बनाने में सहायक सिद्ध हुआ और उसने भारत के पुरुषत्व को जाग्रत कर दिया।

1919–47 से भारतीय राजनैतिक परिदृश्य तथा कांग्रेस पर गाँधी का वर्चस्व रहा। इन्होंने भारतीय राजनीति में एक नई विचारधारा को सूत्रपात किया। कांग्रेस ने छुपकर षडयन्त्रों की नीति की निन्दा की और अन्याय की स्पष्ट और सामने से विरोध करने का आहवान किया।[81] प्रथम विश्व युद्ध में कांग्रेस ने राजभक्ति का परिचय दिया। गाँधी ने स्थान–स्थान पर जाकर लोंगो को सेना में भर्ती और युद्ध के लिये प्रयत्न करने की प्रेरणा दी। लोग उन्हें सरकार का भर्ती करने वाला सार्जेण्ट के नाम से पुकारते थे। परन्तु 1919 की घटनाओं ने उन्हें पूर्णतः बदल दिया। रौलटएक्ट, जलियाँ वाला हत्या काण्ड और खिलाफत के विवाद में अंग्रेजों की भूमिका से वे अत्यन्त आहत हुये। चम्पारण, अहमदाबाद व खेड़ा में सफल आन्दोलन के बाद गाँधी ने (कांग्रेस) 1920 में असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ किया। इसके अन्तर्गत सरकारी उपाधियाँ छोड़नी थी, विधान सभाओं, न्यायालयों, शैक्षणिक संस्थाओं तथा विदेशी माल आदि का त्याग करना था और अन्त में कर भी नहीं

देने थे। इसके विपरीत स्वयं को अनुशासन में रखना, तथा राजनैतिक शिक्षा संस्थाओं को बचाना आपसी झगड़े पंच–निर्णय द्वारा तय करना, हाथ से निर्मित कपड़े का प्रयोग करना आदि था। 1921 में इस आन्दोलन के अन्तर्गत लगभग 30,000 व्यक्ति जेल गये। आन्दोलन अपने चरम पर था परन्तु चौरी–चौरा काण्ड से क्षुब्ध होकर गांधी ने 1922 में यह आन्दोलन वापस ले लिया। इसके पश्चात राजनीति में स्थिरता का दौर आया। 1926–27 में भारत में साम्प्रदायिक दंगे हुये। गांधी जी भी इस समय मानसिक विषाद के चलते सक्रिय राज से लगभग बाहर ही थे।[82] अचानक भारतीय राष्ट्रवादियों को एक सुअवसर प्राप्त हुआ, जब इर्विन ने नवम्बर 1927 में साइमन आयोग की नियुक्ति की सूचना दी। इस घटना से समस्त राजनीतिक वातावरण में विजली की लहर दौड़ गई, और सभी इस आयोग का विरोध करने हेतु उद्यत हो उठे। प्रच्छन्न भारतीय शिकायतें एवं अपूर्ण आशायें जाग उठीं और इन सभी ने एक महान सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सा रूप धारण कर लिया। इसलिये गांधी ने 1929 में अपनी यूरोप यात्रा को रद्द करते हुए यंग इण्डिया में लिखा–'मुझे ऐसा लगता है कि यदि मैं यूरोप चला गया तो लोगों के साथ धोखा करने का अपराधी होऊँगा। मेरी अंतरात्मा मुझसे कहती है कि सिर्फ जो कुछ मेरे सामने आता है उसका मुकाबला करने के लिये मुझे तैयार रहना चाहिए। बल्कि मुझे सोच–विचार कर कोई कार्यक्रम सुझाना चाहिए। इन सबसे ऊपर मुझे अगले वर्ष के संघर्ष के लिये तैयार रहना चाहिए। इसकी शक्ल चाहे जो भी हो।''[83]

वास्तव में इस तरह से गांधी जनता को संघर्ष हेतु प्रेरित कर रहे थे। यद्यपि 1924 में उन्हें खराब स्वास्थ्य के चलते रिहा किया गया था। परन्तु 1929 तक वे काठियाबाडद्व मध्य भारत, बंगाल, मालावार, त्रावनकोर, बिहार, संयुक्त प्रांत, कच्छ, असम, महाराष्ट्र कर्नाटक, तमिलनाडू, उड़ीसा, सिंध, आन्ध्र प्रदेश के 319 गांवों का दौरा कर चुके थे। इन समय उनकी आयु 60 वर्ष हो चुकी थी।

फरवरी 1930 तक गांधी ने यह निश्चय कर लिया था कि वह सविनय अवज्ञा

आन्दोलन आरम्भ करेंगे और नमक बनाने के बिरुद्ध कानूनों को तोड़ेगे।[84] असहयोग आन्दोलन का उद्देश्य प्रशासन को ठप्प करना था। अथवा उसमें गतिरोध पैदा करना था। परन्तु स0 अ0 आ0 का उद्देश्य प्रशासन को अस्तव्यस्त करना था, विशेषकर सार्वजनिक रूप से अवैध कार्यक्रमों द्वारा जिनमें करों का न देना शामिल था। 12 मार्च 1930 को गांधी ने 78 स्वयंसेवकों के साथ दाण्डी के लिये पद यात्रा (24 मील) प्रारम्भ की। 24 दिन बाद वहाँ पहुँचकर गांधी ने नमक कानून तोड़ा। एक अंग्रेज समाचार संवाददाता ने इसकी खिल्ली उड़ाते हुये कहा—क्या एक सम्राट को एक केतली में पानी उबालने से हराया जा सकता है।[85] डॉ0 ताराचन्द्र लिखते है—यह एक अत्यन्त प्रभावशाली अस्त्र था। कोई बड़े से बड़ा सैनिक नेता भी इससे अच्छी रणनीति नहीं अपना सकता था।[86] इसके साथ ही सम्पूर्ण भारत में कानूनों को तोड़ा गया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 60,000 से भी अधिक लोग जेल गये जबकि नेहरू ने यह संख्या 92,124 निश्चित की थी।

सप्रु जयकर द शास्त्री की मध्यस्थता के कारण गांधी इरविन समझौता (5 मार्च 1931) हुआ। जिसके तहत 1931 में गांधी ने गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया। गोलमेज से गांधी की बैरंग वापसी ने गांधी को पुनः आन्दोलन करने पर मजबूर कर दिया। 4 जनवरी को गांधी जी गिरफ्तार कर लिये गये। कांग्रेस को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। कांग्रेस के अनुसार—1 लाख 20 हजार से अधिक व्यक्ति 1933 के अंत तक गिरफ्तार कर लिये गये।[87]

द्वितीय विश्व युद्ध के समय जापानी आक्रमण के बढ़ते हुये खतरे की आशंका तथा क्रिप्स मिशन की विफलता ने गांधी के व्यवहार में मूलभूत परिवर्तन ला दिया। 14 जुलाई 1942 को वर्धा में भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित कर दिया जहाँ गांधी ने 'करो या मरो' का इतिहास प्रसिद्ध नारा दिया। इसके तहत बम्बई, अहमदाबाद, पूणे, दिल्ली आदि स्थानों पर व्यापक तौर पर उपद्रव हुये। हड़तालें हुई, सार्वजनिक हिंसा के प्रयास किये गये तथा सभी प्रकार के संचार—साधनों वा सेना और पुलिस के विरुद्ध तोड़—फोड़ तथा विध्वंस किये

गये। रेलवे डाक व तार की सम्पत्तियों को बड़े पैमाने पर विनाश किया गया। सितम्बर 1942 के बढ़ते दमनचक्र के कारण आन्दोलन भूमिगत कर दिया गया। 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति व 'भारत छोड़ो' की व्यापक प्रगति को देखते हुये वेवेल योजना प्रस्तुत की गई। परन्तु जिन्ना की हठधर्मिता कि कार्यकारिणी परिषद में समस्त मुसलमानों के नाम लींग मानोनीत करेगी का कांग्रेस ने विरोध किया। अतएव समझौता अनिर्णीत रहा। मार्च 1946 लीग व कांग्रेस के परस्पर विरोध व युद्धोपरान्त उत्पन्न संवैधानिक जटिलता के समाधान हेतु ब्रिटिश सरकार ने एक शिष्टमण्डल भारत भेजा। कैबिनेट मिशन ने सत्ता हस्तान्तरण हेतु विभिन्न दल के नेताओं ने बात की। परन्तु जिन्ना कांग्रेस द्वारा प्रस्तावित किसी मुसलमान को स्वीकार करने के पाए में नहीं थे। गतिरोध के चलते लीग ने 16 अगस्त 1946 को सीधी कार्यवाही दिवस मनाया जिसका परिणाम भीषण साम्प्रदायिक दंगो के रूप में सामने आया। अन्ततः दोनों ने अंतरिम सरकार की योजना को स्वीकार कर लिया।

भारत की तत्कालीन स्थिति से चिन्तित होकर प्रधानमंत्री एटली ने घोषणा की कि वे 30 जून 1948 तक सत्ता भारतीयों को सौंप देंगे। इस योजना की क्रियान्विति हेतु बेवल के स्थान पर माउन्टवेटन को वायसराय बनाया गया। जिन्होंने 3 जून 1947 को अपनी योजनानुसार–

(1) भारत को दो स्वतंत्र राज्यों में विभाजित कर दिया।

(2) पंजाब व बंगाल की प्रान्तीय विधान सभाओं के हिन्दू व मुस्लिम सदस्यों को अलग–अलग बैठकों में यह निश्चित करना था कि वे विभाजन के पक्ष में है अथवा नहीं।

पंजाब और बंगाल के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों ने पाक के पक्ष में तथा हिन्दू बहुल क्षेत्रों ने भारत के पक्ष में निर्णय दिया। अन्ततः 18 जुलाई 1947 को पारित भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम द्वारा 15 अगस्त 1947 को भारत को विखण्डित स्वतंत्रता मिली।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1—आधुनिक भारत का इतिहास, सम्पा0 राम लखन शुक्ल, पृष्ठ 385

2—चोपडा, पुरी, दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास पृ0 77

3—बसु, पी.एस. केशवचन्द्र सेन एंड हिज वर्क्स (1937)

4—चेटर्जी, आर0 : राममोहन राय एंड मार्डन इण्डिया (1901)

5—हंटर, डब्ल्यू, डब्ल्यू: हिंद इंडिया मुसममान्स (1969)

6—केलोक, जेम्स' महादेव गोविन्द रानाडे (1926)

7—मेंडडोनल्य के0 एम0 राममोहन राय (1879)

8—शुक्ला आर0 एल0 आधुनिक भारत का इतिहास पृ0 342

9—शुक्ला आर0 एल0 आधुनिक भारत का इतिहास पृ

10—शुक्ला आर0 एल0 आधुनिक भारत का इतिहास पृ0 343

11—शुक्ला आर0 एल0 आधुनिक भारत का इतिहास पृ0 344

12—आर0 एल0 शुक्ल पृ0 344

13—चाणक्य सिविल, सर्विसेज टुडे जुलाई 2005

14—आर0 एल0 शुक्ल पृ0 365

15—चाणक्य सिविल, सर्विसेज टुडे जुलाई 2005

16—केलोक जेम्स: महादेव गोविन्द रानाडे

17—चाणक्य सिविल, सर्विसेज टुडे जुलाई 2005

18—चोपडा, पुरी, दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास पृ0 138

19—ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 282

20—ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 282

21—चोपडा, पुरी, दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ0 77

22—

23—राम लखन शुक्ला— आधुनिक भारत का इतिहास पृ0 367

24—चोपडा, पुरी, दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ0 139

25–राम लखन शुक्ला– आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 367

26–राम लखन शुक्ला– आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 369

27–विपिन चन्द्रा, भारत का स्वातंत्र्योत्तर संघर्ष

28–राम लखन शुक्ला, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0

29–ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास

30–ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास

31–बसु0 डी0 डी0, भारत का संविधान, पृ0 96

32–सुभाष कश्यप, भारत का संविधानिक विकास और संविधान

33–यशपाल ग्रोवर, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, पृ0 35

34–R.C. Dutt. The Economic history of India Vol 2 (1960 Ed) p 319

35–ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास पृ0 216

36–B.L. GROVER' A documentary study of British policy towards Indian Nationalidn 1885-1909

37–यशपाल ग्रोवर, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास पृ0 52

38–मजूमदार राय चौधरी दत्त, भारत का बृहद इतिहास, पृ0 282

39–विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ0 100

40–यशपाल ग्रोवर, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास पृ0 67

41–डी0 डी0 बसु, भारत का संविधान–एक परिचय पृ08

42–यशपाल ग्रोवर, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास पृ0 496

43–मजूमदार राय चौधरी दत्त, भारत का बृहद इतिहास, पृ0 291

44–विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ0 257

45–ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 405

46–डी0 डी0 बसु, भारत का संविधान–एक परिचय पृ0 16

47–

48–यशपाल ग्रोवर, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास पृ0 508

49–ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 252

50–वी0 एल ग्रोवर, 448 औपनिवेशिक शासन के अधीन भारतीय अर्थव्यवस्था

51–इसे रजनी पामदत्ता ने देश की समृद्धि और जनता की गरीबी नाम दिया

52-R.L.SHUKLA P.N. 136

53-POWENTY AND UNBRITISH RULE IN INDIA NOROUJ

54-The economic history of Infoia in Victorian age R.c.Dutta

55– दास पुरी चोपडा, भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, भाग 3

56–सव्यसाची भट्टाचार्य, आधुनिक भारत का अर्थिक इतिहास

57–विपिन चन्द्रा, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष

58–आर0 एल शुक्ला, 1857 के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था पर बिट्रिश शासन का प्रभाव पेज0 165

59– वी0 आर ग्रोवर, 451

60–R.L.SHUKLA P.N. 157

61–सव्यसाची भट्टाचार्य–आधुनिक भारत का अर्थिक इतिहास 55

62–दास पुरी चोपडा भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहसा भाग 194

63-S.S.Bhattecharya 39

64–निर्मल कुमार चन्द्र द्वारा संकलित, शिवसुव्रमण्यम के 1938–39 के स्थिर मूल्याभावों के आँकड़ो पर

65–पुरी दास चोपड़ा भाग 3 पेज 218

66–यशपाल ग्रोवर भा0 भारत का इतिहास, भारतीय रा0 आन्दो0 का उत्थान एवं विकास, अध्याय 33 पृ0 290

67–यशपाल ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 291

68–मजूमदार राय चौधरी दत्त, भारत का बृहद इतिहास, पृ0 260

69–यशपाल ग्प्रेवर, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, पृ0 178

70–B.L.Grover a documentary study of policy towards Indian Nation alidm p 11

71–यशपाल ग्प्रेवर, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, पृ0 179

72–Congress oresidentidl addresses natedon co. (madead 1935) vol-1p 180-181

73–यशपाल ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 380

74–Ouoted in m.r. Palande ed source matorial for a History og the freedom movement in India vo 2 p. 848-9

75-Report on the twevtieth conjress; 1904 Resolutiou

76–यशपाल ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 309

77–विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ0 100

78–विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ0 101

79–विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ0 103

80–यशपाल ग्रेवर, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, पृ0 210

81–यशपाल ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 315

82–यशपाल ग्रेवर, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, पृ0 264

83–विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ0 204

84–यशपाल ग्रेवर, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, पृ0 268

85–यशपाल ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 316

86–यशपाल ग्रेवर, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, पृ0 270

87–मजूमदार राय चौधरी दत्त, भारत का बृहद इतिहास, पृ0 352

द्वितीय अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर युगीन परिस्थितियाँ

सामाजिक परिस्थितियाँ

राजनीतिक परिस्थितियाँ

आर्थिक परिस्थितियाँ

ऐतिहासिक परिस्थितियाँ

द्वितीय अध्याय

सामाजिक परिस्थितियाँ– 19‹7 के बाद समाज का ढाँचा पूर्णतः विश्रृंखलित था। सभी जातियाँ परस्पर विद्वेष की आग में जल रहीं थीं। एक दूसरे की बुराई करना ही उनका उद्‌देश्य था। दृष्टिकोण की यह संकीर्णता उन्हें निरन्तर अधोगति की ओर ले जा रही थी। ब्राह्मण अपने अतीत गौरव गर्व में चूर, देश में वर्तमान अन्य जातियों को हेय दृष्टि से देखते थे। इनसे समाज में व्याप्त छुआछूत और अन्धविश्वास की भावना को वृद्धि–प्रोत्साहन मिलता था। ये पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों के पोषक एवं समर्थक थे। इतर जातियों को अपने से निम्न और पतित समझने के कारण इनके अत्याचार बराबर उन पर बढ़ते ही जा रहे थे इससे अन्य जातियों में बड़ा असन्तोष फैल रहा था। ब्राह्मण ही उस समय समाज के कर्णधार थे। सामाजिक नीतियों का निर्धारण करना उनके ही हाथ में था। शिक्षा दीक्षा की ओर उनका ध्यान नहीं था, केवल ब्राह्मण कुल में जन्म लेना ही उनके लिये सबसे बड़े स्वाभिमान और श्रेष्ठता की बात थी। इनकी इसी विभेद नीति के कारण अन्य सभी निम्न जातियाँ अपने–अपने कार्यों के प्रति उदासीन होती जा रहीं थीं। ब्राह्मण नवीनता के प्रतिद्वन्द्वी थे वे अपने प्राचीन गुरुत्व और पापाचार के संरक्षण में व्यस्त थे। क्षत्रिय अपने वीरत्व को भूल विसार, विदेशी शासकों की चाटुकारिता करने में ही अपनी भलाई देख रहे थे। वैश्यों के व्यापार में भी अंग्रेजों की शोषण नीति के कारण अब कोई लाभ नहीं रह गया था।

ब्राह्मणों की संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण सामाजिक उन्नति में बड़ी बाधा पड रही थी। कोई भी व्यक्ति स्वेच्छया समुद्र यात्रा नहीं कर सकता था। यदि कोई नियम को तोड़ समुद्र यात्रा करता भी था तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। इससे अन्य देशों से भारतीयों का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता था। धर्मीयता और जातीयता के कारण समाज में एक क्रान्ति सी उत्पन्न हो गयी थी। सम्पूर्ण हिन्दू समाज दो वर्गों में विभक्त था उच्चवर्ग और निम्न वर्ग। उच्चवर्ग के लोग जातीयता और प्राचीनता के

शोषक–समर्थक थे, निम्न वर्ग के लोग इनका कड़ा विरोध कर रहे थे। आपसी एकता और संगठन बिलकुल समाप्त हो गया था। चारों ओर फूट और विद्वेष के बादल आकाश में मँड़रा रहे थे इसके साथ ही समाज़ में व्यभिचार और नशाखोरी भी जोरों से फैल रही थी। ब्रिटिश शासक भी अपनी सत्ता और शोषण नीति को स्थायी बनाये रखने के लिये कूटनीति से काम ले रहे थे। भारतीयों को आलसी और अकर्मण्य बनाने के लिये उनकी ओर से बड़े पैमाने पर मादक वस्तुओं का प्रचार किया जा रहा था और भेदनीति को अपना कर यहाँ की दो प्रमुख जातियों हिन्दू और मुसलमान को आपस में लड़ाया जा रहा था। इस प्रकार समाज में पूरी तरह अशान्ति छायी हुयी थी।

इस समय स्त्रियों की दशा बड़ी ही दयनीय थी। पर्दा प्रथा के प्रचलन के कारण वे घर की चार दीवारी में बन्द रहती थीं जिससे उनका बौद्धिक और मानसिक विकास नहीं हो पाता था, साथ ही पतियों के दुर्व्यवहार से उन्हें अनेक कष्ट झेलने पड़ते थे। वे एक दासी की भाँति अपना जीवन व्यतीत करती थीं। पतियों के द्वारा उन्हें सदैव भर्त्सना और ताड़ना मिलती रहती थी। लड़कियों को पढ़ाना भी उस समय हेय समझा जाता था। लड़कों को शिक्षा भी उस समय बहुत सीमित थी। यदि कभी कोई लड़की पढ़ भी गयी तो उसकी शादी होने में बहुत परेशानी होती थी। पढ़ी–लिखी लड़की से लोग शादी करने में एतराज करते थे। इसके अतिरिक्त समाज में बाल विवाह बृद्ध विवाह बहुविवाह आदि कुप्रथायें भी फैली थीं। बचपन में ही लड़के लड़कियों की शादी कर दी जाती थी। जिससे उनका शारीरिक पतन तो होता ही था, उनका आगामी विकास भी रुक जाता था। दहेज प्रथा के प्रचलन के कारण निर्धन माता–पिता अपनी फूल जैसी कोमल सुकुमार अल्पवयस्क कन्याओं की शादी वृद्ध पुरुषों से कर देते थे जिससे समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ती जा रही थी। बहुविवाह करने की उस समय एक परिपाटी सी बन गयी थी। एक साथ कई स्त्रियाँ रखने में लोग अपनी शान समझते थे। इससे स्त्रियों की इज्जत भी कम होती थी और उन पर अत्याचार भी अधिक किये जाते थे। इन कुरीतियों को दूर करने के लिये

समाज सुधारकों ने बड़े प्रयत्न किये। सन 1872 में केशवचन्द्र सेन के प्रयास से बालविवाह और बहुविवाह पर सरकार की ओर से प्रतिबंध लगाया गया आगे चलकर पारसी सुधारक एम0 वी0 मालवारी तथा अन्य सुधारकों के प्रयत्न से सन् 1891 में सहवास कानून (एज आफ कन्सेन्ट एक्ट) पास हुआ जिसके द्वारा विवाह करने की आयु पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। पर यह प्रतिबन्ध न तो जनता द्वारा मान्य ही हुआ और न सरकार में। और न इसे लोगों को बाध्य ही किया। राजपूताना तथा देश के कुछ अन्य भागों में कन्या विवाह की परेशानियों से बचने के लिये कन्याओं का बध कर दिया जाता था। कन्या के जन्म लेते ही मातायें उसे विष देकर मार डालती थीं। कभी–कभी वंशवृद्धि के लिये पुत्रों की बलि भी दी जाती थी। दहेज के लोभ में लोग विवाह करते थे और पत्नियों को मार डालते थे। काली चण्डी आदि की उपासना के लिये तान्त्रिक मत वाले नर बलि चढ़ाते और नर माँस का प्रसाद लेते थे। इस प्रकार समाज में बहुत सी कुप्रथायें फैली थीं। सरकार ने इस नृशंस प्रथाओं को सर्वप्रथम 1795 ई0 में बन्द करने का प्रयत्न किया पर कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। इसके बाद 1802 ई0 में सरकार ने पुनः कानून बनाया और उसे कड़ाई से लागू भी किया पर ये प्रथायें पूर्णतः बन्द नहीं हुईं।

19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बंगाल राजपूताना और दक्षिणी भारत में सतीप्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। पति के मरने के बाद स्त्री यदि स्वेच्छया सती नहीं होती थी तो उसे जबरदस्ती चिता में धकेल दिया जाता था। यदि कभी कोई स्त्री सती होने से बच भी गयी तो उसे बड़ा कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ता था। न तो वह अच्छे वस्त्र ही पहन सकती थी और न अच्छा खाना ही खा सकती थी। समाज उसे गिरी नजरों से देखता था उसका जीवित रहना मृतक के समान ही था। राजाराममोहन राय ने इस प्रथा के विरोध में एक बहुत बड़ा आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसके परिणाम स्वरूप 1829 ई0 में सरकार द्वारा इस प्रथा को दण्डनीय घोषित किया गया। सरकार द्वारा रोक लगाये जाने से यह सती प्रथा तो बहुत कम हो गयी पर समाज में विधवाओं की समस्या सामने आ

खड़ी हुयी । वृद्ध विवाह प्रथा के प्रचलन से समाज में विधवाओं की संख्या यों ही बढ़ रही थी इस सती प्रथा पर संरकारी रोक लगा दिये जाने से इसकी संख्या बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। अठारह, बीस, साल की विधवाओं को भारस्वरूप अपना जीवन यापन करते देख ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने विधवा विवाह का आन्दोलन चलाया जिसे सन् 1856 में सरकार ने वैध करार दिया। फिर भी हिन्दुओं की अतिशय धर्मान्धता के कारण इस दिशा में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ।

अछूत वर्ग का निर्माण हिन्दू वर्ण व्यवस्था के संगठन में लोग शताब्दियों के क्षयकारी घुन का परिणाम है। इस वर्ग के सदस्य समाज के श्रेष्ठतर वर्गों पर उदर पोषण हेतु आश्रित रहते आये हैं। उस समय देवालयों तथा मठों के द्वारा इस वर्ग के लिये बन्द रहते थे। कुछ प्रान्तों में इस श्रेणी के मनुष्यों को सवर्ण हिन्दुओं से बचकर चलने का आदेश था।

हिन्दू सामाजिक संगठन की तीन प्रमुख विशेषतायें हैं। सन्तुलित वर्णव्यवस्था, सम्मिलित परिवार प्रथा तथा आत्मनिर्भर गाँव। आंग्ल प्रमुख वृद्धि के साथ रेल, तार, पोत, तथा चित्रपट आदि के आगमन ने वर्गीय पवित्रता तथा अपवित्रता की परिधियों को तोड़ दिया पदों के मोह से कुटुम्ब के सदस्यों को स्थानान्तरण करना पड़ा। तथा सामूहिक परिवार पद्धति खण्ड–खण्ड होने लगी। आर्थिक पराभव ने गाँवों की आत्मनिर्भरता छीन ली। घोर व्यक्तिवादी पश्चिमी सभ्यता ने वर्ण व्यवस्था की नींव हिला दी।

सामाजिक स्वतन्त्रता के अभाव को दूर करने का कुछ प्रयत्न इस युग की समाज सुधार सम्बन्धी संस्थाओं, ब्रह्म समाज प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि में किया लेकिन इनमें भी कहीं दलगत संकीर्णता है। कहीं व्यर्थ का रूढ़िवाद तथा कहीं एक नवीन प्रकार का कटटरपन है अतः जहाँ इन समाज सुधार सम्बन्धी संस्थाओं ने कुछ रूढ़ियों का इन्यूलन यिा वहाँ कुछ नई रूढ़ियों के विष वृक्षों के बीज भी बो दिये।

अंग्रेजो ने व्यापार के माध्यम से अपने देश को वैभव सम्पन्न एवं धनवान बनाने के

उद्देश्य से स्वर्ण देश भारत में प्रवेश किया था। लेकिन जब शासन सूत्र ही उनके हाथ में आ गया तब फिर उनकी अर्थ लिप्सा का मार्ग कौन रोक सकता था। उन्होंने यहाँ के अधिकांश अन्न को इंग्लेण्ड भेजने का कार्य प्रारम्भ किया। जनता कष्टों में पड़ी कराहती थी दुर्भिक्षों का ताँता बँधा हुआ था। यातायात के अनेक साधन सुलभ हो जाने पर भी दुर्भिक्ष ग्रस्त क्षेत्रों में अन्न पहुँचाने की व्यवस्था नहीं हो पाती थी। इसका मुख्य कारण डेश की आर्थिक दुर्दशा थी। लोगों को भूख से तड़प–तड़प कर प्राण त्यागने पड़ते थे।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अकालों का ताँता लग गया था। हैजा, प्लेग जैसी महामारियों से हजारों की संख्या में लोग मरने लगे थे। चेचक प्लेग आदि अनेक भंयकर रोग तथा भूचाल आदि भौतिक तथा दैवी आपदाओं का सामना करते–करते मनुष्य हताश हो गया था। अर्थाभाव के कारण अपने संकटों के निवारण का मार्ग वे ढूँढ़ नहीं पाते थे। परिवार के सभी सदस्यों के श्रम में लगे रहने पर भी लोगों को अन्न, वस्त्र के लिये तरसना पड़ता था। शीतकाल की दाँत किटकिटा देने वाली रातें चार–चार व्यक्तियों को एक ही रजाई में काट देनी पड़ती थी। दिन प्रतिदिन भारतीय सम्पत्ति क्षीण होती जा रही थी। किसान दिन भर श्रम करके भी भरपेट अन्न नहीं पाते थे। वे अपनी छाती पत्थर का बना भूख से तड़पते अपने बच्चों को देखते रहते थे।

आर्थिक परिस्थिति में सुधार का कोई मार्ग न सूझने पर वे पूर्व जन्म में अपने द्वारा किये गये कर्मों के लिये पश्चाताप करते थे। यह आर्थिक दुखस्था उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। भूमि व्यवस्था के जमीदारी प्रथा पर आश्रित हो जाने के कारण देश की जनता जो अधिकतर ग्रामों में बसी हुयी थी, आर्थिक संकटों में पिसकर न केवल ग्रामवासिनी जनता का जीवन ही आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त नहीं था। बल्कि उसका शिक्षित समुदास जो शहरों में निवास करता था, भी इससे तबाह एवं परेशान था पर्याप्त शैक्षणिक योग्यता प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें नौकरी नहीं मिलती थी जिससे इस समुदाय में बेकारों की संख्या दिन व दिन बढ़ती जा रही थी।

तात्पर्य यह है कि इस समय भारतीय जनता कां जीवन आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त था। मशीनों के आविष्कार एवं मिलों की स्थापना से भारतीय कुटीर उद्योग नष्ट हो गये थे जिससे इसमें लगे लोग बेरोजगार हो जाने से कृषि पर निर्भर रहने लगे थे। परिणामतः कृषि पर आश्रित व्यक्तियों की संख्या काफी बढ़ गयी थी। कृषि की स्थिति अच्छी नहीं थी। अनावृष्टि एवं जंगलों के कट जाने से पैदावार बहुत कम हो गयी थी। लेकिन इस स्थिति मं लगान कम नहीं हुआ था। बल्कि बहुत बढ़ गया था। कृषक साल में जो कुछ पैदा करता था वह लगान में ही समाप्त हो जाता था। ऐसी स्थिति परिस्थिति में जीवन जीने के लिये उसे महाजनों से कर्ज लेने के लिये बाध्य होना पड़ता था और यह कर्ज दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा था। यहाँ तक कि भारतीय कृषक कर्ज में ही पैदा होते जीवन जीते और मर जाते थे। मँहगाई भी कई गुना अधिक हो गयी थी। विदेशी वस्तुओं के प्रचार प्रसार के लिये देशी वस्तुओं पर बराबर कर लगते जा रहे थे।

समाज में रिश्वतखोरी भी बढ़ती जा रही थी सरकारी कर्मचारी बिना रिश्वत लिये कोई काम नहीं करते थे। कचहरी और पुलिस विभाग तो रिश्वतखोरी में सबसे आगे थे। विदेशियों की नकल उतारने और फैशन परस्ती करने में भी देश का बहुत सा धन व्यय हो रहा था।

सन् 1906 में डिप्रैस्ड क्लासेज मिशन सोसायटी स्थापित हुयी जिसने समाज के दलित वर्ग के उद्धार के लिये अनेक कार्य किये इसी प्रकार इण्डियन सोशल कान्फ्रेन्स के द्वारा भी दलित वर्गों की उन्नति, सामज में स्त्रियों की दशा में सुधार, बालविवाह निषेध और जाति–भेद को दूर करने के प्रयास किये गये। सन् 1917 ई0 में अंग्रेजी संसद में भारत की व्यवस्थापिका सभाओं में स्त्रियों के प्रतिनिधित्व की माँग हुयी। यह घटना स्त्री समाज की जाग्रति का परिणाम है। इस समय तक कलकत्ता का चितरंजन सेवा सदन पूजा का सेवा सदन और महर्षि कर्वे का विश्वविद्यालय स्थापित हो चुका था। ये संस्थायें एक स्वस्थ समाज–रचना का उद्देश्य लेकर चल रही थीं। समाज की इन विषम परिस्थितियों से

लोगो को मुक्त करने के लिये समाज सुधारकों की ओर से बराबर प्रयत्न हो रहे थे। पर सरकार के असहयोग के कारण प्रगति बड़ी मन्थर गति से हो रही थी।

भारतीय हिन्दू समाज परिवार में न केवल नारी बल्कि अदृश्य समझी जाने वाली जातियों के साथ–साथ किसानों, मजदूरों की स्थिति, सामाजिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से दयनीय थी। शोषण–कार्य मात्र किसानों मजदूरों तक ही सीमित नहीं था। हिन्दू समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत स्पश्य समझी जाने वाली जाति वालों के साथ सवर्ण हिन्दुओं का व्यवहार अच्छा नहीं होता था। उन्हें गाँव से बाहर कुटिया बनाकर रहने के लिये विवश किया जाता था। समाज में मन्दिरों में प्रवेश की उन्हें सख्त मनाही थी। धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने से उन्हें रोक दिया गया था। सार्वजनिक जीवन में सवर्ण हिन्दुओं के कुयें से जल लेने, विद्यालय में पढ़ने, छात्रावासों में ठहरने सड़को पर चलने, अच्छे वस्त्र तथा आभूषण धारण करने आदि की सुविधाओं से वंचित कर दिया गया था। तात्पर्य कि हिन्दु होते हुये भी हिन्दु धर्म के प्रति आस्था भाव रखते हुये भी उन्हें सब प्रकार के अधिकारों से वंचित कर, सवर्ण हिन्दुओं ने घोर नारकीय घृण्य जीवन जीने के लिये विवश कर दिया था। इन सभी कुव्यवस्थाओं के परिणाम स्वरूप उनकी जीवन स्थिति दिनों–दिन बिगड़ती ही गयी। जब देश में पुनरुत्थान की लहर आई, समाज सुधारकों का ध्यान इन विधर्मी बन रहे शूद्रों की ओर गया। देश में जब ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध स्वातन्त्र्य आन्दोलन छिड़ा। देश हितैषी राजनीतिक नेताओं विशेषकर महात्मा गाँधी जवाहर लाल नेहरू का भी ध्यान देश में फैली कट्टर जाति प्रथा, अस्पृश्यता, एवं अदर्शनीयता की ओर आकृष्ट हुआ। समाज राष्ट्र धर्म संस्कृति अर्थ, शिक्षा के सभी दरवाजे उनके लिये पुनः खुल गये।

तत्कालीन समाज न केवल कुरीतियों कुव्यवस्थाओं का आगार था वरन उनकी शिक्षा शिक्षण पद्धति भी दोषपूर्ण थी जिससे समाज की बजाय प्रगति करने के अधःपतन की स्थिति थी।

इस प्रकार सामाजिक स्थिति के प्रत्येक पहलू में पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति शिक्षा के सम्पर्क से परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन कहीं तो सुधार के रूप में हुआ और कहीं क्रान्ति के रूप में।

राजनैतिक परिस्थितियाँ– "अंग्रेजी शक्ति ने भारत की तीन अमूल्य सेवायें की। प्रथम यह कि इसने भारत को एक 'पक्की राजनीतिक' एकता प्रदान की, जो कि भारत के इतिहास में उससे पहले कभी नहीं थी। दूसरे इसने भारत को 'अखण्डित शांति' का युग दिया, तीसरे इस साम्राज्य ने भारतीय लोगों को 'विधि के राज्य' के अधीन निष्पक्ष तथा अपरिवर्तनशील न्याय दिलाया जो कि स्वस्थ राजनीतिक जीवन का आधार है और जिसने असंख्य मनमानी करने वाले निरंकुश राजाओं का स्थान ले लिया है।"[1] रैम्जे म्यूर द्वारा दिया गया यह वक्तव्य यद्यपि निजी विचारधारा से प्रेरित माना जा सकता है पर, इसके अन्दर निहित प्रमुख 3 बिन्दु किसी भी स्वतंत्र राजनैतिक व्यवस्था का आधार होते हैं। जिनकी प्रासंगिकता भारतीय राजनीति के सम्बन्ध में आदिकाल से है।

मनुष्यों ने जब से समूह बनाकर रहना आरम्भ किया तभी से संगठन और नियंत्रण की समस्यायें उठीं और मानव ने शक्ति के प्रयोग का क्षेत्र और उनकी मर्यादायें क्या हो, कैसे एक श्रेष्ठ राज्य व्यवस्था स्थापित हो इस विन्दु पर सोचना शुरू कर दिया। प्राचीन राजनीतिक चिन्तकों ने अपना सारा ध्यान आदर्श राज्य की समस्या पर केन्द्रित किया था, मध्ययुगीन चिन्तकों ने एक ऐसी व्यवस्था का विकास करने के सम्बन्ध में सोचा जिसके अन्तर्गत प्रथ्वी पर ईश्वर के राज्य की स्थापना की जा सके। पिछली कुछ शताब्दियों से या आधुनिक भारत के सन्दर्भ में राजनैतिक व्यवस्था की परिभाषा बदल गयी है। इस नवीन दृष्टिकोण में राजनीतिक शक्ति, प्रभाव व सत्ता[2] में निहित मानी जाती है।

अंग्रेजी सरकार ने भारत और पाकिस्तान को शक्ति के हस्तांतरण में अत्यधिक शीघ्रता दिखलाई। माउन्टबेटन की इस घोषणा (3 जून 1947) और स्वतंत्रता (15 अगस्त 1947) के मध्य केवल 72 दिनों का ही अंतराल था। संभवतः अप्रैल 1947 के उपरांत जो

दंगे हो रहे थे यह उसी का शीघ्र परिणाम था। क्योंकि ब्रिटिश गवर्नर इस समय बढ़ती अराजकता के लिये स्वयं को दोषी नहीं ठहराना चाहते थे। वस्तुतः यह स्थिति तनाव के साथ नियंत्रण में रखी जा सकती थी यदि ब्रिटिश चाहते तो। कांग्रेस अध्यक्ष कृपलानी ने भी कहा था कि "अंग्रेज अपनी सत्ता का (दंगे रोकने में) उपयोग कर सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।"[3]

3 जून 1947 यद्यपि मुस्लिम लीग व जिन्ना के लिये विजय दुन्दुभी थी। राजनैतिक बाध्यता, कुण्ठा व लाचारी की वशीभूत कांग्रेस ने भी इसे अनिच्छा से स्वीकारा। सदैव 'विभाजन मेरी लाश पर होगा' कहने वाले राष्ट्रपिता ने भी इसको अनुनय विनय पर स्वीकार कर लिया। पर इन समस्त नेताओं ने यह ध्यान नहीं दिया कि पंजाब की सिख व हिन्दु जनता पर क्या प्रभाव पड़ेगा। वर्षों से अपने आपको स्थापित करने में जी तोड़ मेहनत करने वाले ये नागरिक विस्थापन का दंश कैसे झेलेंगें यही पीड़ा व्यक्त करते हुये मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कहा था "यह शोक मनाने का समय है, प्रसन्नता का नहीं।" इस सारी ऊहापोह के बाद अंततः वह 'नियत दिन'[4] (15 अगस्त 1947) आ ही गया।

15 अगस्त 1947 को अंग्रेजी राज्य समाप्त हो गया और भारतीय स्वतंत्रता का आरम्भ हुआं 14—15 अगस्त की मध्य रात्रि को संविधान सभा का एक विशेष समारोह हुआ। जिसमें पण्डित नेहरू ने एक भावपूर्ण ऐतिहासिक भाषण दिया। जिसमें उन्होंने कहा 'कि भारत के दुर्भाग्य का अंत होने जा रहा है और आशा है कि भारत अब पुनः अपने व्यक्तित्व को प्राप्त कर सकेगा। उन्होंने कहा था— "बहुत वर्ष पहले हमने अपनी नियति से एक नियत स्थान पर मिलने का प्रण किया था। आज वह समय आ गया है कि हम अपना वचन पूरा करें, संभवतः पूर्णरूपेण तो नहीं परन्तु पर्याप्त मात्रा में। आज मध्यरात्रि के समय जब संसार सो रहा होगा, भारत एक नए जीवन तथा स्वतंत्रता का आह्वान कर जागेगा। इतिहास में ये क्षण कभी—कभी आते हैं जब व्यक्ति प्राचीन स्थितियों को छोड़कर

नवीन परिस्थितियों में चरण रखता है। जब एक युग समाप्त होता है और एक देश की आत्मा को जो चिरकाल तक रौदी जाती रही हो, बोलने का अवसर मिलता है। आओ, इस महत्वपूर्ण अवसर पर, हम लोग मिलकर अपने देश तथा उसकी जनता तथा मानवता की सेवा करने का प्रण करें।"[5]

स्वतंत्रता प्राप्ति पर भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया वो था 'भारतीय रियासतों पर अंग्रेजी सर्वश्रेष्ठता का अंत तथा रियासतों का एकीकरण व विलय'। 1757 प्लासी का युद्ध से लेकर डलहौजी के स्वपगत सिन्द्धान्त तथा विभिन्न रियासतों को अपने अधीन करने वाला क्राउन आज उन्हीं रियासतों को भारत संघ में विलय होते देख रहा था। 1947 के अंग्रेजी संसद द्वारा पारित भारतीय स्वतंत्रता विधेयक में प्रावधान थे "सभी संधियाँ, समझौते इत्यादि जो महामहिम की सरकार तथा भारतीय रियासतों के प्रशासकों के बीच हैं वे सब समाप्त हो जायेंगे।"[6] शाही उपाधियों तथा शैलियों में से "भारत का सम्राट' शब्द हटा दिया जायेगा। भारतीय रियासतों को यह अनुमति होगी कि वे भारत अथवा पाकिस्तान में से किसी एक में सम्मिलित हो जायें।

5 सितम्बर 1946 को बनी, अंतरिम सरकार में सरदार बल्लभ भाई पटेल को रियासतों का विभाग सौंपा गया। उनके प्रमुख सहायक थे–वी0 पी0 मेनन। यद्यपि सर्वोच्चता समाप्त हो चुकी थी और किसी भी प्रदेश में शामिल होना, न होना राजाओं की इच्छाओं पर निर्भर था। यह स्पष्ट हो गया था कि उनके लिये स्वाधीनता में बने रहना बहुत कठिन था। अधिकतर रियासतों ने सम्भरण संचार रेल, तार, बिजली, डाक आदि बुनियादी समस्याओं में न उलझ कर भारत में विलय कर लिया। विलय, परिवर्तन, व एकीकरण वाली तीन चरणों की इस विलय प्रक्रिया को 'पटेल स्कीम'[7] कहा जाता है। यह सरदार पटेल की नीतियों का ही फल था कि नियत दिन' तक 136 रियासतें भारत संघ में शामिल हो चुकी थी।

जम्मू और कश्मीर के महाराजा हरिसिंह ने 26 अक्टूबर 1947 को और हैदराबाद

के निजाम ने 26 अक्टूबर 1948 में विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। परमोच्चता के सन्दर्भ में ब्राउन की यह टिप्पणी भारत संघ की प्रभाविता का उद्‌घोष है कि 'स्वतंत्रता से पूर्व स्थिति कुछ भी क्यों न रही हो अथवा सरदार पटेल ने कुछ भी आश्वासन क्यों न दिये हों। अब यह तथ्य स्पष्ट था कि स्वतंत्रता के कुछ ही काल उपरान्त उस महाद्वीप में नई भारतीय सरकार एक सर्वश्रेष्ठ शक्ति के रूप में उभर चुकी थी।''[8]

प्रमुख विलय–

1–39 रियासतें उड़ीसा में तथा छत्तीसगढ़ की कई रियासतें मध्य प्रान्तों में।

2–61 रियासतों को मिलाकर केन्द्र शासित प्रदेशों का निर्माण।

3–नवम्बर 1954 में फ्राँस द्वारा पांडिचेरी, माहे, चन्द्रनगर सौंपे गये।

4–19 सितम्बर 1961 गोआ पर सैनिक कार्यवाही, पुर्तगाली विस्थापित।

इस प्रकार सरदार पटेल के प्रयासों से भारत संघ की विलय प्रक्रिया पूर्ण हुई पर इसके बाद एकीकरण की इस प्रक्रिया के परिणामतः संविधान ने राज्य पुनर्गठन समिति का गठन 1953 में किया। इसके अध्यक्ष फ़जल अली थे तथा अन्य सदस्य हृदयनाथ कुंजरू व के0 एम0 पणिक्कर थे। कानून 1956 बनाया गया। इस कानून ने राज्यों की ए0 बी0, सी0, डी0 श्रेणीं समाप्त कर दीं, राजप्रमुख का पद समाप्त कर दिया गया और भारत में 14 राज्यों, 6 केन्द्र शासित इकाईयाँ स्थापित कीं। स्वतंत्र भारत के राज्यों को संविधान सभा ने 4 भागों में बाँटा। इनमें निम्न प्रदेश सम्मिलित थे–

भाग (क)– वे राज्य जो ब्रिटिश काल में प्रान्त कहलाते थे और यहाँ गवर्नर प्रमुख था।

राज्य– असम, पं0 बंगाल, उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, बम्बई, मध्यप्रदेश तथा मद्रास।

भाग (ख)– जम्मू कश्मीर, हैदराबाद, मैसूर, द्रावनकोर कोचीन, पटियाला व पूर्वी पंजाब (पेप्सू) मध्यभारत राजस्थान सौराष्ट्र।

भाग (ग)– इनमें वे प्रान्त शामिल थे जो ब्रिटिश राज्य में चीफ कमिशनर के प्रान्त कहे जाते थे। इसके अतिरिक्त कुछ छोटी रियासतें भी इनमें –कुर्ग, अजमेर, कच्छ, दिल्ली, त्रिपुरा, मणिपुर, विलासपुर, भोपाल, हिमांचल प्रदेश, विन्ध्यप्रदेश।

–संविधान निर्माण के समय विन्ध्य क्षेत्र भाग (ख) में था जिसे कालान्तर में भाग (ग) में कर दिया गया।

भाग (घ) अण्डमान निकोबार द्वीप समूह।

यद्यपि राज्य पुनर्गठन आयोग ने सर्वप्रथम भाषाई आधार पर राज्य निर्माण को हतोत्साहित किया पर बाद में J. V.P. (Jawahar vallab Bhai Patel Pattbhi Sitarammaiya) रिपोर्ट के आधार पर 1957 में हैदराबाद व मद्रास के तेलगूभाषी क्षेत्रों को मिलाकर आंध्र प्रदेश का गठन यि गया।[10] उपर्युक्त श्रेणियो को राज्य पुनर्गठन आयोग ने अनावश्यक बताते हुये कुल भारत संघ के 29 राज्यों को । 6 राज्य व 3 केन्द्रशासित प्रदेशों में बाँटा।[11]

स्वतंत्रता के पश्चात भारत की कई प्रारम्भिक समस्यायें थी इनमें सर्वप्रथम थी भारत संघ हेतु एक नवीन संविधान तैयार करना ताकि प्रशासन का काम सुचारु रूप से हो सके। वस्तुत: "किसी देश का संविधान उसकी राजनीतिक व्यवस्था का वह बुनियादी साँचा–ढाँचा निर्धारित करता है जिसके अन्तर्गत उसकी जनता शासित होती है।[12] संविधान स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है। यह राज्य की विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे प्रमुख अंगो की स्थापना करता है और उनकी शाक्तियों की व्याख्या करता है। संविधान की प्रारूप समिति की अध्यक्षता बी0 आर अम्बेडकर करेंगे।

यद्यपि भारतीय संविधान के निर्माण को हरी झंडी कैबिनेट मिशन (1946) में मिल चुकी थी और इस संविधान सभा के गठन के लिये निर्वाचन का कार्य जुलाई अगस्त 1946 में पूरा हुआ। इसकी विशेषतायें निम्न प्रकार थी।13

1–निर्वाचन अप्रत्यक्ष था।

2—एक प्रतिनिधि 10 लाख की जनसंख्या पर था।

3—कुल निर्धारित 389 सदस्यों में से 292 विट्रिश प्रान्त से, 93 रियासतों से, 4 कमिश्नरी से थे।

11 दिसम्बर 1946 को डा0 राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के स्थाई अध्यक्ष बने। यद्यपि इससे पहले संविधान सभा की प्रथम बैठक 9 दिसम्बर 1946 के अस्थाई तौर पर सच्चिदानन्द सिन्हा को अध्यक्ष बनाया गया था। इसके बाद 13 दिसम्बर 1946 को पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने अपना ऐतिहासिक 'उद्देश्य प्रस्ताव' रखा जिसमें भावी प्रभुत्व सम्पन्न लोक तंत्र की स्थापना की रूपरेखा थी।

इस प्रस्ताव में एक संघीय राजव्यवस्था की परिकल्पना की गई। जिसमें अवशिष्ट शक्तियाँ स्वायत इकाईयों के पास होती थी और प्रभुता जनता के हाथों में। सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय, परिस्थिति, अवसर, कानून के समक्ष समानता, विचारधारा, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था, पूजा, व्यवसाय,संगम, कार्य व स्वतंत्रता का प्रावधान था। साथ ही साथ अल्पसंख्यकों, पिछड़ों, जनजातिय क्षेत्रों, दलितों के लिये पर्याप्त रक्षोपाय किये गये। यह मार्गदर्शी सिद्धान्त तथा दर्शन, जिसके आधार पर संविधान का निर्माण करना था। अंततः 22 जनवरी 1947 को संविधान सभा द्वारा स्वीकृत व 26 नवम्बर 1945 द्वारा उद्देशियका में अंगीकृत, अधिनियम व आत्मार्पित कर लिया गया। इसमें राष्ट्र की समाजवाद, पंथ निरपेक्षता अखण्डता[14] शब्द बाद में जोड़े गये।

22 जुलाई 1947 को राष्ट्रध्वज, 26 जनवरी 1950 को राजचिह्न, 24 जनवरी 1950 को राष्ट्रगान स्वीकृत हुआ। इस प्रकार अब तक के सबसे बड़े लोकतांत्रिक संविधान का निर्माण हुआ। 22 भाग, 8 अनुसूची व मूल 395 अनुच्छेदों वाले इस संविधान को बनने में 2 वर्ष, 11 माह, 18 दिन लगे। नागरिकता, निर्वाचन व अंतरिम संसद उपबंध को छोड़कर सारे 26 नवम्बर 1947 को व शेष 26 जनवरी 1950 को लागू कर दिये गये। इसे संविधान की प्रारम्भ की तारीख कहा जाता है।[15] ऐसा नहीं है कि हमारा संविधान विशुद्ध भारतीय

बुद्धिजीवियों की देन हो। इसमें कई देशों के संविधानिक लक्षणों को लिया गया है। वस्तुतः भारत के संविधान निर्माताओं का उद्‌देश्य किसी अनोखे अथवा अद्वितीय संविधान की रचना करना नहीं था, बल्कि वे देश की सामजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए, एक व्यावहारिक संविधान का निर्माण करना चाहते थे।[16] इस प्रकार नवनिर्मित संविधान ने भारतीय राजनीतिक प्रणाली को अत्यन्त मजबूती प्रदान की।

इस प्रारम्भिक मूल समस्या के अलावा भारत को सीमा विवाद, नौकरशाही, सेना व साम्रगी के विभाजन की समस्या, सुलझानी थी। बँटवारे की योजना के अनुसार पंजाब, बंगाल में हिन्दू व मुसलमानों की अलग–अलग बैठक हुई। उन्होंने पाकिस्तान में विलय का निर्णय लिया। फलतः पंजाब व बंगाल का विभाजन तय था। इस सीमा संबधी बटवारे के निर्धारण के लिये अंग्रेजी सरकार ने न्यायमूर्ति रेडक्लिफ की अध्यक्षता में एक सीमा आयोग[17] की नियुक्ति की। 'समय का बन्धन, पूर्ण स्थानीय ज्ञान के अभाव से ग्रस्त इस आयोग ने अस्तव्यस्त जीवन, सांप्रदायिकता व अदृश्य विद्यमान समस्याओं को जन्म दिया।''[18] ठीक इसी समय भारत की राजनैतिक दशा में एक बदलाव आया। गाँधी जी जो बँटवारे से अत्यन्त निराश थे वो इस साप्रंदायिकता का दंश न झेल सके। वे इस कुप्रथा को रोकने अकेले ही नोआखाली चले गये। बाद में सार्वजनिक प्रार्थना सभा (विड़ला भवन) के माध्यम से मर्माहत जनता को सहानुभूति देने का प्रयास करने लगे। विभाजन की त्रासदी कुछ हिन्दुवर्ग को भी रास न आई। 1200 ई0 से 1805 तक मुसलमानों के अधीन रही भारतीय जनता स्वतंत्रता के बाद तम्बुओ में रहना संहन न कर पाई। इस समय 1926 में हिन्दु कट्टर पंथी संस्था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर0 एस0 एस0) अस्तित्व में आ गई थी। ये गांधी जी को बँटवारा न रोकने का जिम्मेदार समझते थे। फलतः ऐसे तनावपूर्ण वातावरण में एक मराठे व्यक्ति नाथूराम गोड्से ने 30 जनवरी 1948 को महात्मा गांधी की पिस्तौल से हत्या कर दी।[19]

इस घटनाक्रम के बाद नेहरू अविवादित नेता के रूप में उभर कर सामने आये। जो

27 मई 1964 तक अपनी मृत्यु तक निर्विवाद भारतीय नेतृत्व कर्ता रहे। मूलतः समाजवादी प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में उनकी उपलब्धियाँ निसंन्देह स्वीकारणीय थीं। वे भारतीय आर्थिक चक्र को द्रुत गति से ले जाना चाहते थे। पंचवर्षीय योजनाओं को स्वीकृति देकर वे इस दिशा में बैठे। उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में अविस्मरणीय काम किया। यद्यपि विदेश नीति के सम्बन्ध में उनको विवादित किया जाता है। पर अपनी निष्पक्षता (गुटनिरपेक्षता) की नीति पर चलकर नेहरू ने विश्व को नया संदेश दिया। नेहरू की विदेश नीति का मूल हमारी प्राचीन संस्कृति में उपलब्ध है–

"आत्मवत् सर्वभूतेषु, विश्वबंधुत्व सर्वे भवन्तु सुखिना सर्वे संतु निरामया"[20]

पड़ोसी देशों से सम्बन्ध के मामले में नेहरू जी सतर्क रहे। पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध तो प्रारम्भ से ही कटुता पूर्ण रहे हैं। कश्मीर राज्य को लेकर पाकिस्तान आज भी जेहाद के नारे लगाता है और उसी के कारण उसने भारत से 1971 तक 3 युद्ध लड़ लिए (1948, 1965,1971) पर भारत का कथन है कि "कश्मीर समस्या धार्मिक प्रश्न नहीं है अपितु प्रशासनिक व राजनैतिक प्रश्न है।"[21] यह समस्या नेहरू तक ही सीमित नहीं थी। लाल बहादुर शास्त्री, इंदिरा गाँधी ने भी इस समस्या का बखूबी, योग्यता के साथ सामना किया। अगले चरण में नवोदित भारत ने नेहरू के नेतृत्व में चीन से समझौता बनाकर रखने की कोशिश की जिसके तहत 22 दिसम्बर 1954 को पंचशील समझौता हुआ। इसके प्रमुख बिन्दु थे–

1– प्रत्येक देश की संप्रभुता व अखंडता के लिऐ परस्पर सम्मान

2– आक्रमण का निषेध

3– अहस्त क्षेप की नीति

4– शांतिपूर्ण सह अस्तित्व

परन्तु 'हिन्दी चीनी भाई–भाई' 1954 का नारा देने वाले व 1955 में बाडुग में नेहरू की प्रशंसा करने वाले चीन ने 1956 में अक्साई चिन को लेकर अचानक 1962 में युद्ध शुरू

कर शांतिकी वैचारिक पहल पर विराम लगा दिया। भारत चीन सीमा विवाद सिर्फ दो देशों के बीच का मामला नहीं है। इसके बहुपक्षीय, अर्न्तराष्ट्रीय, राजनयिक व भू सामरिक पक्ष भी हैं। नेहरू की यह कोशिश रही कि 'यदि चीन को अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी में प्रविष्ट कराया जाये तो उसे सर्वसम्मत राजनयिक आचरण के लिऐ बाध्य किया जा सकेगा।[22] यह सही भी था। शास्त्री युग में इस विन्दु पर पहल की गई। आगे चलकर इंदिरागाँधी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के उक्त यथार्थ को भली भाँति जानती थीं। उन्होंने चीन के बारे में कभी कोई भ्रम नहीं पाला। प्रधानमंत्री पद ग्रहण करने के साथ ही उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि 'भारत चीन के साथ सोहार्द्र पूर्ण सम्बन्ध रखना चाहता है परन्तु आत्म सम्मान गँवाकर या राष्ट्रहित की बलि देकर नहीं।''23 इस प्रकार नेपाल, वर्मा, श्री लंका के साथ भारत के विदेशी संबन्ध सदैव मधुर रहे। अपनी उन्नत व वैचारिक आक्रामक नीतियों के परिणामतः इंदिरागाँधी ने 1971 में पाकिस्तान से पूर्वी बंगाल को पृथक कर 'बांग्लादेश' नामक नये राष्ट्र का निर्माण कराया। जो उनके प्रभावी व्यक्तित्व का परिचायक है व भारत की बढ़ती शक्ति का भी।

विश्व की सबसे पुरानी संस्कृतियों में से एक भारतीय संस्कृति सदैव वैश्विक व निजी संदर्भों में विकसित, उन्मुक्त व विचारशील मानी जाती रही है। एक समय बृहत्तर भारत के रूप में राज्य करने वाले, प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय विवाह करने वाले, व राजनीति का विशुद्ध ग्रंथ लिखने वाले भारतीय राजनैतिक चिन्तकों ने अपनी इस दशा को आगे सदियों तक अक्षुण्ण रखा। उत्थान, पतन समय का चक्रीय क्रम है। इस क्रम में 1947 में स्वतंत्र हुये नवोदित् भारत ने 1971 तक की अपनी किशोरावस्था में जिसे राजनैतिक एकता, अखण्डता व प्रभावपूर्ण विदेशनीति के साथ विश्व रंगमंच पर पदार्पण किया वह अद्भुद था। आज भी इन्हीं 2 दशकों की नीतियों का ही परिणाम है कि भारत परमाणु सम्पन्न, कुशल प्रशासक, व सुरक्षा परिषद् की प्रमुख विकासशील देश के रूप में स्थाई सदस्यता की दावेदारी कर रहा है। जो इसके राजनैतिक प्रभुत्व का प्रमाण है।

आर्थिक परिस्थितियाँ— औपनिवेशिक शासन के शिकंजे में जकड़े विभिन्न देशों में उससे मुक्ति पाने के लिए जो आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आंदोलन चले, उन सबके मुकाबले भारत के आंदोलन को उपनिवेशवाद के आर्थिक वर्चस्व व शोषण की प्रकृति व चरित्र की समझ सबसे ज्यादा थी। संभवतः यही कारण था कि 1947 ई0 में स्वतंत्रता के बाद भारत ने अपने आर्थिक तंत्र को सुविकसित करने के लिए उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं पर विचार कर एक निश्चित रूप रेखा तैयार की। गरीबी, बेरोजगारी, विभाजन की त्रासदी कृषि की छिन्न भिन्न अव्यवस्था, उद्योगों के पतन को अपनी नियतिफल मानकर विभाजित भारत ने अपनी बुद्धिकौशल योग्य नेतृत्व, व जीबटता से आज लगभग विकसित होने की दशा प्राप्त कर ली है। पर इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के पीछे जिन कारकों का योगदान है वे निम्नवत हैं।

14 / 15 अगस्त 1947 ई0[24] को भारत का दो प्रभुसत्ता संपन्न राज्यों में विभाजन किया जाना एक अत्यंत महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना थी। स्वतंत्र आस्तित्व में आने पर भारत संघ और पाकिस्तान पर विभाजन के आर्थिक प्रभाव हानिकारक हुए। करोड़ों लोग अपने घरों से उजड़ गये और लाखों सांप्रदायिक दंगों की चपेट में आ गये। प्राकृतिक सीमाओं से बँधी एक भूमि कई युगों से जो सुसंगठित आर्थिक जीवन विकसित कर पाई थी। वह विभाजन की एक झकझोर देने वाली घटना से छिन्न—भिन्न हो गई। आंतरिक व्यापार और वाणिज्य अस्त—व्यस्त हो गया। परिवहन व संचार प्रणालियाँ टूट गईं। उद्योगों के कच्चे माल व कृषि को अनियमितता के दौर से गुजरना पड़ा। माँग व पूर्ति, उत्पादन व कृषि साधनों हेतु, क्षेत्रीय साधनों पर निर्भरता बढ़ गई। कुल मिलाकर असंतुलन बुरी तरह विगड़ गया और दोनों विभाजित हिस्सों को अपनी खोई प्रतिष्ठा व आर्थिक एकता के दुष्परिणाम भुगतने पड़े।

विभाजन से देश की लगभग 23 प्रतिशत भूमि एवं 20 प्रतिशत जनसंख्या को मिलाकर पाकिस्तान का गठन हुआ।[25] इस भूमि के चले जाने का सबसे बड़ा असर यह

हुआ कि खाने–पीने की चीजों और कच्चेमाल में कमी आ गई। बंगाल का पूर्वी भाग एवं पंजाब का पश्चिमी प्रांत जो पाकिस्तान को मिले थे, वे बहुत उपजाऊ थे। इस समय भारत में चावल उत्पादन 2 करोड़ 84 लाख टन से 2 करोड़ 17 लाख टन रह गया तथा गेहूँ 93 लाख टन से 49 लाख 70 हजार टन रह गया। अनाज की इस कमी का यदि पता लगाया जाये तो इसमें 2 कारक प्रमुख माने जा सकते हैं। प्रथम तो विघटित भारत का क्षेत्र तो 23 प्रतिशत गया पर जनसंख्या 20 प्रतिशत गई। इससे जनसंख्या का दवाब बढ़ा दूसरा स्वयं स्वास्थ संवधी कमी से जूझता भारत अपनी जनसंख्या को नियंत्रित न कर पाया। इस समय सिंचित क्षेत्र का 68 प्रतिशत पाकिस्तान के पास था।

इन सारी समस्याओं को ध्यान में रखकर 1946 में पंड़ित जवाहर लाल नेहरू ने लिखा था "कि हमारी लगभग सभी समस्यायें या तो अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप अथवा उनकी नीतियों के सीधे परिणाम हैं। भारतीय रियासतें, अल्पसंख्याकों के प्रश्न, विदेशी अथवा स्थानीय निहितस्वार्थ– उद्योगों की कमी कृषि की अनदेखी सामाजिक सेवाओं में अत्यधिक पिछड़ापन और सबसे बड़ी दुख की बात भारतीय लोगों की दरिद्रता....।[26] ऐसा नहीं है कि भारत ने इस दिशा में स्वयं कुछ प्रयत्न न किया हो। 1938 में गठित राष्ट्रीय योजना समिति के प्रयत्नों का ही परिणाम था कि योजना आयोग, एन0 डी0 सी0 जैसी संस्थाओं का गठन हुआ। यदि हम स्वतंत्रता के पश्चात भारत की कृषि विकास की अवस्थाओं पर नजर डालें तो 1950–1966 तक इस काल में कृषि मुख्यरूप से परंपरागत पद्धति पर चलती रही जिसकी विशेषतायें निम्न हैं। 2 अक्टूबर 1952 से सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरंभ कर संस्थागत सुधारों को महत्व दिया गया। जिसका प्रारम्भ क्षेत्र नागौर (राजस्थान) था। स्थानीय उपलब्ध साधनों एवं जनसहयोग से कृषि उत्पादकता बढ़ाने के प्रयास, परम्परागत बीजों का प्रयोग, कुछ स्थानों पर विशेष फसलों का उत्पादन, सघन कृषि वृद्धि, मानसून, सिंचाई इसके प्रमुख बिन्दु थे।

1967 के बाद उच्च किस्म के बीज (एच0 बाई0 वी0) विशिष्ट सिंचाई, सुविधाओं,

भूमि संरक्षण के प्रयास, कीटनाशक दवाओं के प्रयोग कृषि विपणन, कृषि उत्पाद एवं वित्त ऋण की उपलब्धता ने 1970 के दशक में कृषि के क्षेत्र में क्रान्तिकारी बदलाव किये। यद्यपि ये प्रयास अनायास ही नहीं हो गये इसके लिये भारत सरकार ने भूमि सुधारों के लिये कई प्रमुख कदम उठाये इसमें प्रमुख कदम था जमींदारी प्रणाली को समाप्त करना।[27] जमींदारी उन्मूलन अधिनियम वी020 को लागू कर सरकार ने 150 सालों से चली आ रही इस सामंती प्रथा की प्रतिरूप प्रणाली को समाप्त कर दिया। 1947 में केन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों को ये निर्देश दिया कि वे अपने क्षेत्र में इस प्रणाली को समाप्त करें। इसी के अनुसार विभिन्न राज्यों ने इसके विरुद्ध कानून बनाये। जमींदारों ने इस कानून के खिलाफ संविधान के अनुच्छेदों का सहारा लेने की कोशिश की पर 1952 ई0 में उच्चतम न्यायालय ने उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश व बिहार को, कुछ अंशों तक छोड़कर यह कानून लागू कर दिया। इसे ध्यने का कारण बढ़ती भूमि अनियमितायें व खेत मजदूर व दासत्वपर। 1951 में 'कृषि श्रम अनुसंधान समिति' के प्रतिवेदन के अनुसार ग्रामीण जनसंख्या का 30 प्रतिशत खेत मजदूर था।[28]

ऐसा नहीं है कि सरकार ने जमींदारों के प्रति अन्याय किया है। सरकार ने व राज्य विधान मण्डलों ने (अपवाद–कश्मीर) इस विचौलिये वर्ग की समाप्ति हेतु 4 अरब 50 करोड़ रूपये की मुआवजा राशि दी जिससे राज्य सरकारों का वित्तीय बोझ बढ़ा।

1–उत्तर प्रदेश– 1जुलाई 1952 (संपत्ति का आठ गुना मुआवजा)

2–मध्य प्रदेश– 1951 (एबीलेशन आफ प्रोप्राइटरी) मुआवजा आय के अनुसार

3–बिहार– 1950 (एक्वीजशन आफ जमींदारी एक्ट) मुआवजा 3–20 गुना)

4–प0 बंगाल– एस्टेट एक्वीजीशन एक्ट 1953

5–मद्रास– एस्टेट एवीलीशन एक्ट 1950

इस भूस्वामी विचालिये वर्ग को समाप्त करना अपने आप में से एक बड़ा कदम था। पर, यह इतना क्रान्तिकारी नहीं था कि इच्छित भूमि–सुधार हो सके। इसी असंतोष ने

1970 के दशक में कई जगह किसानों को प्रभावित किया।

इस अंसतोष के खिलाफ 1960–70 के दशक में सरकार व निजी बुद्धिवेन्ताओं ने कृषि को संरचनात्मक परिवर्तन की बात उठाई। पूँजीवादी तरीके से खेती को प्रोत्साहन देना इस काल की विशेषता है। 1969 में देनियल थार्नर व 1970 में अशोक रूद्र[29] ने इसे परिभाषित करके कहा कि किसान यदि किसी को स्वामित्त न देकर, भाड़े के मजदूरों से खेती कराकर, उत्पादन का बड़ा भाग बाजार में लाता है तो यह मानना पड़ेगा कि खेती पूँजीवादी तरीके से हो रही है। पर यह तरीका बाद में काफी विवादित हो गया। इसके अलावा कृषि और अकाल के सम्बन्ध में 1970 के दशक में प्रोफेसर अमर्त्यसेन का अन्वेषण[30] महत्त्वपूर्ण सावित हुआ। जिससे भारत जैसे विकासशील देश में इस आपदा से निपटने का साधन खोजा गया।

अर्थ व्यवस्था का दूसरा क्षेत्र उद्योग जहाँ स्वतंत्रता के भारत ने सबसे प्रभावी कदम उठाये, एक नियोजित कार्यक्रम का परिणाम था। 15 मार्च 1950 को 'योजना आयोग' का गठन कर तत्कालीन प्रधानमंत्री ने भारत को विकास की नई दिशा दी। तभी से ऐसी परम्परा बन गई कि योजना के लिये धन तभी उपलब्ध होगा जब उसे योजना आयोग से स्वीकृति मिल जाये। अब कार्य–सूचियों में अधिक सामंजस्य स्थापित कर वे सब राज्य सरकारें सुसंगठित योजना बनाने लगीं।[31] इस कार्य से योजना में निवेश के कार्यो को महत्व मिल गया। निवेश का यह क्रम आज तक अनवरत जारी है यदि हम 1948 में भारत में विदेशी पूंजी निवेश व आज की निवेश पर तुलना करें तो जमीन आसमान का फर्क है।

1948 में भारत में विदेशी पूँजी निवेश (करोड़ रुपये में)

औद्योगिक पदार्थो का निर्माण	–	719
व्यापार मर्चेन्ट कंपनियाँ	–	643
परिवहन, बिजली आदि	–	312
खनिज निकालना	–	115

चाय, काफी, रबड़ के बगीचे	–	523
अन्य	–	246
कुल –		2558

स्रोत– Reserve Bank of Indin

कहने का ताप्पर्य योजनाओं ने भारत की आर्थिक दशा को ही बदल दिया। पंचवर्षीय योजनाओं के मूल उद्देश्य उत्पादकता में वृद्धि करना, असमानता कम करना था पर उत्पादनों के साधनों का पूर्ण राष्ट्रीयकरण और सभी उद्योगों को अपने हाथ में ले लेने की नीति बहुत वांछनीय प्रतीत नहीं हुई। इन सारी असमानताओं को ध्यान में रखकर आयोग ने एक मिश्रित अर्थव्यवस्था की सिफारिश की।

1951–1956 के मध्य योजना आयोग ने पहली पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ की। इस योजना को पुनरुत्थान योजना भी कहा जाता है। इस योजना के दीर्घकालीन उद्देश्य उच्च आर्थिक विकास की दर प्राप्त करना था इस योजना का मुख्य उद्देश्य 'कृषि विकास' था। 'हेरद्र क्रोमर' माडल नाम से विख्यात इस योजना ने 80 लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई, 30 बड़े पुल 636 मील की संपर्क सड़कें, 4000 मील की वर्तमान सड़क सुधार 380 मील की रेल लाइन विस्तार, 10 लाख किलोवाट बिजली का उत्पादन किया।32 इस पंचवर्षीय योजना के अन्य उद्देश्य थे–

1– राज्य व नागरिक कार्यक्षेत्रों को स्पष्ट करना।

2– राष्ट्रीय आय में 11–12 प्रतिशत की वृद्धि करना। पर वृद्धि 17.5 प्रतिशत हुई।

3– बिजली व सिंचाई हेतु भाखड़ा नागल, हीराकुण्ड, दामोदर घाटी परियोजना प्रारम्भ हुई।

4– अमेरिका की सहायता से सिंदरी में रासायनिक कारखाना खुला।

5–रेल इंजन हेतु चितरंजन कारखाना व जलपोतों हेतु 'स्टीम नेवीगेसन कारखाना खुला।

6– 1954 में ट्राम्बे में तेल शोधन कारखाना खुला।

कुल मिलाकर पंचवर्षीय योजना के परिणाम उल्लेखनीय रहे।

इसी क्रम में अप्रैल 1956– मार्च 1961 तक योजना आयोग ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार किया। 'भौतिकवादी योजना' के नाम से विख्यात इस योजना का मूल उद्देश्य तीव्र औद्योगीकरण था। इस 'महालनोविस' माडल कहा जाता है। दूसरी पंचवर्षीय योजना के उद्देश्यों का विवरण निम्न है।[33]

1–राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत वृद्धि

2–आधारभूत व भारी उद्योगों पर बल

3– रोजगार के अवसरों में बढ़ोत्तरी

4–आय तथा धन की असमानताओं में कमी करना

5– वड़े पैमाने पर औद्योगीकरण हेतु राउरकेला, भिलाई, दुर्गापुर में कारखाने का निर्माण।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में रेलवे को 9 अरब रूपया और सड़कों को 2 अरब 46 करोड़ रूपया स्वीकृत किया गया।[34] कुल मिलाकर सरकार दूसरी योजना को सरकारी क्षेत्र के 48 अरब रुपये में ही पूरा करना चाहता था।

तीसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि अगस्त 1961 से मार्च 1966 तक थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य 'आत्मनिर्भर बनाना' था। पर 2 बाहरी घटनाओं ने भारत की इस आकांक्षा पर पानी फेर दिया इससे भारत ने अपनी रक्षा क्षमता को बढ़ाने की आवश्यकता महसूस की। ये 2 कारण थे–

1–1962 भारत चीन सीमा विवाद

2–1965 भारत पाक विवाद[35]

यद्यपि इस योजना के पिछड़ी 2 योजनाओं से बड़ा बनाया गया पर इसमें फेरबदल करने पड़े। इस योजना ने अपने लक्ष्य राष्ट्रीय आय में प्रतिवर्ष 5 प्रतिशत वृद्धि करना, राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 5.6 प्रतिशत व्यक्तिगत आय में वृद्धि का लक्ष्य 2–3

प्रतिशत निर्धारित किया। तीसरी योजना में कृषि विकास के लिये 12 अरब 80 करोड़ रूपया स्वीकृत हुआ था। इस योजना से यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय अर्थव्यवस्था में योजना के प्रति उदासीनता, जनसंख्या में असाधारण वृद्धि व बेरोजगारी जैसी 3 प्रमुख समस्यायें[36] घातक प्रतिफल दे रही है।

तीसरी योजना के खत्म होने पर चौथी के लिए विशेष उत्साह न रहा। आपातकालीन एक वर्षीय योजना के बाद 1969 से 1974 के लिये यह योजना बनी जिसमें नीचे से नियोजन, 14 वाणिज्यक बैकों का राष्ट्रीयकरण किया गया और व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में रहा।

1951 से 1970 तक योजनाओं पर दृष्टि डालने से इस आयोग की क्षमता का आकलन होता है वास्तव में भारत तेज आर्थिक विकास की ओर अग्रसर था। इसके साथ साथ विशुद्ध औद्योगिक नीति पर दृष्टिपात करें तो स्वातंत्र्योत्तर भारत ने इस दिशा में भी नीतियों का निर्माण किया। स्वतंत्रता के समय देश औद्योगिक संकट से गुजर रहा था अतः भारत सरकार ने 1947 में औद्योगिक सम्मेलन बुलाया। इसके बाद के प्रमुख चरण निम्न प्रकार हैं।

1–औद्योगिक नीति प्रस्ताव (1948) 6 अगस्त 1948 को बनी यह नीति निजी व सार्वजनिक क्षेत्र के स्पष्ट बँटवारों से संवाहीत है।

2–औद्योगिक नीति प्रस्ताव (1956) समाजवादी ढंग से समाज की स्थापना की विचारधारा (1948) औद्योगिक को इसमें बदला गया– 30 अप्रैल 1956

3–औद्योगिक लाइसेन्स प्रणाली–

4–उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम –8 मई 1952

5–हजारी रिपोर्ट– 1967

6–दत्त समिति रिपोर्ट– 1969 (सुविमलदत्त, लाइसेंस प्रणाली जाँच हेतु)

7–औद्योगिक लाइसेंस नीति 18 फरवरी 1970

8–सर्वोदय योजना– 1950 जय प्रकाश नारायण

कुल मिलाकर भारत का आर्थिक विकास मिश्रित अर्थव्यवस्था37 द्वारा पूरा किया जाना था। योजनाओं को रणनीति, लक्ष्य, साधन, संगठन का अधिक महत्व था। इसे संविधान की समवर्ती सूची में स्थान दिया गया। इस पंचवर्षीय योजनाओं ने वास्तव में भारत के तेज आर्थिक विकास के द्वार खोल दिये। पुराने युग से नये युग में प्रवेश करते समय कठिनाइयों का बोझ पड़ना स्वाभाविक था। लेकिन योजनाओं का लक्ष्य बेहतर आर्थिक भविष्य था। यदि देश की आबादी अनुपात के हिसाब से ठीक–ठीक हो तो समृद्धि निश्चित हो सकती है। इसी पर भारत की अर्थव्यवस्था का भविष्य निर्भर करता है।

कृषि, उद्योग, व अन्य क्षेत्रों में विभिन्न कार्यक्रमों, योजनाओं व नीतियों का ही परिणाम था कि 1962, 1965, 1971 के युद्ध की विभीषिका को झेलकर भारत निरंतर विकास के पथ पर गतिशील है। यह परिणाम मात्र पन्नों पर ही नहीं है यदि हम निरंतर प्रगतिशील न होकर, परम्परागत बने रहे होते तो आज भारत की औसत आयु 1941–51 की औसत आयु से लगभग 2 गुनी न होती।

1941–51 में औसत आयु–जनगणना के सरकारी आंकडे	संशोधित आंकड़े[38]
32 प्रतिशत	32.6 प्रतिशत

कुल मिलाकर 1947–1970 तक भारत का आर्थिक जीवन प्रगतिशील, विकासशील, व आधुनिकता की ओर अग्रसर था।

I F C I JULY 1948

I CICI 5 JANUARY 1955

U T I 26 NOV. 1963

विभाजन के समय भारत और पाकिस्तान के उद्योग

उद्योग	भारत	पाकिस्तान
पटसन मिलें	106	–
लोहा इस्पात उद्योग	13	–

कागज मिलें	16	—
सूती कपड़ा मिलें	393	12
चीनी मिलें	142	11
माचिस फैक्टरियाँ	107	06
रेशम उद्योग	90	02
ऊनी कपड़ा उद्योग	22	02
सीमेन्ट उद्योग	16	03
साबुन फैक्ट्ररियाँ	25	01
शीरो की फैक्ट्री	77	02
रयायन उद्योग	35	03

ऐतिहासिक परिस्थितियाँ— महात्मा गाँधी ने यंग इण्डिया में लिखा है। ''मैं ऐसे संविधान की रचना करवाने का प्रयत्न करूँगा, जो भारत को हर तरह की गुलामी और परावलम्बन से मुक्त कर दे और उसे आवश्यकता हो तो, पाप करने का अधिकार दे। मैं ऐसे भारत के लिये कोशिश करूँगा, जिसमें गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करेंगे कि वह उनका देश है।— जिसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्त्व है। मैं ऐसे भारत के लिये कोशिश करूँगा, जिसमें ऊँचे और नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विविध सम्प्रदायों में पूरा मेलजोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता या शराब और दूसरी नशीली चीजों के अभिशाप के लिये कोई स्थान नही हो सकता। उसमें स्त्रियों को वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को होंगे। चूंकि शेष सारी दुनियाँ के साथ हमारा सम्बन्ध शान्ति का होगा, यानी न तो हम किसी का शोषण करेंगे और न किसी के द्वारा अपना शोषण होने देंगे, इसलिये हमारी सेना छोटी से छोटी होगी। सब हितों का जिनका करोड़ों मूक लोगो के हितों से कोई विरोधी नहीं है, पूरा सम्मान किया जायेगा, फिर वे हित देशी हो विदेशी। यह है मेरे सपनों का भारत।..............इससे भिन्न किसी चीज से मुझे संतोष नहीं होगा।''[39]

उपर्युक्त विचारों को चरितार्थ करने के उद्देश्य से गाँधी जी ने मसविदा 29 जनवरी 1948 को अपनी मृत्यु के एक ही दिन पहले बनाया था। यह उनका अंतिम लेख था। इसलिये इसे उनका आखिरी वसीयतनामा कहा जा सकता है।

देश का बँटवारा होते हुये भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा मुहैया किये गये साधनों के जरियें हिन्दुस्तान को आजादी मिल जाने के कारण मौजूदा स्वरूपवाली कांग्रेस का काम अब खत्म हुआ–यानी प्रचार के वाहन और धारा सभी की प्रवृत्ति चलाने वाले तंत्र के नाते उसकी उपयोगिता अब समाप्त हो गई है। शहरों और कस्वों से भिन्न उसके सात लाख गाँवों की दृष्टि से हिन्दुस्तान की सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी हासिल करना अभी बाकी है। लोकशाही के मकसद की तरफ हिन्दुस्तान की प्रगति के दरमियान फौजी सत्ता पर मुल्की सत्ता को प्रधानता देने की लड़ाई अनिवार्य है। कांग्रेस को हमें राजनीतिक पार्टियों और साम्प्रदायिक संस्थाओं के साथ की गन्दी होड़ से बचाना चाहियें। इन और ऐसे ही दूसरे कारणों से अखिल भारत कांग्रेस कमेटी नीचे दिये हुये नियमों के मुताबिक अपनी मौजूदा संस्था को तोड़ने और लोक–सेवक–संघ के रूप में प्रकट हाने का निश्चय करे। जरूरत के मुताबिक इन नियमों में फेरफार करने का इस संघ को अधिकार रहेगा।

गाँव वाले या गाँववालों के जैसी मनोवृत्ति वाले पाँच वयस्क पुरुषों या स्त्रियों की बनी हुई हर एक पंचायत एक इकाई बनेगी। पास–पास की ऐसी हर दो पंचायतों की उन्हीं में से चुने हुये एक नेता की रहनुमाई में एक काम करने वाली पार्टी बनेगी।

जब ऐसी 100 पंचायतें बन जाँयें, तब पहले दरजे के पचास नेता अपने में से दूसरे दरजे का एक नेता चुने और इस तरह पहले दरजे का नेता दूसरे दरजे के नेता जोड़ कायम करना तब तक जारी रखा जाय, जब तक कि वे पूरे हिन्दुस्तान को न ढँक लें। और बाद में कायम की गई पंचायतों का हर एक समूह पहले की तरह दूसरे दरजे का नेता चुनता जाय। दूसरे दरजे के नेता सारे हिन्दुस्तान के लिये सम्मिलित रीति से काम करें

और अपने प्रदेशों में अलग अलग काम करें। जब जरूरत महसूस हो तब दूसरे दरजे के नेता अपने में से एक मुखिया चुनने वाले चाहें तब तक सब समूहों को व्यवस्थित करके उनकी रहनुमाई करें।

1–हर एक सेवक अपने हाथ से कते सूत की या चरखा संघ द्वारा प्रमाणित खादी हमेशा पहनने वाला और नशीली चीजों से दूर रहने वाला होना चाहिये। अगर वह हिन्दु है तो उसे अपने में से और अपने परिवार में से हर किस्म की छुआछूत दूर करनी चाहियें और जातियों के बीच एकता के सब धर्मों के प्रति समभाव के और जाति, धर्म या स्त्री–पुरुष के किसी भेदभाव के बिना सबके लिये समान अवसर और समान दरजे के आदर्श में विश्वास रखने वाला होना चाहियें।

2–अपने कार्यक्षेत्र में उसे हर एक गाँव वाले के निजी संसर्ग में रहना चाहिये।

3–गाँव वालों में से वह कार्यकर्ता चुनेगा और उन्हें तालीम देगा। इन सबका वह रजिस्टर रखेगा।

4–वह अपने रोजाना के काम का रिकार्ड रखेगा।

5–वह गाँवों को इस तरह संगठित करेगा कि वे अपनी खेती और गृह उद्योगों द्वारा स्वयंपूर्ण और स्वावलम्बी बनें।

6–गाँव वालों को वह सफाई और तन्दुरूस्ती की तालीम देगा और उनकी बीमारी व रोगों को रोकने के लिये सारे उपाय काम में लायेगा।

7–हिन्दुस्तान तालीमी संघ की नीति के मुताबिक नई तालीम के आधार पर वह गाँववालों की पैदा होने से मरने तक की सारी शिक्षा का प्रबन्ध करेगा।

8– जिसके नाम मतदाताओं की सरकारी यादी में न आ पाये हो उनके नाम वह उसमें दर्ज करायेगा।

9– जिन्होंने मत देने के अधिकार के लिये जरूरी योग्यता हासिल न की हों, उन्हें वह योग्यता हासिल करने के लिये प्रोत्साहन देगा।

10– ऊपर बताये हुये और समय–समय पर बढ़ाये हुये उद्देश्यों को पूरा करने के लिये योग्य कर्तव्य पालन करने की दृष्टि से संघ के द्वारा तैयार किये गये नियमों के अनुसार वह स्वयं तालीम लेगा और योग्य बनेगा।

संघ के द्वारा तैयार किये गये नियमों के अनुसार वह स्वयं तालीम लेगा और योग्य बनेगा।

संघ नीचे की स्वाधीन संस्थाओं को मान्यता देगाः

1–अखिल भारत चरखा संघ

2–अखिल भारत ग्रामोद्योग संघ

3–हिन्दुस्तानी तालीमी संघ

4–हरिजन–सेवक–संघ

5–गौ सेवा संघ

संघ अपना मकसद पूरा करने के लिये गाँव वालों से और दूसरों से चन्दा लेगा। गरीब लोगों का पैसा इकट्ठा करने पर खास जोर दिया जायेगा।[40]

गाँधी जी के अद्वितीय विचारों को आत्मसात करते हुये नेहरू जी ने अपनी प्रशासनिक नीति के अंग बनायें।

भारत के पुनर्निर्माण तथा सामाजिक पुनर्गठन के लिये बहुत सी वैकल्पिक विचार धारायें सामने थीं, एक ओर गाँधी विचारधारा के लोग थे जो अंहिसा द्वारा क्रान्ति लाना चाहते थे, जिससे विकेन्द्रीकरण हो, ग्रामीण समाज लगभग आत्मनिर्भर हो। उसे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये आधुनिक तकनीक की कम से कम आवश्यकता हो। दूसरी ओर कांग्रेस के भीतर और बाहर एक समाजवादी दल था जो यह कहते थे कि आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को समाप्त करना उतना ही आवश्यक है। जितना विकास, और वे भूमि सुधार, अधिक सामाजिक स्वाभित्व तथा निजी क्षेत्र पर कड़ा नियंत्रण हो ताकि अधिक से अधिक समानता लाई जा सके।[41]

नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस दल ने ऊपर लिखित विचारों के बीच एक समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। रूढ़िवादी लोगों ने प्रयत्न किया कि नियंत्रण कम से कम हो परन्तु उस समय समाजवाद की एक लहर सी चल रही थी। जिसको रोकना असम्भव था। संवैधानिक रूपरेखा सम्भवतः जानवूझकर ऐसी बनाई गई थी कि उसमें सामजवादी जोश स्पष्ट दिखाई दे और कार्यान्वित हो। संविधान की उद्देशिका में जो नेताओं के उद्देश्यों तथा आकाक्षाओं की ठीक–ठाक दपर्ण कहा गया है। "हम भारत के लोग उस बात का संकल्प लेते हैं कि हम भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य (इसमें समाजवादी शब्द जान बूझकर जोड़ ही दिया गया था)[42] बनायेंगे।

नेहरू का विकासवादी दर्शन जनवादी दर्शन था। जनवादी दर्शन ही समाजवादी दर्शन का आधार होता है। नेहरू के समाजवाद का अर्थ है– निश्चित योजना, अवसर की अधिक से अधिक समानता, सामाजिक न्याय, आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के दोहन के माध्यम से उच्च आय का अधिक समान वितरण पूँजीवाद और सामन्तवाद के द्वारा पैदा की गई आर्थिक असमानता और सामाजिक असमानता का अंत तथा सामाजिक समस्याओं के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का पालन।"[43]

नेहरू ने बाद के दशकों में यह अनुभव किया कि समाजवादी लक्ष्य शान्तिपूर्ण और अंहिसक तरीके से प्राप्त किया जा सकता है। पूँजीवादी प्रतियोगिता को त्यागकर, सहकारिता और सहयोग की भावना को विकसित करना नेहरू के समाजवाद का लक्ष्य था।[44]

नेहरू ने भारत के सर्वतोमुखी विकास के लिये तीन बिन्दु स्पष्ट किये–

1–तीव्र औद्योगिक और कृषि विकास के लिये नियोजन

2–बुनियादी उद्योगों के लिये सार्वजनिक क्षेत्र

3–मिश्रित अर्थव्यवस्था

नेहरू ने अपने विकासवादी कार्यक्रम में दो प्रमुख कार्यक्रम रखें–

1—सामुदायिक विकास कार्यक्रम

2—पंचायती राज्य कार्यक्रम

1950 में प्रधानमंत्री पण्डित नेहरू की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय योजना आयोग गठित किया गया जिसमें सभी महत्त्वपूर्ण मंत्री भी सदस्य थे। तभी से एक ऐसी परम्परा बन गई है कि किसी भी परियोजना के लिये धन तभी उपलब्ध होगा कि जब उसे योजना आयोग को निवेश के कार्यों में पर्याप्त महत्त्व प्राप्त हो गया। अब कार्य सूचियों में अधिक सामजस्य स्थापित होकर ये सब एक सुसंगठित योजना का भाग बन सकते थे।[45]

प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय उस वक्त की तीन प्रमुख समस्यायें थीं, शरणार्थियों का पुनर्वास, अन्न की अत्यधिक कमी तथा अर्थव्यवस्था पर मुद्रा स्फीति का दबाब। इसलिये योजना में कृषि, जिसमें सिंचाई, तथा ऊर्जा भी सम्मिलित थे, पर सबसे अधिक बल दिया। सामाजिक सेवाओं के लिये कुल 240 करोड़ रूपयों का प्रावधान था। योजना में यह सुझाव भी दिया था कि निवेश की मात्रा राष्ट्रीय आय के 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 70 प्रतिशत कर दी जायें।[46]

द्वितीय पंचवर्षीय योजना अधिक वित्तीय स्थिरता के वातावरण में गठित की गई। इस योजना में भारी तथा आधारभूत उद्योगों के विकास की ओर ध्यान दिया गया।

1956 में औद्योगिक नीति के प्रस्ताव पारित हो जाने के बाद इस योजना के उद्देश्य निश्चित किये गयें— राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत की बढ़ोतरी तीव्रगामी उद्योगीकरण जिसमं आधारभूत तथा भारी उद्योगों पर बल दिया गया। रोजगार के अवसर में बढोतरी तथा आर्थिक शक्ति की अधिक समानता से बँटवारा।

इस योजना का मुख्य उद्देश्य औद्योगीकरण था। इसलिये तीन इस्पात कारखानों 10 लाख टन की क्षमता वाले राउरकेला, भिलाई तथा दुर्गापुर में लगाये गये।

तृतीय पंचवर्षीय योजना 1961 में प्रारम्भ की गई। इसका उद्देश्य सरकारी उपक्रमों में 7250 करोड़ रूपया लगाना था। योजना का लक्ष्य यह था कि राष्ट्रीय आय को 30

प्रतिशत बढ़ाया जाये। अर्थ शास्त्रियों का कथन है कि इस काल में राष्ट्रीय आय लगभग 42 प्रतिशत बढ़ी तथा व्यक्तिगत आय लगभग 20 प्रतिशत बढ़ी। परन्तु इस योजना के अन्तिम दो वर्षों में हमारी उन्नति की गति कुछ धीमी पड़ गई कारण था 1962 का भारत चीन सीमा विवाद तथा 1965 में भारत पाक युद्ध।47

भारत की विदेश नीति की मूल बातों का समावेश हमारे संविधान के अनुच्छेद 51 में है, जिसके अनुसार राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बढ़ावा देगा, राज्य राष्ट्रों के मध्य न्याय और सम्मानपूर्वक सम्बन्धों को बनाये रखने का प्रयास करेगा, राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों तथा सन्धियों का सम्मान करेगा तथा राज्य अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ो को पंच फैसलों द्वारा निपटाने की रीति को बढ़ावा देगा।[48]

नेहरू ने भारत की विदेश नीति के तीन आधार स्तम्भ बनायें– शान्ति, मित्रता, और समानता। 1945 के उपरानत विश्व द्विगुटीय बन चुका था। नेहरू ने निष्पक्षता अथवा समदूरी की नीति को अपनाते हुयें भारत को दोनों गुटों से दूर रखा। नेहरू जी की निष्पक्षता की नीति को सम्मान और समर्थन कोरिया के झगड़े में मिला। भारत की निष्पक्षता का परिणाम यह हुआ कि युद्धवन्दियों की अदला बदली के लिये संयुक्त राष्ट्र प्रत्यावासन आयोग गठित किया गया तो एक भारतीय को इस आयोग का अध्यक्ष चुना गया। 1956 में जब मिस्र ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण किया तो इग्लैण्ड तथा फ्रांस ने उस पर आक्रमण कर दिया। भारत ने न केवल इन दोनों शक्तियों के विरुद्ध कड़ा रूख अपनाया अपितु मिस्र को समर्थन भी दिया। इस समस्त प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ कि विदेशी सेनाओं को मिस्र से हटना पड़ा और मिस्र का स्वेज नहर पर नियन्त्रण स्वीकार किया गया।

भारत ने अपने निष्पक्ष रूख को एकत्रित किया और 1961 में बेलग्रेड में प्रथम निष्पक्ष कान्फ्रेन्स बुलाई गई जिसमें 5 देशों मिस्र, यूगोस्लोवाकिया, भारत, घाना, इन्डोनेशिया देशों ने भाग लिया। इसका मुख्य उद्‌देश्य था स्वतंत्रता, शक्ति, निरस्त्रीकरण तथा

आर्थिक विकास।[50]

पाकिस्तान के प्रति नेहरू की नोति यह थी कि दोनों देशों में तनाव कम हो और एक अनुरंजन की नीति अपनाई जायें। दुर्भाग्य से पाकिस्तान की प्रतिक्रिया न केवल सकारात्मक नहीं थी अपितु पूर्णतया नकारात्मक थी। रूण्ल 1947 को पठान कबाइलियों की सहायता के कश्मीर पर आक्रमण कर दिया गया। राजा हरिसिंह ने नेहरू से मद्द माँगी। मद्द के बदले में महाराजा को 26 अक्टूबर को विलय पत्र पर हस्ताक्षर करेंगे। यह शर्त थी। नेहरू ने शेख अब्दुल्ला को प्रधानमंत्री नियुक्त करवा दिया और कश्मीर घाटी को कबाइलियों से मुक्त करा लिया। परन्तु कश्मीर राज्य के पश्चिमी क्षेत्र जिसमें वाल्तिस्तान तथा गिलगिट सम्मिलित है अभी भी पाकिस्तान के अधीन है।[51]

चीन के साथ मैत्री सम्बन्धों को बढ़ाने के उद्देश्य से नेहरू ने स्वयं 1954 में चीन की यात्रा की तथा वहाँ सहअस्तित्व के पंचशील के सिद्धान्तों पर हस्ताक्षर किये जो इस प्रकार थेः–

1–एक दूसरे के क्षेत्र तथा प्रभुसत्ता का आदर करेंगे।

2–अनाक्रमण की नीति अपनायेगे।

3–एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

4–समानता तथा आपसी लाभ

5–शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति का अनुसरण करेंगे।52

भारत की चीन के साथ एक लम्बी साझी सीमा है जो कुर्राकुरूम से वर्मा तक फैली है और केवल नेपाल तथा भूटान का ही इसमें अन्तराल है। इस सीमा रेखा पर कुछ क्षेत्र तो ऐसे हैं जहाँ सर्वेक्षण तक नहीं हुआ। इसी प्रकार इस सीमा के असम तथा नेफा के क्षेत्र में कुछ भाग बहुत विस्फोटक हैं।

1950 में चीन ने भारत की मित्रता के हाथ को एक झटका दिया तथा तिब्बत पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया। चीनी अधिकारियों के पास एक विरोध पत्र दिया गया परन्तु

चीनीयों ने उसे अस्वीकार कर दिया। 1954 में भारत ने तिब्बत पर चीन की सत्ता का मान्यता दे दी। 1955 में भारत ने जावा में बानडुग में हुई एशिया अफ्रीका कान्फेन्स में चीन के प्रधानमंत्री चाउएन लाई को समर्थन देकर अपने मित्रताा के हाथ को और भी लम्बा कर दिया।

1959 में भारत चीन सम्बन्धों में अधिक कड़वाहट तब आई जब तिब्बत के धार्मिक गुरु दलाईलामा ने चीनी दुर्व्यवहार सें दुखी होकर, तिब्बत से भाग कर भारत में शरण ली। भारतीय सरकार ने दलाईलामा को शरण तो दी परन्तु भारत में तिब्बत की प्रवासी सरकार बनाने की अनुमति नहीं दी। चीन अधिकारियों ने दलाईलामा को शरण देने पर आपत्ति जताई और बदले में लद्दाख में कोगंका दर्रे में अपने सैनिक भेज दिये और लगभग एक दर्जन भारतीय सैनिक मार दिये। अक्टूबर 1962 में चीन ने भारत पर उत्तरी पूर्वी सीमान्त क्षेत्र जिसे अब अरुणाचल कहते हैं पर आक्रमण कर दिया और हमारी कई चौकियों रौद डाली।

9 नबम्बर 1962 को भारत ने अमरीका के राष्ट्रपति केनडी को दो पत्र लिखे जिसमें भारत चीन सीमा पर स्थिति को अत्यन्त चिन्ताजनक बतलाया तथा सैनिक सहायता माँगी। भारत ने इग्लैण्ड की सरकार को भी सैनिक सहायता के लिये लिखा। चीन ने इस भय से कि सम्भवतः पश्चिमी यूरोपीय शक्तियों से टक्कर हो जायेगी, भारत की सीमापर अग्रिम क्षेत्रों से अपनी सेनाये हटा लीं। तथा स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। और आज 40 वर्षों के उपरान्त भारत चीन सीमा रेखा को रेखाकित नहीं किया गया है।[53]

नेहरू ने नेपाल, वर्मा, तथा श्रीलंका से मित्रता के सम्बन्ध बनाये रखने के लिये विशेष प्रयत्न किये। उन्होंने नेपाल की अपने क्षेत्र पर पूर्ण प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली और उसे भारत में से अपने व्यापार के लिये पार गमन की पूर्ण सुविधा दे दी। जहाँ तक वर्मा के मुख्य मंत्री ऊ नू के साथ सम्बन्धों की बात है, नेहरू के उनसे बहुत अच्छे सम्बन्ध थे। इसी प्रकार श्री लंका से भी सम्बन्ध बहुत अच्छे थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची.

1–रैम्जेम्यूर–मेकिंग आफ ब्रिटिश इंडिया पेज 2–3

2–एस0 पी0 वर्मा– आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त पेज 3

3–बी0 एल0 ग्रोवर– आधुनिक भारत का इतिहास पेज 468

4–डी0 डी0 बसु– भारत का संविधान एक परिचय पेज 11

5–B. L. GROWER- P. 468 + YOUTH COMPHHION TIMES P 409

6–भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 धारा 1 (1) ख

7–D. D. BARU P. 47

8-JUFITH M. BTOWH- MODERN INDIA P 346

9- SUBHASH KASAHYOP हमारा संविधान पेज 63

10–बेयर एक्ट (भारत का संविधान) ईस्टर्न बुक कम्पनी संस्करण 2004 पेज 2

11–YOUTH COMPLITION TIMES IST 410

12-SUBHASH KASHYOP OUR CONDTTITULION P 1

13– चाणक्य सिविल सर्विस टुडे (अंक अप्रैल 2005) पेज 72

14–42 वाँ संविधान संसोधन 1976 द्वारा

15–D. D. BARU P. 19

16–एस0 एम सईद– भारतीय राजनैतिक व्यवस्था पेज 1

17–बी0 एल0 ग्रोवर– पेज 471

18– पर्सीवल स्पीयर– OXFORD HISTORY OF MODERN INDIA I. 404

19–B. L. GROWER- P. 475

20- YOUTH COMPTITION TIMES P. N. 424

21-B. L. GROWER- P. 483

22-डा0 पुष्पेश पंत, अन्तर्राष्ट्रीय संबन्ध पेज 470

23–पंत एवं जैन, पेज 472

24–विपिन चन्द्रा, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पेज न0 399

25–पुरी, दास, चोपड़ा, भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पेज 216

26–जवाहर लाल नेहरू, डिस्कवरी आफ इण्डिया, पेज 284

27–पुरी, दास, चोपड़ा, भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पेज 219

28–सव्यसाँची भट्टाचार्य, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, पेज 72

29–सव्यसाची भट्टाचार्य, पेज 72

30–अमर्त्यसेन के अनुसार–'स्वामित्व अधिकार के साथ विनियम अधिकार' अकाल की जड़ है।

31–धर्म कुमार–द क्रैम्ब्रिज इकोनोमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग दो, पेज 950

32–पुरी, दास, चोपड़ा, भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पेज 219

33–बी0 एल0 ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पेज 479

34–पुरी, दास, चोपड़ा, भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पेज 223

35–बी0 एल0 ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पेज 480

36–मैकमिलन सीरीज दास, पुरी, चोपड़ा, पेज0 224

37–मिश्रित अर्थव्यवस्था से आशय, ऐसी व्यवस्था से है जहाँ निजी तथा राजकीय क्षेत्र दोनों सह अस्तित्व में कार्य करें और संभवतः कुछ उद्योगों में दोनों की भागीदारी भी हों।

बी0 एल0 ग्रोवर, पेज 479

38–किंग्स्ले डेविस, पृथ्वीरादास गुप्ता

39–मेरे सपनों का भारत, गाँधी जी, पृ0 7

40–गाँधी जी–मेरे सपनों का भारत, 'हरिजन सेवक', पृ0 309

41–बी0 एल0 ग्रोवर– आधुनिक भारत का इतिहास, पेज 480

42–1976 में 42 संशोधन द्वारा जोड़ा गया।

43–नेहरू, भारत की खोज

44–नेहरू, भारत की खोज

45–धर्मेन्द्र कुमार [ed] the cOMBRIDGE Economic histry of india vol 2 p. 950

46–यशपाल ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 479

47–यशपाल ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 480

48–डी0 डी0 वसु,

49–डॉ0 बी0 एल0 फड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, पृ0 303

50–यशपाल ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 481

51–डॉ0 बी0 एल0 फाडिया, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

52–यशपाल ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 484

53–यशपाल ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 485

तृतीय अध्याय

डॉ हेडगेवार के पूर्वज

जन्म स्थान

सामाजिक परिस्थितियाँ

युग प्रेरक व्यक्तित्व

आजीविका

अन्य उल्लेखनीय विवरण

तृतीय अध्याय

पूर्वज—कन्दकुर्ती गाँव महाराष्ट्र और आन्ध्र की सीमा पर इन्दूर (निजामाबाद) जिला के बोधन तालुके में अवस्थित है। दो हजार के लगभग होगी इस छोटे से गाँव की जनसंख्या। जिस प्रकार उत्तर भारत में गंगा, यमुना और सरस्वती कें संगम को 'त्रिवेणी' अभिधान दिया गया उसी प्रकार दक्षिण भारत में 'गोदावरी, बंजरा और हरिद्रा इन तीन सरिताओं के मिलन स्थल को त्रिवेणी संगम कहा जाता है। प्रयाग की भाँति ही कन्द कुर्ती का अपना विशिष्ट धार्मिक महत्व है। यह संयोग की ही बात है कि तीनों सरिताओं की भाँति यहाँ मराठी, तैलगू और कन्नड़ी तीनों भाषाओं का भी संगम हुआ है।

'हेडगेवार' कुल नाम यद्यपि मूलतः तैलंग है तो भी घराना ऋग्वेदान्तर्गत आश्वलायन सूत्र की शाकल शास्त्र के महाराष्ट्रीय तैलंग अर्थात् देशस्थ ब्राह्मणों में से है। उनका गोत्र काश्यप है। आन्ध्र प्रदेश के तैलंगाना भाग में कन्दकुर्ती नामक ग्राम इस कुल का मूल स्थान है। डा० हेडगेवार की सात पीढ़ियों ने यहीं निर्वाह किया। वेदों का अध्ययन और अध्यापन इनकी मूल वृत्ति थी। साथ ही अग्निहोत्र की दीक्षा भी इस कुल ने ले रक्खी थी। आद्य शंकराचार्य ने हेडगेवार के वंश के विद्वानों को धर्मरक्षणर्थ अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया था। इस प्रकार के मानपत्र आज भी उनके वंशजों के पास इन्दूर में विद्यमान हैं। इनके कुल के लोग अत्यन्त हृष्ट—पुष्ट, तेजस्वी बलशाली और विद्या—विनय सम्पन्न थे। ये सात्विक आहार करने वाले अत्यधिक सदाचारी महापुरूष थे।

परम पूज्य वल्लभेश इस कुल के मूल पुरुष माने जाते हैं। इसके पश्चात् नारायण दीक्षित, सदाशिव दीक्षित (गुरु), किशन शास्त्री (गुरु), महादेव शास्त्री इत्यादि यशस्वी वेदपाठी महानुभावों ने इस कुल का मान—सम्मान बढ़ाया। महादेव शास्त्री के दो पुत्र थे बाबा दीक्षित और नरहरि शास्त्री। उस समय दक्षिण भारत मुगल सत्ता के आधीन था। सर्वत्र हिन्दुओं की उपेक्षा हो रही थी। उधर नागपुर में भौंसलों ने अपने पराक्रम से राज्य

की संस्थपना की। इस राज्य में विद्वानों को पर्याप्त सम्मान दिया जाता था।

यह प्रसिद्धि कन्दकुर्ती तक पहुँची। परिणाम स्वरूप यहाँ के विद्वानों का ध्यान मौसलों के सम्पन्न और समृद्ध राज्य की ओर आकर्षित हुआ होगा। अतएव उक्त दोनों वेदज्ञ हेडगेवार का परिवार नागपुर चले आये। इन्हें यहाँ पर्याप्त प्रतिष्ठा और सुयश प्राप्त हुआ।

सन् 1853 ई0 में आँग्ल शासकों की दमनकारी नीति ने यहाँ भी रंग दिखाया। राज्याश्रित जो धन, वैभव और यश मिला था, वह सब धीरे–धीरे विलीन होने लगा। श्रेष्ट विद्वान, वेद शास्त्र में निष्णात एवं प्रकाण्ड पाण्डित्य के धनियों को भी दुर्दिन देखने पड़े। परिणाम स्वरूप निरुपाय हो पौरोहित्य कर्म करने लगे।

नरहरि शास्त्री के महादेव और श्रीधर दो पुत्र थे। श्रीधर के आवाजी और वामन ने अपने कुल की कीर्ति–लता पुष्पित की। महादेव के भी दो यशस्वी पुत्र हुये जिनके नाम थे क्रमशः बलिराम शास्त्री तथा रामचन्द्र। आगे चलकर रामचन्द्र के जगन्नाथ उत्पन्न हुये तथा बलिराम शास्त्री के यहाँ तीन पुत्रों ने जन्म लिया। जिनके क्रमशः नाम रक्खे गये– महादेव शास्त्री, सीताराम शास्त्री और केशवराव। इनकी तीन बहनें भी थीं जिनके नाम थे राजू, सरयू, और रंगूबाई।

विपत्ति और विषमता के समय में भी वेदमूर्ति बलिराम पन्त हेडगेवार नागपुर में बड़ी कुशलता पूर्वक अपनी गृहस्थी का संचालन करते रहे। उन्होंने कुल परम्पराओं का निर्वाह करने हुये बड़ी दक्षतः के साथ अपने दायित्व को सँभाला।

इस प्रकार हमारे चरित नायक डाक्टर हेडगेवार के पिता का नाम बलिराम हेडगेवार और उनकी माता का नाम श्रीमती रेवती बाई था। ये अत्यन्त गौर वर्ण की शान्त एवं धर्मनिष्ठ विदुषी थीं। ये पैण्णकर घराने की थीं। पैण्णकर भी मूलतः तैलंगी थे और उक्त और विषम परिस्थितियों में जो इन्हें विरासत में मिली थी, ने कभी अपना धैर्य नहीं छोड़ा। वे बड़ी मितव्ययता पूर्वक सुंसयत ढ़ँग से अपनी गृहस्थी को तुष्ट भाव से संचालित

करने लगीं। डॉ0 हेडगेवार के तीन बहनें राजू और सरयू ने अपनी अपनी ससुराल आकर कुल कीर्ति लतिका को पुष्पित और फलित किया। सभी सन्तानों पर माता–पिता और उनके पूर्वजों के दिव्य संस्कारों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

सामाजिक परिस्थतियाँ– स्वातंत्रतापूर्व दक्षिण भारत की सामाजिक परिस्थितियों पर जब हम दृष्टिपात करते हैं। तब यह ज्ञात होता है कि उस समय अनेक सामाजिक बुराइयाँ न केवल पनप नहीं थीं वरन् वे परिपुष्ट होकर समाज को अधःपतन के गर्त में ढकेल रही थीं। जैसे बाल विवाह, बहु विवाह, सती प्रथा, बेगार प्रथा, देवदासी प्रथा तथा जाति–पाँति की उच्चता अथवा निम्नता का भाव। पूर्वकाल में जो जाति कर्म पर आधारित थी, वह केवल जन्म पर आधारित मान ली गई। शूद्रों पर दिनो दिन अत्याचार बढ़ते जा रहे थे। उन्हें न तो उच्चवर्ण वाले कुओं से पानी भरने दिया जाता था न कोई उनकी समाज में प्रतिष्ठा थी। उनका सार्वजनिक जीवन पशुओं से भी बदतर था।

डाक्टर हेडगेवार का जन्म 1 अप्रैल सन् 1889 में हुआ था और डॉ0 अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल सन 1891 ई0 में। इनका पूरा नाम भीमराव अम्बाबाडेकर था। श्री डी0 एस0 शेष राघवाचार्य एक स्थान पर लिखते है–"एक बार स्कूल में पढ़ने वाले दो विद्यार्थी अपने पिता से मिलने गये। दोनों मसूर के रेल स्टेशन पर गाड़ी से उतरे और वहीं से आगे जाने के लिए उन्होंने एक बैलगाड़ी किराये पर ली। कुछ ही दूर गाड़ी में चले होगे कि गाड़ीवान को मालूम हुआ कि दोनों लड़के महार हैं। उसने तुरन्त ही गाड़ी रोकी और आगे से गाड़ी के जुआ ऊपर उठा दिया। बस, दोनों लड़के लुढ़क कर नीचे आ गिरे। इतने पर भी गाड़ीवान का गुस्सा शान्त नहीं हुआ। उसने आकाश सिर पर उठा लिया और दोनों का जी भरकर गालियाँ दी। तीसरा पहर हो चला था। दोनों लड़कों को जो भाई–भाई थे, बुरी तरह प्यास सता रही थी। पर किसी ने उन्हें एक बूँद पानी भी पीने को नहीं दिया। दोनों धण्टों प्यास से तड़पते रहे। पर किसी ने उन्हें पानी नहीं पिलाया। इतना ही नहीं उन्हें तालाब या कुयें के पास तक नहीं फटकने दिया।"[1]

वैदिक काल में जाति–पाँति नहीं थी। धीरे–धीरे मनुष्यों में 'कटुता और कट्टरता आती गई और उनमें यह कुरीति पनपने लगी। पहले सब कुछ कर्म पर निर्भर था जैसा कि श्री कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास ने लिखा है–"बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण थे (जातियाँ नहीं) जो गुणानुकूल अपने–अपने स्वाभाविक काम करते थे। परस्पर सौमनस्य था। किसी में ऊँच–नीच की भावना नहीं थी। सब आपस में हिलमिलकर रहते और एक दूसरे का सहयोग करते हुये अपनी–अपनी प्रगति करते थे। यथा–

ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शूद्राणांच परंतपः।

कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः।।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिकयं ब्रह्म कर्म स्वभावजम।।

शौर्य तेजो घृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।

दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।

कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम्।

परिचर्यात्मक कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।[2]

जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं जैसा संस्कृत के एक सुभाषित में कहा गया है "जन्मना जायते शूद्रो संस्कारात् द्विज उच्यते।" किन्तु संस्कार के द्वारा ही मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त करता है। प्राचीन कथाओं में ऐसे अनेक उदाहरण हैं। श्री रामानुजाचार्य, वसवेश्वर, चक्रधर, रामानन्द, कबीर, चैतन्य, एकनाथ, तुकाराम एवं राज राम मोहनराय तथा अन्य महापुरुषों ने यही उपदेश दिया कि "हम सब उस परमात्मा की सन्तान है और इसमें कोई न छोटा है न बड़ा है।"[3]

अस्पृश्यता भारतीय समाज का कलंक है। न जाने कब और कैसे यह बीमारी इस समाज को लग गई जिसके कारण अनेकानेक हमारे ही आत्मीय बन्धु क्रमशः हम से अलग होते चले गये। स्वयं अम्बेडकर ने अपनी पत्नी डॉ0 शारदा एवं बहुत से समर्थकों सहित

बुद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।

डॉ0 हेडगेवार ने अपने युग की सामाजिक परिस्थितियों को न केवल ऊपर–ऊपर से देखा वरन् उनकी महराई तक गये और गम्भीरता पूर्वक विचार करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जाति–भेद अवैधानिक और संकुचित भावना पर आधारित है। सम्पूर्ण भारत की तब तक सच्ची और सर्वांगीण उन्नति नहीं हो सकती जब तक जाति–पाँति का विष–बीज समूल नष्ट न कर दिया जाये।

यद्यपि जब डाक्टर हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की संस्थापना की तब उन्होंने जाति–पाँति की समस्या पर खूब सोच विचार कर निर्णय लिया और सभी जातियों के लिये संघ के द्वार उसी प्रकार खोल दिये जिस प्रकार महात्मा बुद्ध ने सभी जातियों के व्यक्तिओं को बौद्ध धर्म में दीक्षित करके उन्हें सच्चा मनुष्य बनाया।

संघ में उच्च्य जातियों को पिछड़ी जातियों के साथ–साथ निम्न जातियों के युवक और पुरुष जैसे ससम्मान सम्मिलित होते हैं ठीक उसी प्रकार हरिजन आदि निम्न समझी जाने वाली जातियों के भी युवकों को सम्मान दिया जाता है। वे भोजन बनाने, परोसने और एक पंक्ति में सभी के साथ बैठकर भोजन करते हैं। उनके साथ किसी भी प्रकार का भेद–भाव नहीं बरता जाता। संघ में सब समान हैं। यही कारण है कि प्राय संघ के अधिकारी एवं कर्ता अपना–अपना जातिवाचक शब्द नाम के पश्चात नहीं लगाते हैं। आधे नाम के बाद 'जी' उच्चारण करते हैं। यथा–महेन्द्र कुमार शुक्ल के स्थान पर 'महेन्द्र जी' कहकर पुकारा जाता है। यही कारण है कि समूचे भारत में न तो प्रान्तवाद की झलक मिलती है और न ही किसी जाति विशेष की। डाक्टर हेडगेवार द्वारा प्रचलित यह अनोखी पद्धति उन्हें विशिष्ट मानव की कोटि में परिगणित कराती है। भारतीय दर्शन भी तो यही मानता है–"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।"[4] इसी भावको युग कवि डॉ0 रामस्वरूप खरे ने इस प्रकार अभिव्यंजित किया है–"सबभूतों के उर में अर्जुन! सर्वज्ञ ईश सुस्थिर रहता । कर्मानुकूल जो जीवों को निज माया से प्रेरित करता।"[5]

धार्मिक और शैक्षिक परिस्थितियों के सर्वसुलभ न होने के कारण भ उस समय की जनता प्रायः विल्कुल अशिक्षित और धर्मभीरू थीं धर्म का रहस्य रहस्य की बना रहा और उसके स्थान पर हिंसात्मक के भावनायें बलवती हो गईं। तथा बाहयाडम्बर ने धर्म का स्वरूप ग्रहण कर लिया। इन दोनों परिस्थितियों ने समाज को अधःपतन के गर्त में धकेल दिया।

अतएव अब हम सबका पुनीत कर्तव्य बनता है कि जो त्रुटियां पूर्वकाल में हमसे हुईं, उनका परिशोधन और परिमार्जन करें तथा इस प्रकार की नीति अपनायें जिससे सच्चे धर्म की भावना की अभिवृद्धि हो तथा बसुधैव कुटुम्बकम की भावना का विकास हो जिससे सम्पूर्ण संसार में शान्ति प्रेम, समानता और पारस्परिक भाई–चारे का भाव सबमें जाग्रत हो सके। संघ ने इस कुप्रथा पर कुठारताघात करके इसे समूल नष्ट करने का बीड़ा उठाया है। इन्हीं सब संभावनाओं को देखकर परमपूज्य गुरु जी ने कहा था–"समाज की उस सर्व शक्तिमान सत्ता का निर्माण करना, जो सदा सर्वदा के लिये बाहयकारणों से उत्पन्न संकटों के बीच समाज को सुरक्षित रक्खे और राष्ट्रजीवन के समस्त क्षेत्रों को अनुप्राणित एवं उद्भाषित करे, हमारी कल्पना का यही महान लक्ष्य हमारे समाने है।"[6]

युगप्रेरक व्यक्तित्व– डॉ0 हेडगेवार साहब का व्यक्तित्व महान था। उनके द्वारा अनेकानेक अनोखे–अनोखे और महान कार्य सम्पादित सम्पन्न हुये किन्तु उन्होंने उनका श्रेय स्वयं कभी नहीं लिया, श्रेय सदैव दूसरों को ही दिया। वे कहा करते थे कि हमारा कार्य प्रतिक्रियात्मक नहीं है। वे अत्यन्त स्पष्टवादी थे। उनका कथन था–"जो कट्टर हिन्दू है, उसे प्रथम साथ लेना चाहिये। सौ लोगों में से कम से कम एक तो हिन्दुत्वनिष्ठ, संघ के कार्यको प्रधान कार्य मानकर उसके लिये अपना जीवन लगाने वाला स्वयं सेवक चाहिये। यह बिल्कुल पक्का–पक्का होना चाहिये तथा उसे जीवन भर संघ का कार्य ही करना चाहिये। उनकी आन्तरिक इच्छा यही थी कि वे समूचे हिन्दुओं का एक निर्भीक और सूदृढ़ संगठन खड़ा कर सकें जो किन्हीं भी विषम परिस्थितियों में भी किंचित डिगे नहीं।

अन्तिम संघ शिक्षा वर्ग के अवसर पर कहे गये उनके वचनांश सदैव स्मरणीय रहेंगे। यथा–

"हमें तो आसेतु हिमाचल फैले हुये विशाल हिन्दू समाज को संगठित करना है। क्योंकि हिन्दू जाति का अन्तिम कल्याण इस संगठन के द्वारा ही हो सकता है।"[7]

"यों ही बढ़ते–बढ़ते एक ऐसा स्वर्ण दिन अवश्य आयेगा जिस दिन समस्त भारत वर्ष संघमय दिखाई देगा। फिर हिन्दू जाति की ओर वक्रदृष्टि से देखने का सामर्थ्य संसार की किसी भी शक्ति में नहीं हो सकेगा। हम किसी पर आक्रमण करने नहीं चले है, पर इस बात के लिये सदैव सचेष्ट रहना होगा कि हम पर भी कोई आक्रमण न कर सके।"

बंगाल के स्वयं सेवकों को विदा देते हुये डॉ0 हेडगेवार ने कहा "बांग्ला ए बार काज किस कोम हॉबे?" थोड़ी देर बाद बोले–'डॉ0 श्यामप्रसाद मुखर्जी लिखते हैं कि प्रचारक भेजो। प्रचारक तो भेजेंगे पर असली काम प्रचारक भेजने से नहीं होता उसके लिये तो आप स्थानीय लोगों को ही सारा काम सभालना चाहिये।"

संघ का विकास कर हिन्दू राष्ट्र को अपने बल और वैभव के साथ पुनः एक बार विश्व में शीर्ष स्थान प्राप्त कराने की महत्वाकांक्षा से ही डॉ0 हेडगेवार ने भगवान की दी हुई सम्पूर्ण शक्तियों को बटोरकर अपने जीवन की रचना और सब प्रयत्न किये थे।"[8]

"निःस्वार्थभाव, विचारने की तर्क शुद्धता, स्वभाव का माधुर्य, चरित्र की निष्कलंकता, प्रयत्नों की पराकष्ठा, ये बातें यदि अपने व्यवहार में प्रकट हुईं तो अपने समाज का नेतृत्व करने की पात्रता रखने वाला तरुण सहज ही अपने आस–पास खड़े किये जा सकेंगे। इस आत्म विश्वास के कारण ही उन्होंने सामान्यजनों के समान ही अपने जीवन का वाहय स्वरूप रक्खा था। नागपुर की ओर उन दिनों मध्यमवर्ग का जो प्रचलित वेश था, वही वे सदैव धारण करते थे।" इस प्रकार वे सादा जीवन और उच्च विचार की साक्षात जीवन्त प्रतिमा थे।

पैर में जूते या चप्पल, सादी धोती, कमीज तथा काला वाला कोट और अन्दर पुठ्टे

वाली कुछ ऊँची काली टोपी, उनके वेश के निश्चित उपादान थे बाहर जाते समय उनके हाथ में रुपहली मूँठ की छड़ी रहती थीं। गोल मूँठ पर सिंह का चित्र तथा डॉक्टर जी के मन की पराक्रम शील आकांक्षा को व्यक्त करने वाला संस्कृत का ध्येय वाक्य–'स्वमेव मृगेन्द्रता' अंकित रहता। दुपट्टे का प्रयोग कभी–कभी विशेष अवसरों पर करते थे। उनका कथन था–''विलास के साधन उपलब्ध हैं, इसीलिये उनका उपयोग करना ठीक नहीं है। सीधी–सादी वस्तुओं का व्यवहार सदैव उत्तम है तथा उसी में आनन्द भी आता है।''

डाक्टर साहब अपने घर के दुमंजले वाले कमरे में अपनी बैठक बनाये थे जिसमें फर्स पर एक साधारण दरी बिछी रहती थी। दरी पर एक भी सिलवट नहीं दिखाई देती थी। कोई मिलकर गया कि कमरे की व्यवस्था ठीक–ठीक है या नहीं इसका डॉक्टर साहब विशेष ध्यान रखते थे। यदि कहीं कोई गड़बड़ी होती तो दूसरों को आदेश देकर वे तुरन्त ही उसका सुधार कर लेते थे। बैठक के कमरे में लोकमान्य तिलक, स्वामी श्रद्धानन्द तथा उनके परमप्रिय मित्र स्वर्गीय भाऊ जी कावरे के छाया चित्र लगे रहते थे तथा काँच की एक अलमारी में छत्रपति शिवाजी महाराज का अर्धपुतला रक्खा हुआ था। यह कमरा सन् 1936 में बनवाया था। उस समय डॉक्टर साहब का बज़न पौने दो सौ पौण्ड से ऊपर था।

वे अपने घर के सारे काम स्वयं करते थे। जैसे कमरों की सफाई करना, लकड़ी फाड़ना, इत्यादि। वे चाहते थे कि स्वयंसेवक भी परवलम्बी न रहकर स्वाबलम्बी बनें।

सच है अखिल भारतीय संगठन का निर्माण करने में सफलता प्राप्त करने वाले डाक्टर जी का यह था गृह–जीवन! दारिद्रयाची अमुची दीक्षा, सत्वाची प्रतिपदीं परीक्षा' (अर्थात् दारिद्रय की हमारी दीक्षा और प्रतिपद में सत्व की परीक्षा।) यही था उनके जीवन का नित्य अनुभव। डॉक्टर जी किसी दिन विशेष अवसर पर व्रतोपवास नहीं करते थे किन्तु इस प्रकार उपवास करने के अवसर उनको अनेक बार मिलते रहते थे।

हिन्दुत्व की प्रतीक शिखा (चोटी) डाक्टर जी ने स्वयं रक्खी भी तथा उनकी अपेक्षा

थी कि सब हिन्दू चोटी रक्खें परन्तु उसके लिये उन्होंने कभी भी किसी पर दबाब नहीं डाला।

वे प्रायः तीनों संध्या इकहरी धोती पहनकर करते थे। माथे पर रोली का टीका अथवा चन्दन भी लगा लेते थे। वे बाहर जाते समय अपने गृह–देवता के कक्ष में जाकर सश्रद्ध प्रणाम करना कभी नहीं भूलते थे।

डाक्टर जी वृति से सात्विक एवं आस्तिक थे। ईश्वर के अधिष्ठान पर उनकी अचल श्रद्धा थी। 'श्री' अथवा 'ऊँ' अंकित किये बिना कोई पत्र या दैनिकी का पृष्ट उनके द्वारा लिखा हुआ नहीं मिलता।

समर्थ गुरु स्वामी रामदास जी ने समर्थ को ही पुरुषार्थ बतलाया है। उन्होंने पुरुषार्थ को ही ईश्वर ही समर्थ के 'यत्न तो देवजाणावा' (अर्थात् यत्न से देव जानिये) तथा "अचूक यत्न तो देचोचुकणे दैत्य जाणि जे।" अर्थात् अचूक यत्न ही देव और चूक ही दैत्य जानिये। ये पद रहते थे। संघ की प्रार्थना में भी सर्वशक्तिमान प्रभु को सम्बोधित कर दो चरणों की योजना में यही आस्तिकता प्रकट हुई है। संघ की प्रतिज्ञा में भी परमेश्वर तथा पूर्वजों में भी सर्वशक्तिमान प्रभुको सम्बोधित कर दो चरणों की योजना में यही आस्तिवकता प्रकट हुई है। संघ की प्रतिज्ञा में भी परमेश्वर तथा पूर्वजों का स्मरण कर हिन्दू राष्ट्र के पूनरुद्धार एवं उसको वैभव–सम्पन्न करने के लिये प्रयत्नशील रहने का संकल्प लिया जाता है। निःसन्देह इसमें डॉक्टर जी के अन्तःकरण का भाव ही प्रतिबिम्बत होता है।

किसी भी व्यक्ति के उत्तम गुणों का अवश्य अनुकरण करना चाहिये किन्तु एकाध अच्छे गुण पर मुग्ध होकर, अपना सम्पूर्ण विवेक खोकर विकारवश होना अथवा गुणों के साथ उस व्यक्ति की सभी बातों का अनुकरण करना डाक्टर जी को कतई स्वीकार नहीं था।

"पुष्प के साथ सुगन्ध तथा सूर्य के साथ किरण के समान ही डॉक्टर जी की संगति में हास्य सदैव दिखाई देता था। अपनी विशाल मूँछों में से जब वे हँसने लगते तो आँगन

में बड़े नीम का वृक्ष की आड़ में से रजत कणों की उन्मुक्त वर्षा करने वाले चन्द्रमा की प्रसन्नता का स्मरण हो जाता था। वास्तव में हास्य निर्मल अन्तःकरण का प्रतिबिम्ब होता है। ऊपर–ऊपर से हास्य का दिखावा भले ही किया जा सके पर वह कागज के फूलों के समान निर्जीव एवं सुगन्ध रहित होता है। हास्य का माधुर्य उसके पीछे की विशुद्ध एवं निष्पाप सात्विकता का ही परिणाम होता है। डाक्टर जी के उन्मुक्त हास्य में यह माधुर्य सदैव अनुभवगम्य था।

डाक्टर साहब की बैठक सच्चे अर्थों में संस्कार केन्द्र थी। वाधाओं से हतबुद्धि एवं उदास होकर आने वाला कार्यकर्ता एक बार बैठक में बैठा कि उसे परिस्थिति से डटकर संघर्ष करने की प्रेरणा मिल जाती थी। उनके एक–एक शब्द से आँखें खोलकर चलने वाले कर्मयोगी व्यक्ति के अनुभवों की यथार्थता ही प्रकट होती थी।

डाक्टर साहब नित्यप्रति दैनन्दिनी लिखते थे। उनकी दैनन्दिनी के कुछ पृष्ठों पर अंकित सरस और प्रेरक सूक्तियाँ जीवन में उतारने योग्य है। यथा–

"बालण्या साररवें चालणें। स्वयं कुरूनि बोलणें। क्रियेवीण शब्द ज्ञान। तैंचि श्वानाचें वमन। ठायी–ठायीं शोध ध्यावा। भग ग्रामी प्रवेश करावा। तथा "कष्टेंविण फल नाहीं। कष्टे विण राज्या नाहीं। केल्याविण होत नाहीं। साध्य जनीं। स्वयं आपण कष्टावें। बहुतांचि शोशीत जावें। इनका हिन्दी रूपान्तरण हुआ कि (जैसा कहे करे भी वैसा, प्रथम करे तब बोले। करनी बिना कथनी करें श्वान वमन सम जान।" "जाँच लीजिये प्रथम तब करिये ग्राम प्रवेश।" 'कष्ट बिना फल नहीं, कष्ट बिना राज्य नहीं। किये बिना कुछ साध्य हुआ जग में न कहीं हैं। " इसलिये पढ़ी हुई बात को कृति में परिणत करने का आकांक्षा लेकर ही वे जीवन भर चले। केवल पठित पाण्डित्य का कोरा सन्तोष उन्हें रुचिकर नहीं था। "यः क्रियावान् सः पण्डितः" इस कोटि में वे अग्रगण्य थे।

वे इतने मिलन सार थे कि 'हाउ टू बिन फैण्ड्स एण्ड इनफ्लुयेंस प्यूपिल, जैसे व्यवहार सिखाने वाले ग्रन्थ उने ऊपर न्योछावर किये जा सकते थे। उनमें एक अद्भुत

सहजता और आकर्षकता थी। जिस हिन्दू समाज में शव–यात्रा छोड़कर और कभी चार जनों के भी मुँह एक दिशा में नहीं होते थे, उसमें हजारों तरुणों का हिन्दुराष्ट्रोत्थान के लिये देश व्यापी संगठन डॉक्टर जी ने पन्द्रह वर्षों में साकार करके दिखा दिया, यह उनकी असामान्यता ही थी तथा उनके व्यक्तित्व की अपार चुम्बकीय शक्ति।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1–डॉ0 भीम राव अम्बेडकर, अनु0 कु0 शशि सक्सेना, पृ0 6,7

2–श्री मद्भगद्गीता, अध्याय 18 श्लोक 41, 42, 43, 44

3–डॉ0 भीम राव अम्बेडकर, अनु0 कु0 शशि सक्सेना, पृ0 9

4–श्री मद्भगद्गीता, अध्याय 18 श्लोक 61

5–गीता पद्यानुवाद, डॉ0 रामस्वरूप खरे, पृ0 128 अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा संस्करण 4, 1965

6–शाखा पुस्तिका, कानपुर प्रान्त, वर्ष 4, अंक 9, मास आश्विन, कार्तिक, मार्गशीषें, युगाब्द 5106

7–डॉ0 हेडगेवार चरित्र, लेखक ना0 ह0 पालकर, लोकहित प्रकाशन राजाजीपुरम् लखनऊ पृ0 460

8–डॉ0 हेडगेवार चरित्र, लेखक ना0 ह0 पालकर, लोकहित प्रकाशन राजाजीपुरम् लखनऊ पृ0 470

चतुर्थ अध्याय

डॉ हेडगेवार की जीवन परिचय

जन्म तिथि

भाई—बहन एवं अन्य परिवारीय जन

शिक्षा

जीवन का उद्देश्य

चतुर्थ अध्याय

जन्म—चैत्र शुक्ल प्रतिपदा विक्रम संवत् 1945 तथा शक संवत् 1811 तदनुसार 1 अप्रैल सन् 1889 ई0 रविवार को प्रभात वेला में हेडगेवार के यशस्वी कुल में चिरंजीव केशव का नागपुर में जन्म हुआ। आगे चलकर यही बालक डॉ0 केशव राव हेडगेवार के नाम से विख्यात हुआ तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का प्रथम सर संघ चालक एवं संस्थापक बना। आज भी संघ की समस्त शाखाओं में वर्ष प्रतिपदा के दिन आद्य सर संघ चालक प्रणाम की परम्परा चली आ रही है।

माता— आपकी माता का नाम रेवती बाई था जो धार्मिक, सहिष्णु एवं अत्यन्त उदार मना थीं। उन्हें ससुराल में आने पर हेडगेवार परिवार की समस्त परम्पराओं का स्मरण था। वे सदैव ऐसे कार्य सम्पादित करती थीं जिससे इस कुल की मान प्रतिष्ठा पर कभी कोई आँच न आ सकें। समूचा घर परिवार उनके लिये मन्दिर के समान पवित्र और पूजनीय था। सभी शिशु उनके लिये सचमुच बाल गोपाल के समान निश्छल, भोले भाले और प्राणों से भी प्यारे थे। माता के धार्मिक एवं आध्यात्मिक संस्कार केशव पर भी पड़े। वह उन्हें धार्मिक कहानियाँ सुना—सुनाकर सदाचार के पथ पर बढ़ाना चाहती थी। केशव का शरीर अपने बड़े भाई के समान ही हृष्ट—पुष्ट और साँवला था। पर, उसमें आन्तरिक मानवीय सदगुणों का अपरिमित भण्डार सुरक्षित था।

पिता— आपके पिता का शुभ नाम बलिराम पन्त हेडगेवार था। यह वेदपाठी और ऋग्वेद के प्रकाण्ड पण्डित थे। आपकी पत्नी जितनी सरल, विनम्र और उदार थी आप उतने ही अधिक उग्रस्वभाव के थे। यद्यपि वह समय मुसलमानों और अंग्रेजों के दमन चक्र से प्रभावित था तो भी बलिराम पन्त को दैनन्दिन धार्मिक एवं आध्यात्मिक अभ्यास अनवरत रूप से चलता रहता था। बलिराम एक सात्विक वृत्ति के साधुमना किन्तु स्वाभिमानी व्यक्ति थे। शास्त्र सम्मत कुछ निश्चित घरों से ही वे भिक्षान्न ग्रहण करते थे। सिर पर लाल टोपा, मस्तक पर भस्म और हाथ में ताम्र—धातु से निर्मित कटोरा लिये प्रातः समय

उन्हें देखा जा सकता था। हँसमुख स्वभाव, धोती और श्वेत उत्तरीय धारण किये वे प्रायः सादा वेश में ही रहा करते थे। मितव्ययी और अल्प तथा मधुभाषी। ईश्वर पर अगाध आस्था रखने वाले अपने में परम संतुष्ट।

प्राथमिक शिक्षा– हेडगेवार की प्राथमिक शिक्षा नागपुर में ही हुई। इनकी स्मरण शक्ति अनूठी एवं अभूतपूर्व थी। किसी से एक बार ही श्लोक सुनने पर उन्हें स्मरण हो जाता था। आपने वचपन में ही राम रक्षा स्त्रोत सुन–सुनकर कण्ठस्थ कर लिया था। प्रारम्भ से आप में अनूठी संगठन शक्ति विद्यमान थी। अन्त्याक्षरी एवं राष्ट्रीय कविताओं की प्रतियोगिता में आपने अनेक बार भाग लिया। आपके कण्ठ से राष्ट्रीय गीत बड़े ही प्रभावी और आकर्षक लगते थे। आपको संगीत का भी ज्ञान था। अतएव रचनाओं के पाठ करते समय आरोह–अवरोह और संगीतात्मकता के कारण आपकी ख्याति अन्य छात्रों में शीघ्र ही व्याप्त हो उठी।

माध्यमिक शिक्षा– बालक केशव के बड़े भाई महादेव को संस्कृत की शिक्षा–दीक्षा हेतु काशी भेजा गया। कुछ समयोपरानत वे वहाँ से देवभाषाा में प्रवीणता प्राप्त कर के विद्वान बनकर लौटे। दूसरे भाई सीताराम के साथ केशव ने प्राथमिक शिक्षा नागपुर में ही एक साथ पूरी की। घर पर इन दोनों को माता–पिता की ओर से अनेक श्लोक, स्त्रोत आदि स्मरण कराये जाते थे।

उस समय आज जैसी मँहगाई न थी। बहुत ही सस्ता समय था। मात्र एक रुपये में पक्के सवामन से कुछ अधिक ज्वार, बारह से पन्द्रह सेर तक दूध तथा घी बारह आने का एक सेर मिल जाता था। बालक पाँच छैः वर्ष की अवस्था से ही घोती पहनने लगते थे। सादा धोती मात्र बारह आने में उपलब्ध हो जाती थी और यदि बारीक सूत का बढ़िया जोड़ा लिया तो ढाई रूपये में मिल जाता था। इसलिये निर्धनता का प्रकोप होते हुये भी हेडगेवार परिवार को इनकी प्रतीति नहीं हो पाती थी। उस समय दान–दक्षिणा भी प्रचुर परिमाण में प्राप्त हो जाया करती थी।

केशव की रुचि को और समय की आवश्यकता को देखते हुये महाल के निकटस्थ नील सिटी हाईस्कूल में अंग्रेजी पढ़ने भेजा गया। अब तक अनेक वीर पुरुषों की जीवनियाँ केशव पढ़ चुका था। पर शिवाजी की जीवनी से वह अत्यधिक प्रभावित हुआ। धीरे–धीरे उसमें राष्ट्रीयता के भाव उदित होने लगे।

भावी जीवन को प्रभावित करने वाली कुछ अविस्मरणीय घटनायें–

22 जून 1897 को इग्लैण्ड की साम्राज्ञी विक्टोरिया के राज्यारोहण के साठ वर्ष पूरे हो चुके थे। सरकारी आदेशानुसार गाँव–गाँव और नगर–नगर में यह समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। जगह–जगह मिष्ठान वितरण कराया गया। मिठाई के लिये बालक तो प्रायः लालायित रहते ही हैं पर ज्यों ही बालक के स्कूल में इस समारोह के उपलक्ष्य में मिठाई बाँटी गई तो अन्य साथियों ने बड़े आनन्द पूर्वक इसे खाया। केशव अन्यमनस्क हो गया और सोचने लगा–"हमें गुलाम बनाने वालों की यह मिठाई नहीं खाना चाहियें क्योंकि यह तो हमारे लिये विष तुल्य है।" एक बार मिठाई के दोना को ललचाई दृष्टि से देखा तो अवश्य पर उक्त विचार मन में आते ही उसने वह सारी मिठाई तुरन्त कूड़े दान में फेक दी।

इसी प्रकार सन् 1901 ई0 में इग्लैण्ड के बादशाह एडवर्ड सप्तम के राज्यारोहण के समय लोगों ने चाटुकारिता का प्रदर्शन किया। पाश्चात्य विचारधारा के पोषक भारत के धनी–व्यापरियों ने अंग्रेजो के प्रति खूब अपनी निष्ठा प्रदर्शित की । उस दिन स्थानीय एक्प्रेस मिल के मालिको ने आतिशवाजी जलाकर अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन किया और बड़ा जलसा मनाया। उसे देखने केशव के अन्य बाल साथी, जब जाने लगे तो केशव से भी साथ चलने को कहा। केशव ने निर्भीक हो उत्तर दिया–"विदेशी राजा का राज्यारोहण उत्सव मनाना हमारे लिये लज्जा का विषय है। अतः मैं नहीं जाऊँगा।" केशव ने अनुभव किया था कि पराधीनता का जीवन कभी भी श्रेष्ठ और सम्मानजनक नहीं हो सकता। अतएव हमें मिल जुलकर इस पराधीनता से मुक्ति की बात सोचना चाहिये। अंग्रेज शासक

तो फूट का दुखदायी बीज बोकर हम सबको आपस में सदैव लड़ाये रखना चाहते हैं। उनकी इस कुचाल पर हमें गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिये। हम सब भारत वासियों में राष्ट्रीय भावना और अटूट एकता बहुत आवश्यक है। विना हसके हमारा राष्ट्र कभी भी उन्नति के चरमोच्च शिखर पर नहीं पहुँच सकता।

हाई स्कूल में अध्ययन करते समय उस शाला का निरीक्षण करने के लिये अंग्रेज शिक्षा अधिकारी को आना था। हेडमास्टर साहब ने सभी छात्रों को अभिवादन के तौर–तरीके बताते हुये विनम्रता पूर्वक व्यवहार करने के लिये आदेशित किया। किन्तु केशव के मन में तो कुछ और ही योजना पनप रही थी। उन्होंने अपने कुछ अच्छे साथियों से विचार विमर्श किया और निरीक्षक के कक्षा में प्रबिष्ट होने पर सभी छात्र एक साथ 'वन्देमातरम्' का उद्घोष करके उनका अभिनन्दन करें।

सर्वप्रथम शिक्षा अधिकारी ने मैट्रिक कक्षा में प्रवेश किया। पूरे कक्ष में 'वन्देमातरम्' का तुमुल स्वर निनादित हो उठा। शिक्षा अधिकारी तिलमिला गया। प्रधानाध्यापक उसे दूसरे कक्ष में ले गये। पर वहाँ भी 'वन्देमातरम्' का स्वर गूँज उठा। इसी प्रकार अन्यान्य कक्षाओं की यही स्थिति रही। शिक्षा अधिकारी अप्रसन्न होकर प्रधानाध्यापक को खरी खोटी सुनाकर चले गये। किन्तु जिन–जिन कक्षाओं में यह घटना घटी थी, उनकी जाँच पड़ताल प्रारम्भ कर दी गई। बड़ा प्रयत्न किया गया कि कोई एकाध छात्र यह बता दे कि यह सारी योजना किसने बनाई थी। पर सबको निराशा ही मिली। कोई भी छात्र यह बताने को तैयार न था बल्कि पूछे जाने पर सब मौन रह जाते थे।

डेड़–दो माह तक हड़ताल चलती रही। सभी छात्रों ने विद्यालय वहिष्कार किया और कहा तुरन्त विद्यालय खोला जाय और पढ़ाई प्रारम्भ की जाये। पर विद्यालय का प्रबन्ध ा–तंत्र इस बात पर अड़ा था कि पहले उन छात्रों के नाम बताओ जिन्होंने यह सब बखेड़ा खड़ा किया। इस पर भी किसी भी छ्त्र ने किसी का नाम नहीं लिया। पुनः तत्कालीन मुख्याध्यापक ने एक तरीका निकाला कि केवल सिर हिलाकर अपनी भूल स्वीकार कर लें,

किसी छात्र को कोई दण्ड नहीं दिया जायेगा। पालक प्रत्येक विद्यार्थी से पूछें 'भूल हो गई न'' परिणाम यह हुआ कि लगभग तेरह–चौदह सौ विद्यार्थी विद्यालय में पढ़ने लगे। किन्तु उनमें जो छात्र नहीं आया वह अपनी धुन और योजना का कुशल नियामक केशव ही तो था। केशव से फिर भी कहा गया कि वह अपनी हठ छोड दे किन्तु वह अपनी हठ छोड़ने को किसी प्रकार तैयार न हुआ परिणाम स्वरूप केशव का नाम उस विद्यालय से काट दिया गया। वह बारबर सोचता था कि जिस विदेशी सरकार की सत्ता में मातृभूमि की वन्दना यदि अपराध है तो वह अपराध एक बार नहीं अनेक बार करेगा और उसके कारण उत्पन्न सभी संकटों और यातनाओं को सहर्ष झेलेगा। पर, उसके सामने अपने स्वार्थ के कारण कभी क्षमा याचना नहीं करेगा। क्योंकि 'भारत माता की जय' कहना कोई अपराध नहीं है।

केशव के हृदय में उत्कट देशभक्ति की भावना कूटकूट कर भरी थी। जब वह नागपुर के तत्कालीन नरेश भोंसले की कोठी पर 'भगवा ध्वज' लहराता देखता था तो उसे अपार प्रसन्नता होती थी। पर जब उसे ज्ञात हुआ कि अपने देश पर भोंसले का नहीं वरन् अंग्रेजों का राज्य है तब उसे बड़ा ही हार्दिक दुख हुआ।

आते–जाते एक दिन केशव की दृष्टि सीतावर्डी दुर्ग पर फहराते हुये अंग्रेजों के झण्डे 'यूनियन जैक' पर पड़ी। तुरन्त ही वह क्रोधावेश में आ गया। उसने सोचा–यह तो विदेशियों का ध्वज है, भारत में तो एक मात्र 'भगवा ध्वज' ही लहर सकता है। अतएव अपने परम प्रिय मित्रों के साथ बैठकर एक गुप्त योजना बनाई। माननीय प्र0 ग0 सहस्त्र बुद्धे के अनुसार ''हम सुरंग खोदकर गुप्त मार्ग से सीतावर्डी किले पर पहुँचेंगे और शत्रु का झण्डा उतारकर, भगवा ध्वज फहरायेंगे।'' योजना बनी तुरन्त ही उसे क्रियान्वित भी कर दिया गया। रातभर में सुरंग खोदकर अपनी मित्र–मण्डली के साथ केशव दुर्ग तक पहुँचा और उसने अभूतपूर्व साहस बटोरकर 'यूनियन जैक' उतार कर उस दुर्ग पर अपना 'भगवा ध्वज' फहरा दिया। उनके गुरु जी यह सब देखकर दंग रह गये।

नाम कट जाने के उपरान्त केशव अपने चाचा आवाजी के पास रामपायली गये। वे अपने भजीजे की देशभक्ति की उत्कट भावना जानकर अत्यधिक प्रसन्न हुये। उन्होंने इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा करके उसका उत्साह वर्धन भी किया। डॉ0 बाबा साहब उपाख्य नरहर शिवराम परांजपे के प्रयत्नों से एक राष्ट्रीय विद्यालय संचालित किया जा रहा था, जिसका नाम विद्यागृह' था। उसी में केशव को सन् 1909 में प्रवेश दिला दिया गया।

राष्ट्रीय आन्दोलनों में तरुणों का अभाव एवं अनुपस्थिति खटकती थी किन्तु क्या किया जाये, शासन की ओर से छात्रों को ऐसे आन्दोलनों में भाग लेने की अनुमति नहीं थी। इस कमी को पूरा करने के लिये एक 'राष्ट्रीय विद्यापीठ' संस्थापित किया गया। सर्वश्री अरविन्द घोष, डॉ0 रास बिहारी घोष और वै0 सुरेन्द्र नाथ बन्द्योपाध्याय, इसके संस्थापक सदस्य और संचालक थे। अन्य प्रान्तों में ऐसे विद्यालयों की महती आवश्यकता प्रतीत होने लगी। अतएव बंगाल के बाद महाराष्ट्र और पंजाब में भी इस प्रकार की राष्ट्रीय संस्थायें भिन्न–भिन्न नामों से संस्थापित की गई थीं। बरमर में अमरावती का 'शिवाजी विद्यालय'। इन विद्यालयों में तरुण क्रान्तिकारी गति विधियों में भाग लेते, बम बनाना सीखते और उत्कट देशभक्ति की भावना से अभिभूत हो राष्ट्र सेवा का ब्रत लेते थे। केशव की सच्ची देश भक्ति में और निखार आया यवतमाल के विद्यालय में।

माता–पिता की स्नेहमयी छाया से वंचित– सन् 1902 ई0 में नागपुर में प्लेग की बीमारी ने आतंकित कर डाला था। सर्वत्र हा हाकार मचा हुआ था। ऐसा कोई घर नहीं बचा था जिसमें प्रतिदिन चार–छैः लोग दिवंगत न हो जाते हों। केशव के पिता उनके दाह–संस्कार हेतु श्मशान जाते और फिर आकर शीतल जल से स्नान करते। क्योंकि वह अपने नियम के बड़े पक्के थे। उनकी अग्नि–पूजा का क्रम आजीवन यथावत चलता रहा, कभी भी टूट नहीं पाया। इसी प्लेग की बीमारी ने केशव के ऊपर से माँ की ममतामयी आँचल की स्नेहिल छाया छीन ली। इसी दिन पिता भी इसी बीमारी से इस लोक से प्रयाण कर गये। दोनों को एक ही साथ श्मशान भूमि ले जाकर उनके दाह–संस्कार

सम्पन्न किये गये। सच है, जिसने इस असार संसार में जन्म धारण किया है, उसे मरना ही पड़ता है, यही जीवन का एक मात्र कटु सत्य है। एकदश वर्षीय केशव यह सब देखकर अपार दुख के समुद्र में निमग्न हो गया। कुछ दिनों तक वह बहुत ही अन्यमनस्क रहा। निर्धनता की छाया तो परिवार में वचपन से ही थी। उसके साथ–साथ वह अनाथ–सा इधर–उधर डोलने लगा।

इसी उधेड़बुन के समय केशव को डॉ0 मुंजे, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक आदि का सान्निध्य मिला। केसरी' द्वारा प्रवर्तित 'पैसा फण्ड' में केशव ने खूब बढ़–चढ़कर भाग लिया और एक अच्छी धनराशि एकत्र की। उसे घर–घर पैसा माँगने में कोई शर्म महसूस नहीं होती थी। वह अक्सर कहा करता था–

"घर जाऊँ मागूँ नहीं, अपने तन के काज!

परमारथ के कारने मोहि न आवे लाज।"

इसके पश्चात केशव को कलकत्ता भेज दिया गया। वहाँ रहकर उसने 'नेशनल मेडिकल कॉलेज कलकत्ता से एल0 एम0 एण्ड एस0 की उपाधि प्राप्त की और डाक्टर बन गये। उसी समय 17 जून 1914 ई0 को माण्डले जेल से लोकमान्य तिलक को मुक्त होने का सुसमाचार मिला। इस अवसर पर केशव ने स्वतः प्रेरणा से डॉ0 मुंजे के निवास पर आनन्दोत्सव के रूप में दीपमालिका मनाई। 9 जौलाई 1915 ई0 को व्यावहारिक शिक्षा का भी डाक्टर केशवराव हेडगेवार को प्रमाण पत्र मिला। इस प्रकार डॉ0 हेडगेवार लगभग पाँच वर्ष की शिक्षा प्राप्त कर 1916 के प्रारम्भ में नागपुर वापस आ गये।

सन् 1917 ई0 में सीताराम का विवाह हो चुका था। प्रायः लोग केशव के विवाह की बात करने लगे। इसी तारतम्य में केशव के दूर के रिश्ते के चाचा ने रामपायली से एक पत्र लिखा– "आपका विवाह के सम्बन्ध में क्या विचार है। यह एक बार स्पष्ट रूप से बता दो।" इस पत्र के उत्तर में केशव ने जो उत्तर दिया वह अत्यन्त मननीय एवं स्मरणीय है। उन्होंने लिखा– " अविवाहित रहकर जन्मभर राष्ट्र–कार्य करने का मैंने निश्चय किया

है। देश कार्य करते हुये कभी भी जीवन पर संकट आ सकता है, यह जानते हुये भी एक लड़की के जीवन का नाश करने में क्या अर्थ है।" बस, इसके पश्चात् केशव के विवाह का परिच्छेद सदा–सदा के लिये सामप्त हो गया।

क्रान्तिकारी गतिविधयों के कारण सन! 1908–09 ई0 से ही सरकारी गुप्तचर डॉ0 हेडगेवार के पीछे लग गये।

जीवन का उद्‌देश्य– प्राणियों मे मनुष्य सर्व श्रेष्ठ है। क्योंकि आहार, निद्रा, भय और मैथुन अर्थात अपने वंश अभिवर्धन की प्रवृत्ति तो पशुओं में भी होती है। मात्र 'धर्म' ही पशुत्व से अलग करता हैं मनुष्य को। संस्कृत में कहा भी गया है–

आहार निद्रा भय मैथुंन च

सामान्यमेतत पशुर्भिर्नराणाम्

धर्मोहि तेषां–अधिको विशेषः

धर्मेण हीनः पशुभिः समानः।।[1]

हमारे यहाँ ऐसा धार्मिक विश्वास है कि जीव जब चौरासी लक्ष्य योनियों की यातनाओं को झेल चुकता है तब प्रभु की असीम और अनन्य कृपा से मानव–जन्म सम्भव होता है। श्री रामचरित मानस में भी कहा गया है–

"बड़े भाग मानुष तन पावा।

सुर दुर्लभ सद ग्रन्थन गावा।"

स्वर्ग लोक में बसने वाले देवता भी मनुष्य शरीर में भारत–भूमि में जन्म लेने को तरसते रहते हैं। वे यह कहते नहीं थकते कि जिन्होंने भारत भूमि में जन्म लिया। वे मनुष्य निःसन्देह धन्य हैं। वे बड़े ही सौभाग्यशाली हैं। यथा–

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि

धन्यास्ते भारत भूमि भामें:।"

इन सब उदाहरणों से एक बात तो स्पष्ट हो ही जाती है कि मनुष्य शरीर ईश्वरीय

शक्ति की अनुपम देन है अतएव मानव शरीर को पाकर प्रत्येक व्यक्ति को अपना और सबका कल्याण करना चाहिये। डॉ0 हेडगेवार ने बचपन से ही अपना जीवनोद्देश्य निश्चित कर लिया था। विद्यार्थी जीवन की प्रमुख तीन घटनायें अर्थात् विक्टोरिया के राज्यारोहण के साठ वर्ष पूरे होने पर शालेय मिठाई का परित्याग यह कहकर कि भारत को पद–दलित करने वाले विदेशी राजा के राज्यारोहण पर कैसी प्रसन्नता? 1901 ई0 में इंग्लैण्ड के बादशाह एडवर्ड सप्तक के राज्यारोहण के अवसर पर एक्सप्रेस मिल मालिकों ने आतिश बाजी जलाकर राज्य निष्ठा बड़े ठाठ से प्रस्तुत की पर केशव ने अपने बाल मित्रों से उस उत्सव में न जाते हुए कहा–"विदेशी राज का राज्यारोहण उत्सव मनाना हमारे लिये लज्जा का विषय है।

अंग्रेज जिला इन्सपैक्टर के कक्षा में निरीक्षणार्थ आने पर अपने सभी साथियों के साथ कक्षा मे 'वन्देमातरम्! के तुमुल उदघोष द्वारास स्वागत।

इसी प्रकार नागपुर में सीतावर्डी के किला पर 'यूनियन जैक' को लहराते देखकर कष्ट होना तथा उसके स्थान पर उसे हटाकर अपना भगवाध्वज फहराना।

अतएव कहा जा सकता है कि आदरणीय डॉ0 हेडगेवार ने यह दृढ़ संकल्प करके अपने जीवन का उद्देश्य भली भाँति सुनिश्चित कर लिया था कि देश से पराधीनता का कलंक हटाकर समूचे हिन्दू समाज को संगठित करते हुये इसे परम वैभव की ओर ले जाना है। स्वाभिमान पूर्वक जीना ही उनका एक मात्र ध्येय था। 'स्वयमेव मृगेन्द्रता' ध्येय वाक्य में उनकी उत्कट राष्ट्र भक्ति, देश सेवा और असीम त्याग की भावना सन्निहित है। डॉ0 राम स्वरूप खरे के मतानुसार–

"आजीवन निष्काम कर्म करते हुये उन्होंने जो 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' का एक छोटा विरवा रोपने के लिये उत्कट राष्ट्र भक्ति का बीज–वपन किया था, वह कुछ कालोपरान्त अपनी अजेय शक्ति के कारण विभिन्न विषम परिस्थितियों के वातावरण को छिन्न–भिन्न करता हुआ पल्लवित पुष्पित और फलित हुआ। पराधीनता की काल–रात्रि

समाप्त हुई और उन्हीं के जीवन में स्वातंत्र्य–सूर्य का नवोदय हुआ जिसके दिव्य आलोक में भारत में ही नहीं अपितु विश्व के अनेक स्थानों पर परम पवित्र भगवा ध्वज लहर उठा।"[2] कामायनीकार प्रसाद के अनुसार उनका मानना था कि विखरी हुई असीम शक्ति को एकत्र कर मानवता की विजय पताका समूचे विश्व में फहराई जाये। यथा–

"शक्ति के विद्युत कण जो व्यस्त, विकल विखरे हैं हो निरुपाय।

समन्वय उनका करे समष्टि विजयनी मानवता हो जाय।"[3]

समाज में व्यक्ति का महत्व तभी श्रेष्ठ हो पाता है जब वह अपना 'स्व' त्यागकर परार्थ अपना जीवन हँस–हँस के समर्पित कर देता हैं युगकवि डॉ0 राम स्वरूप खरे ने अपने खण्डकाव्य 'शतमन्यु' में उसके नायक के माध्यम से बड़े सुन्दर भाव व्यक्त किये हैं। डॉ0 हेडगेवार का जीवन वास्तव में धन्य और अनुकरणीय है। तभी तो कहा गया है–

"लुटाता सौरभ वही प्रसून,

प्रथम जो खिलता काँटों बीच।

वही दे पाता अभिनव ज्योति,

दीप, जो हँसता तम के बीच।"[4]

निम्नांकित काव्य पँक्तियाँ मानों डॉ0 हेडगेवार के जीवन का आदर्श बन गई थीं–

"जीवन का यज्ञ सफल होता,

सचमुच श्रम की समिधाओं से।

उसको ही लक्ष्य प्राप्त होता,

जो डरे नहीं बाधाओं से।"[5]

इस प्रकार निःसन्देह डॉ0 हेडगेवार ने अपने जीवन–पुष्प को भारत माता के चरणों में सश्रद्ध समर्पित करके यह सिद्ध कर दिया कि इससे बढ़कर कोई और उत्सर्ग नहीं किया जा सकता। उनका असीम त्याग और निःस्वार्थ बलिदान अनेकानेक युवकों का सुप्रेरणा देता रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1–नीति शतक, भर्तृहरि

2–संघ संस्थापक डॉ0 हेडगेवार, युगकवि राम स्वरूप खरे, पृ0 4

3–कामायनी, जय शंकर प्रसाद,

4–शतमन्यु खण्ड काव्य, युगकवि डॉ0 राम स्वरूप खरे, पृ0

5–शतमन्यु खण्ड काव्य, युगकवि डॉ0 राम स्वरूप खरे, पृ0

पंचम अध्याय

डॉ० हेडगेवार का बहुमुखी व्यक्तित्व

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना

वैचारिक सोच से समाज में अभिनव परिवर्तन

जाति पाति जैस कुसंस्कार का उच्छेदन

उत्कट राष्ट्र भक्ति की प्रेरणा

पंचम अध्याय

(क) राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की संस्थापना– सन् 1925 में विजय दशमी के दिन मोहिते के बाड़े में की गई डॉ0 हेडगेवार इसके संस्थापक थे।

(ख) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य एक सार्वजनिक कार्य है। परिस्थितियों के अनुसार इसकी कार्य पद्धति में थोड़ा–बहुत परिवर्तन आना स्वाभाविक हैं जैसे–जैसे परिस्थितियाँ बदलती जाती हैं। उनके अनुरूप ही संघ का विचार रखने के ढंग में भी परिवर्तन आ जाता है। अतः कुछ परिवर्तित पद्धतियों के कारण संघ के सम्बन्ध में भ्रमित नहीं होना चाहिए। 1940 के पूर्व तथा उसके बाद के उदाहरणों में भिन्नता होते हुए भी आधारभूत विचार अपरिवर्तित एवं समानता से परिपूर्ण है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हिन्दू समाज को सामर्थ्य सम्पन्न बनाना चाहता है। उसकी इच्छा है कि यह सामर्थ्य समाज में स्वाभाविक रीति से सदैव विद्यमान रहे। किसी बाह्य संगठन द्वारा सदैव समाज की रक्षा की जाती रहे, उचित नहीं। एक विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करने वाले व्यक्तियों का समूह ही समाज कहलाता है। व्यक्तियों के किसी भी समूह अथवा सिनेमा घर में एकत्र भीड़ को समाज नहीं कहते। समाज की संज्ञा प्राप्त करने के लिए विशिष्ट व्यवहार करने वाले व्यक्तियों के बीच एक स्वाभाविक व्यवस्था चाहिए क्योंकि उस व्यवस्था में ही समाज की वास्तविक सामर्थ्य निहित है। जब समाज में इस प्रकार का सामर्थ्य जागृत हो जाता है तो वह अपनी हर समस्या का हल निकालने के लिए स्वयमेव सदा तैयार रहता है। संघ इसी प्रकार के स्वाभाविक सामर्थ्य के जागरण का कार्य कर रहा है। अतः जो समाज स्वाभाविक रूप से शक्तिशाली एवं साहसी होता है वही अपने को सुरक्षित रख पाता है। जब तक समाज की यह स्वाभाविक अवस्था नहीं बनती उसकी अन्तर्बाह्य समस्यायें सुलझायी नहीं जा सकती। संघ कार्य की कल्पना भी ऐसी ही है। किसी भी राष्ट्र का बडप्पन इस बात पर निर्भर नहीं है कि उसके नेता कितने महान्, बुद्धिमान और बड़े हैं वरन् वह इस बात पर निर्भर है कि उस राष्ट्र का जन–सामान्य कितना बड़ा है, कितना धैर्यवान एवं

सामर्थ्यशाली है। उसका आचार, विचार, और व्यवहार कैसा है? जिस समाज में लोग स्वार्थग्रस्त, हों, सम्पूर्ण समाज और देश का कभी विचार न करते हों, उस समाज का जीवन बहुत दिन चल नहीं सकता। अपने हिन्दू धर्म में इसी कारण कहा गया है कि स्वार्थ छोड़कर परार्थ कार्य करना चाहिए–"एते सत्पुरुषाः परार्थ घटका स्वार्थान्परित्यज्ययें।" इसी प्रकार सामान्य पुरुष वही है जो परार्थ का उद्यम करता है, किन्तु उसमें अपने स्वार्थ का अविरोध देखता है–"सामान्यस्तु परार्थ उद्यमभूतः स्वार्थाविरोधेनये।" इस प्राचीन व्याख्या के अनुसार सामान्य मनुष्य को भी परार्थउद्यम करना चाहिए। इंगलैण्ड, जर्मनी, इजरायल, जापान, भारत आदि देशों के पुनर्निर्माण का इतिहास द्वितीय युद्ध के बाद प्रारम्भ हुआ है। जर्मनी ने इन वर्षों में पहले से भी अधिक आर्थिक उन्नति कर ली है। जापान ओर इजरायल ने भी चमत्कार कर दिखाया है। अल्पकाल में ही उन्होंने अपनी आन्तरिक व्यवस्था उन्नत एवं सुदृढ़ कर ली तथा बाह्य आक्रमण के लिए भी सामर्थ्य उत्पन्न कर लिया। यह कैसे सम्भव हुआ? इसका एक ही कारण है कि वहाँ के सामान्य व्यक्ति के व्यवहार से समाज में स्वाभाविक सामर्थ्य जागृत हो गया है। थोड़े बहुत लोग अपने परिवार तथा अन्य स्वार्थों का विचार भले ही करते हों परन्तु संकट काल में वे स्वभावतः उठ खड़े होते हैं। सामान्य काल में विभिन्न समाजों के जीवन में कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता। विशिष्ट समय आने पर उसका वैशिष्टय प्रकट हो जाता है। परन्तु हर समाज अपना यह स्वाभाविक सामर्थ्य प्रकट नहीं कर पाता। संस्कृत में एक सुभाषित है–"काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदो पिक काकयोः। वसन्त समयै प्राप्तेः काकः काकः पिकः पिकः।" जैसे बसन्त के आगमन पर कोयल और कौए के भेद का पता चल जाता है वैसे ही संकटकाल आने पर सबल और निर्बल समाज का भेद भी प्रकट हो जाता है। अपने समाज के सामान्य लोगों में जो शक्ति का वास्तविक स्रोत है उसे स्वाभाविक सामर्थ्य को जाग्रत करने के लिए संघ कार्य चल रहा है। जितनी जल्दी यह कार्य होगा–संघ का कार्य उतनी ही शीघ्रता से पूर्णता को प्राप्त होगा।

डाक्टर जी कहा करते थे 'हमें संघ की कोई जुबिली नहीं मनानी है। वे "याचि देहि, याचि डोला" (इसी देह और इन्हीं आँखों से) समाज में 'स्वाभाविक सामर्थ्य' उत्पन्न हुआ देखना चाहते थे। संघ अपने इसी रूप में सदैव सब कुछ करता नहीं रहेगा। संघ जो चाहता है वह इस समाज के जनसामान्य के द्वारा स्वतः होना चाहिए। व्यक्तिगत दृष्टि से संघ का कार्य हमें जीवन पर्यन्त करना है। संघ का अन्तिम लक्ष्य अपने इस समाज में 'स्वाभाविक सामर्थ्य' जगाना है। इसके बिना समाज का स्थायी संकट हल नहीं हो सकता। विश्व में जहाँ के समाज अधिक जाग्रत, विकसित और अपनी स्वाभाविक स्थिति में थे वहाँ थोड़े प्रयत्न और कम समय में ही उनकी उन्नति हो गयी परन्तु अपने इस हिन्दु समाज की परिस्थितियाँ भिन्न हैं। हजारों वर्षों की विदेशी दासता के कारण अपने समाज की स्वाभाविक स्थिति सामाप्त होकर विकट तथा विश्रृंखल हो गयी है। डाक्टर जी की तो 'इसी जीवन में और इन्हीं आँखों से' यह सफलता देखने की प्रवल इच्छा थी, परन्तु वह पूर्ण न हुई। हो सकता है कि उसे सुधारने में अधिक समय लगे। देश में अनेक समस्यायें है–प्रान्त–प्रान्त के भेद, भाषा भेद, ब्राह्मण–अब्रह्मण के भेद। एक समस्या को हल करते समय बीच में दूसरी नयी समस्या उठ खड़ी होती है। शिवाजी के समय में कुछ चेतना आई थी। सम्भा जी की हत्या के बाद राजाराम को बचाने के लिए उन्हें दक्षिण में जिंजी के किले में रक्खा गया। औरगंजेब की सेना से घिर जाने के बाद वे निकल भागे। सनता जी घोरपड़े, धना जी जाधव सरीखे बड़े–बड़े सेनापति गुरिल्ला युद्ध चलाते रहे। सम्पूर्ण समाज ने उन्हें सहयोग दिया। वहाँ के गाँवों से ही उन्हें लड़ने के लिए युवक तथा भोजन के लिए खाद्यान मिलता रहा। शत्रुओं की गतिविधियों की जानकारी सर्वसाधारण समाज से उन्हें मिलती रहती थी। औरंगजेब को जब पता चला कि अमुख गाँव के लोगों ने मराठों को रसद दी है, सेना और शस्त्र दिये है, उन्हें समर्थन दिया है, तो वह उस गाँव को नष्ट कर देता था। वहाँ के निवासियों का कत्लेआम किया जाता था। घर फूँक डाले जाते थे, फसलें नष्ट कर दी जाती थी। इन अत्याचारों और दमन के बाद भी वह समाज मुगलों

के विरुद्ध होने बाले संघर्षों को अपना सक्रिय समर्थन देता रहा। वास्तव में जागरण की इन चिनगारियों को एक स्थाई ज्वाला बनाने की आवश्यकता है। हजारों वर्षों की दासता के काल में हमारी श्रेष्ठ परम्परायें टूट गयीं और हमारे समाज का पतन हो गया। इसका विचार छोड़कर केवल आगे की ही सोचते जाना उचित नहीं है।

सच्चाई यह है कि अब हमारे समाज का सहज, स्वाभाविक स्वरूप समाप्त हो गया तभी ये विकट समस्यायें हमारे सामने उत्पन्न हुई हैं। इन्हें हल करने के लिए समाज में स्वाभाविक शक्ति का निर्माण करना अत्यावश्यक है। संघ का कार्य तभी पूर्ण होगा जब समाज में स्वाभाविक सामर्थ्य के निर्माण की परम्परा बन जायेगी। इंगलैण्ड में यह सामर्थ्य एक परम्परा से—माँ के दूध के साथ चलता आ रहा है। वहाँ नाटकों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, सिनेमा, शिक्षा आदि के सभी माध्यमों से सबको एक ही प्रकार के संस्कारों में ढाला जाता है। योरुप के देशों में 'औद्योगिक क्रान्ति हुई, अमरीका आदि देशों में कालोनाईजेशन, हुआ, परन्तु उन्होंने अपनी आंतरिक शक्ति को सदैव बनाये रखा। इंगलैण्ड में जिस क्लाइव को गुण्डा माना जाता है और पिण्ड छुडाने के लिए उसे भारत भेजा गया था वह यहाँ 'अंग्रेजी साम्राज्य का संस्थापक' बन गया। जिन देशों में माँ के दूध के साथ संस्कार मिलते है वहाँ क्लाइव जैसा गुण्डा भी देश के लिए बहुत उपयोगी बन जाता है। अत्यधिक विलासिता का जीवन बिताने वाले इंगलैण्ड में भी ऐसा आर्दश केवल इसलिए उपस्थित हो सका कि उन्हें देशभक्ति का उत्कट संस्कार स्वाभाविक रूप से मिलता रहता है।

आज भारत में इससे भिन्न स्थिति है। यहाँ का सामान्य व्यक्ति ऐसा नहीं है। यहाँ चरित्र के सम्बन्ध में भी एक विचित्र कल्पना बनायी गई है। समाज और राष्ट्र का विचार तथा इसके लिए अपना सब कुछ अर्पण करने की सिद्धता भी चरित्र का प्रमुख अंग है। वाटरलू के युद्ध में नेपोलियन पर इंगलैण्ड की विजय के बारे में ऐसा कहा गया है कि "(The Battle of Watterloo was won on the playground of Eton" (वाटरलू का युद्ध ईटन के खेल के मैदानों में जीता गया था)। इसके लिए वाल्यकाल में माँ का दूध,

पिता की शिक्षा, खेल के मैदान पाठशालाओं आदि सभी ओर से संस्कार निर्माण करने की परम्परा उत्पन्न होनी चाहिए। जब तक ऐसा समाज तैयार नहीं होता तब तक हमारे देश में संघ जैसी विशिष्ट संस्था के विशिष्ट प्रयासों की आवश्यकता है। दैनन्दिन संघ शाखा की पद्धति इसी लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए है। जन–जागृति एवं ज्ञान–दान का कार्य शिथिल हो गया है। हजारों वर्षों से समाज इसी दुरवस्था में पड़ा है। छिन्न–विच्छिन समाज को 'स्वाभाविक अवस्था' में लाने के लिए कोई निश्चित अवधि निर्धारित नहीं की जा सकती।

हमारा कार्य अत्यन्त आवश्यक है अतः इसे करना ही है। इस कार्य में दो पीढ़ी लग चुकी है, कितनी और लगेंगी यह सोचना अपना विषय नहीं हमें तो निरन्तर कार्य करते जाना है। अन्य योजनायें पूरक हैं अपना कार्य मुख्य है, आधारभूत है। संघ की कल्पना यही है कि एक ऐसा समाज जीवन उत्पन्न हो जिसका जनसामान्य सामजाभिमुख तथा स्वाभाविक एवं सहज सामर्थ्यवान बनकर अपने समाज का पोषण स्वतः स्वेच्छापूर्वक सतत् करता जाय। तात्कालिक समस्याओं के सम्बन्ध में संघ की भूमिका यही है कि अपनी नित्य सिद्ध शक्ति के आधार पर स्वाभाविक रीति से जितनी मार्यादा में हम अपने समाज को साथ ले जा सकते हैं उतनी मात्रा में समस्या को हल करने का प्रयास करना चाहिए। जहाँ कहीं ऐसी स्थिति आती है 'वहाँ लोगों की माँग यही होती है है कि संघ सारी की सारी शक्ति वहीं झोंक दे। उन्हें लगता है कि इस संगठन को खड़ा किसलिए किया गया है? पूरी शक्ति लगाकर न किया गया तो वे खत्म हो जायेंगे। इस सम्बन्ध में अपनी कल्पना स्पष्ट रहनी चाहिए। जो भी समस्या उठती है उसका स्वाभाविक रीति से, जितनी मात्रा में निराकरण करने की अपनी शक्ति है, उतनी मात्रा में ही उसका हल हो सकता है। समाज के घटकों को अपने साथ लेकर यह शक्ति और बढ़ानी चाहिए।

अतः समीचीन यही है कि काम इस प्रकार करेगे कि संस्था का अस्तित्व बचा रहे। प्रभावी अस्तित्व बना रहने से समाज का ही हित है। संघ ने जो लक्ष्य सामने रखा है उसे

प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहने की अतीव आवश्यकता है। जो तात्कालिक प्रश्न सम्मुख आते हैं उनके निराकरण में कितनी शक्ति लगानी चाहिए इसका योग्य विचार करना ही सही दृष्टिकोंण है। तात्कालिक समस्याओं के प्रति संघ का दृष्टिकोण यही है कि संघ एक नित्य सिद्ध शक्ति है। अन्ततोगत्वा जो 'लक्ष्य' हमें प्राप्त करना है, उसके लिए संघ का अस्तित्व बनाये रखना, उसे नित्य शक्ति सम्पन्न बनाते जाना अनिवार्य है। इससे मन में यह भाव कदापि नहीं उत्पन्न होना चाहिए कि यह बात संस्थागत प्रेमवश या जान–बचाने के लिए है। वास्तव में सम्पूर्ण भविष्य को आँखों के सामने रखने की आवश्यकता है। संघ का अस्तित्व बचाये रखने हेतु समय–समय पर तरह–तरह की नीति (स्ट्रेटेजी) अपनानी पड़ी है। भविष्य में भी अनेक प्रसंग आ सकते है। 1939 में डाक्टर श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने नागपुर में संघ के कुछ कार्यक्रम देखे। घोष के साथ पथसंचलन, गणवेशधारी स्वयंसेवकों की परेड, लाठी चलाने का प्रशिक्षण देखकर उन्होंने पहला प्रश्न डाक्टर जी से पूछा था कि बाकी जो प्रश्न हैं ये तो हैं ही परन्तु संघ ने ये जो विभिन्न कार्यक्रम चलाये हैं अंग्रेज सरकार ने उन पर प्रतिबन्ध क्यों नहीं लगाया? डा0 मुखर्जी बंगाल में यह देख चुके थे कि यदि कहीं चार लोग भी एकत्र होते थे तो सरकार उनके पीछे पड़ जाती थी फिर इस प्रकार का संगठन कैसे खड़ा हो गया? वैसे तो यह साधारण सी बात थी किन्तु सच्चाई यही है कि उस समय भी समस्यायें आयीं, संकट आये परन्तु संघ ने समयानुकूल रीति–नीति अपनाकर अपना अस्तित्व बनाये रखा। छोटी–छोटी बातों पर ध्यान देकर सम्पर्क क्षेत्र बढ़ाया गया। सरकार को एक–एक बात हजम होती गयी। संघ के सम्बन्ध में सरकार के पास जो सूचनायें जाती थीं उनके अनुसार संघ को किस प्रकार चलाते रहना यह डाक्टर जी तथा संघ के अन्य कार्यकर्ता जानते थे। तात्कालिक समस्यायें आने पर वर्धमान् शक्ति के साथ संघ को बनाये रखना यह भी एक जवाब है। ऊँची–ऊँची महत्वाकांक्षाओं के कारण इच्छायें यही होती हैं कि सब कुछ संघ के माध्यम से और जल्दी से जल्दी होना चाहिए। ध्येयवादी लोंगों में ऐसे विचार आने स्वाभाविक हैं।

समाज में जितनी अधिक मात्रा में अपनी शक्ति रहेगी समस्या उतनी ही सरलता से हल होगी। तात्कालिक समस्याओं में कभी पूरी शक्ति लगायेंगे ही नहीं ऐसी कोई 'प्रतिज्ञा' संघ ने नहीं की हुई है। फिर भी अपना 'अन्तिम लक्ष्य' इस दयनीय समाज का परिवर्तन कर उसे एक जीवमान, स्वाभाविक स्वरूप प्राप्त कराने का है। अतः इसकी पूर्ति होने तक संघ का अस्तित्व बनाये रखना है।

1939 में एक बड़ा महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। यद्यपि ब्रिटेन विजयी हो गया था किन्तु युद्ध के कारण उसकी कमर इतनी टूठ गयी कि उसे यहाँ से जाने का निर्णय करना पड़ा। अंग्रेजी को निकालने जैसा ही एक आध अन्य कोई प्रश्न यदि आता है तो उसके समाधान के लिए संघ को पूरी शक्ति लगाने में कोई हिचक नहीं होगी। संघ की शक्ति लगाकर भी यश प्राप्त करना होगा। परन्तु कहाँ कितनी शक्ति लगाना, कहाँ नहीं लगाना, इसका निर्णय नेतृत्व पर छोड़ देना चाहिए।

अपने हिन्दू समाज का इतिहास बहुत बड़ा है। छोटे–बड़े ऐसे अनेक काल–खण्ड हुए हैं जिनमें पूरे समाज ने सामाजिक आधार पर अनुकूल तथा उपयुक्त स्वभाव, व्यवहार तथा तेज प्रकट किया है। आज भी जब तक इस सम्पूर्ण समाज का स्वभाव बदलता नहीं तब तक समाज के सामने और कुछ कार्य नहीं है। समाज के सामान्य मनुष्य में ऐसा स्वभाव उत्पन्न होने से ही समाज को सामर्थ्य प्राप्त होता है। इस सामर्थ्य के जागरण से ही समाज को अभीष्ट स्थिति प्राप्त होती। संघ का यह विचार नहीं है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वारा ही सदा समाज शक्तिशाली रहेगा। संघ तो एक प्रयास है जो समाज में परिवर्तन लाना चाहता है। अन्य बातों का ध्यान करते हुए इस समय यही करते जाना है और कुछ नहीं। शक्ति के साथ अपना प्रभावी अस्तित्व बनाये रखना है। तात्कालिक समस्याओं के लिए यह एक उत्तर होगा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डाक्टर हेडगेवार जी ने विभिन्न प्रकार के कार्यों तथा संस्थाओं में बहुत अधिक कार्य किया था। सार्वजनिक कार्यों के सम्बन्ध में

उनका अनुभव अद्वितीय था। इन्हीं अनुभवों के आधार पर धीरे–धीरे संघ की कार्य–पद्धति का निर्माण हुआ। पहले से कोई बनी बनाई कार्य पद्धति संघ में नहीं थी। बहुत धीरे–धीरे इसका विकास हुआ है। शुरू में केवल यही छोटी सी बात थी कि संघ शाखा में बिना खण्ड डाले नित्य जाना। संघ का नाम–राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, यह भी बाद में रखा गया। दैनिक शाखा का स्वरूप तथा संघ के अन्य कार्यक्रमों की रचना बाद में ही विकसित होती गयी। समय–समय पर आवश्यकता के अनुसार लोगों को जैसा सूझा, परिवर्तन होते गए। पुरानी प्रार्थना से वर्तमान प्रार्थना भी एकदम अलग है। नयी–नयी आवयकताओं के आधार पर संघ की आज की कार्य–पद्धति बनती चली गयी। इसके दो प्रमुख कारण है–एक तो डाक्टर जी का विभिन्न क्षेत्रों और कार्यों का स्वयं का अनुभव तथा दूसरा, संघ के लक्ष्य की पूर्ति के लिए समय–समय पर लगने वाली आवश्यकताएं। संघ एक तो हिन्दू समाज में एक विशिष्ट प्रकार का परिवर्तन लाना चाहता है तथा दूसरे नित्य सिद्धशक्ति के रूप में इस समाज में प्रतिष्ठित होना चाहता है। इन दोनों भूमिकाओं को सामने रखकर सम्पूर्ण कार्य–पद्धति की रचना की गयी। नित्य सिद्ध–शक्ति के सम्बन्ध में यह विचारणीय प्रश्न है कि इसका स्वरूप कैसा हो? संघ शुरू होने पर जब आपस में विचार हुए, योजनाएं बनीं तो यह स्पष्ट मत व्यक्त किया गया कि देश भर में संघ के द्वारा समाज की जिस प्रकार की नित्य सिद्ध शक्ति उत्पन्न करना चाहते है, यह चार दिन, पन्द्रह दिन, में एक जगह आकर एकत्र होने से नहीं हो सकती। उसके लिए तो रोजाना ही आना पड़ेगा। विचार विमर्श के द्वारा दैनन्दिन एकत्रीकरण की भूमिका आयी। क्योंकि इतनी बड़ी नित्यसिद्ध शक्ति के निर्माण तथा अभीष्ट सामाजिक परिवर्तन के लिए कभी–कभी एकत्र होने से या सदस्यता फार्म भरने से कुछ नहीं हो सकता। किसी जागरूक, शिक्षित, राष्ट्रभाव से ओत–प्रोत समाज में भले ही कभी–कभी कुछ करने से काम चल जाये परन्तु जैसा अपना समाज है, वहाँ व्यक्ति–व्यक्ति के योग्य निर्माण के लिए बहुत अधिक श्रम करना पड़ेगा। इसके लिए आवश्यक है कि रोजाना इकट्ठा हुआ जाय।

दैनिक एकत्रीकरण के बाद यह विचार शुरू हुआ कि अपने अभीष्ट लक्ष्य के लिए किस प्रकार के कार्यक्रम होने चाहिए? यह विचार हुआ कि किसी अखाड़े में चलेंगे, वहाँ कुछ व्यायाम भी होगा, लाठी–वाठी की शिक्षा भी मिलेगी। उन दिनों नागपुर के आसपास अखाड़ों का वायुमण्डल भी था। लोगों ने अखाड़ों में जाना शुरू कर दिया। नागपुर में मोहित संघ–स्थान के पास दीवार पर "नागपुर व्यायामशाला" लिखा है। उसके प्रमुख डाक्टर जी के बड़े मित्र थे, अतः वहीं व्यायाम करना शुरू हुआ। कुछ दिनों बाद व्यायामशाला के दो गुटों में मार पीट हो गयी। कई लोगों से सर फट गए। स्वयंसेवकों ने विचार किया कि हम तो संगठन करने वाले है, अगर हम सब वहाँ जाते रहे तो लोगों के मन में संघ के भाव कैसे जगा सकेंगे? अतः विचार हुआ कि अपना संघ–स्थान चाहिए। इस प्रकार अपना संघ–स्थान, अपने कार्यक्रम की व्यवस्था हुई। फिर चर्चा और बोद्धिक की कल्पना आयी। पहले भाषण के बाद, संघ में भी तालियां बजायी जाती थीं। लेकिन स्वयंसेवकों ने विचार किया कि अपने यहाँ भाषण नहीं होते, कोई सार्वजनिक सभा नहीं होती। यहाँ तो बौद्धिक–वर्ग होते है जिनमें किसी विषय पर विचार रखना होता है। चर्चा में भी किसी निश्चित विषय पर चर्चा होती है। अतः अगर बौद्धिक वर्ग में या चर्चा में कोई बड़ा भाषण हो गया तो ताली बजाने का यह मामला नहीं है।

संघ के द्वारा जैसा कार्य करना है, स्वयंसेवकों में जिस प्रकार के गुण निर्माण करने है, समाज में जैसा परिवर्तन लाना है, उन सबका विचार करके जैसे–जैसे लोगों की संख्या बढ़ी, ग्रहण करने की शक्ति का विकास हुआ, धीरे–धीरे संघ की कार्य–पद्धति विकसित होती गयी। आज यह इतनी प्रचलित हो गयी है कि इनमें कोई विशेष बात नहीं लगती। आज 'गुरूदक्षिणा' अपने को एक सामान्य बात लगती है परन्तु अन्य संस्थाओं की तरह प्रारम्भ में चन्दा लाने हेतु डाक्टर साहब भी कार्यकर्ताओं की इधर–उधर भेजते थे तथा स्वयं भी जाते थे। किसी से मासिक तथा किसी से वार्षिक चन्दा प्राप्त होता था। उसी से खर्चा निकल जाता था। लेकिन इस पद्धति में भी आगे चलकर परिवर्तन आया।

स्वयंसेवकों ने जब यह विचार किया कि संघ के ऐसे स्वयेसेवक रहेंगे, समाज में ऐसा परिवर्तन लायेंगे, ऐसी नित्य सिद्ध शक्ति जागएंगे, इतना सामर्थ्य उत्पन्न करेंगे इस लम्बी छलांगों के कारण आत्म–समर्पण की भावना का विचार सामने आया। उससे ही गुरू–दक्षिणा की कल्पना उत्पन्न हुई। शुरू में स्वयंसेवक पाँच, दस, बीस रुपये की गुरुदक्षिणा नहीं कर पाते थे किन्तु वायुमण्डल बनता गया। साल भर धन–संग्रह करने का भाव आया। इस प्रकार के विचार और आत्म समर्पण के भाव के कारण सौ, दौ सौ और हजार तक गुरु दक्षिणा करना सम्भव हो गया।

संघ में बैठकों का बड़ा महत्व है। कोई भी विचार बड़े जोश से रख देने से ही तुरन्त वह सब के गले उतर जाता हो,–ऐसा आवश्यक नहीं है। यह तो मनोवैज्ञानिक बात है कि दस सबल लोगों के साथ चार कमजोर लोगों की भी हिम्मत बढ़ जाती है, वे बड़े–बड़े काम कर जाते है। संघ में आज जो कुछ भी मिलता है उस सबके पीछे यही सब पूर्व भूमिका रही है। संघ की कार्य पद्धति में सर्वाधिक महत्व तत्वज्ञान, ध्येयनिष्ठा (आइडियोलोजिकल अटैचमेण्ट) को ही दिया गया है। समाज में हम नित्यसिद्ध शक्ति चाहते है, समाज में परिवर्तन चाहेते हैं, कार्य के अनुरूप कार्यकर्ता चाहते हैं–इन सब विचारों को सभी स्वयंसेवकों को ठीक प्रकार से समझ लेना चाहिए। बौद्धिक वर्ग, चर्चा आदि के विभिन्न कार्यक्रमों का हेतु ही 'ध्येयनिष्ठा' का जागरण करना है। सारे कार्यों का यही आधार है। ध्येयनिष्ठा के साथ ही दो और बातों का संघ में आग्रह किया गया है–एक तो 'संस्थागत आत्मीयता' (इन्सटीट्यूशनल अटैचमेण्ट) तथा दूसरा 'व्यक्तिगत आत्मीयता' (पर्सनल अटैचमेण्ट)। आजकल की विशिष्ट परिस्थितियों में संघ तरह–तरह के कार्य अपनी प्रेरणा से ग्रहण कर रहा है अपनी–अपनी इच्छा और प्रेरणा से संघ के स्वयंसेवक अनेक कार्य खड़े कर रहे हैं। छोटी आयु में वित्तेषणा, लोकेषणा, शारीरिक मोह आदि का कुछ पता नहीं रहता परन्तु जैसे–जैसे आयु बढ़ती है, आदमी जवान होता है, तरह–तरह के प्रश्न सामने खड़े हो जाते हैं। संघ के स्वयंसेवक इस मोह, काँचनादि को जितना हल्केपन से

लेते हैं वास्तव में उतने हल्केपन से लेने वाली ये वस्तुएं नही हैं। एक लोक विलक्षण कार्य होने के कारण संघ में अनुशासन, पारस्परिक आत्मीयता आदि का जो श्रेष्ठ वातावरण है, अन्य क्षेत्रों में वैसा नहीं रहता। अपनी कार्य–पद्धति में इस बात पर अत्यधिक आग्रह रहा कि स्वयंसेवकों का अपना व्यवहार बड़े प्रेम और निकटता का हो। अन्य संस्थाओं में ऐसा कोई आग्रह नहीं रहता। हर प्रकार से घनिष्ट वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करते रहते थे। इन सब बातों के साथ–साथ संस्था से प्रेम भी आवश्यक है।

जब नागपुर में संघ के शिविर में महार (हरिजन) लोग आये तब ऐसे भी कुछ लोग निकले जिन्होंने उनके साथ बैठकर भोजन करने से मना कर दिया। इसके कारण दो घण्टे तक भोजन ही बन्द रहा था। जितनी आसानी से आज संघ में लोग सब बातें कर सकते हैं, उतनी आसानी शुरू में नहीं थी। जाति–व्यवस्था की कट्टता, खान–पान का विचार आदि की छोटी–छोटी बातों से काफी कष्ट होता रहा। ध्येयनिष्ठा के साथ यदि संस्थागत प्रेम भी रहता है तो कुछ मात्रा में तनाव आने के बाद भी यही विचार रहता है कि मैं इस संस्था से दूर नहीं होऊँगा। इसलिए अपनी कार्यपद्धति में इन दोनों बातों का विशिष्ट प्रकार का आग्रह रखा गया है। अपने जो कार्यकर्ता इधर–उधर बिछुड़ गए होगें, उनका इसी संस्थागत और व्यक्तिगत प्रेम के कारण साल, दो साल दूर जाना भी कठिन हो गया है। कटुता निर्माण करना तो सम्भव ही नहीं हो सका।

हरेक बात में अच्छाई होती है तो कुछ बुराई भी होती है। यदि अग्नि है तो उसके साथ कुछ धुँआ भी निकलता है। जैसे अच्छे–अच्छे 'टानिक्स' में नब्बे प्रतिशत गुण रहते हैं तो पाँच प्रतिशत दोष भी हो सकते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में जाकर डाक्टर साहब ने ये सब अनुभव किए थे। इस कारण उन्होंने व्यक्तिशः प्रेम और आत्मीयता बढ़ाने पर बल दिया। अपनी कार्य–पद्धति में इस बात पर बहुत बल दिया गया कि स्वयंसेवक एक दूसरे के घर तक सम्बन्ध स्थापित करें। हो सकता है कि आजकल अपने कार्य की विशालता और स्वयंसेवकों के 'रुटीन माइंडेड' हो जाने के कारण ऐसा लगे कि इसकी क्या आवश्यकता

है? यदि हमने इन आत्यन्तिक परस्पर सम्बन्धों की ओर दुर्लक्ष्य कर दिया तो छोटी–मोटी बातों के कारण जो कोई प्रश्न उठेगा तो इस पर नियंत्रण नहीं किया जा सकेगा। इसी कारण अपनी कार्यपद्धति में गट पद्धति बनायी गयी। गट के प्रत्येक स्वयंसेवक से सम्बन्ध, उनके परिवार तक पहुँच, एक स्वयंसेवक के परिवार से दूसरे के परिवार से सम्बन्ध निर्माण होने चाहिए। संघ के प्रारम्भिक दिनों में इस प्रकार के सम्बन्ध बनाये गये थे। आग्रह पूर्वक इसके लिए प्रयास किये गये थे। यह परम्परा बाकी सब लोगों के लिए चलाते रहना आवश्यक है।

घर–घर से सम्बन्ध स्थापित करना अपने डाक्टर साहब का स्वभाव ही था। ध्येय के प्रति लगन–यह तो अपने कार्य का आधार है ही परन्तु आपस के इतने प्रेम सम्बन्ध भी आवश्यक हैं कि संघ और स्वयेसेवक का सम्पर्क छोड़ने में प्राण त्यागने सरीखा कष्ट हो। इतनी मात्रा में स्वयंसेवकों में सम्बन्ध उत्पन्न होने चाहिए। अपनी कार्यपद्धति में इन सब बातों का जो निर्माण किया गया उसी के कारण आज हजारों शाखाएं तथा लाखों स्वयंसेवक हो गए हैं। अन्य संस्थाओं ने अपनी–अपनी कार्य पद्धति से काम किया है, परन्तु अपनी दृष्टि से नित्यसिद्ध शक्ति का जागरण केवल अपनी कार्य पद्धति और अपने संघ कार्य से ही हुआ है। प्रारम्भ में केवल सायं शाखाएं ही थीं। जब प्रौढ़ स्वयंसेवक बढ़े और ऐसा लगने लगा कि उनके लिए रोज–रोज सायंकाल शाखा में आ सकना कठिन है तो प्रभात शाखाएं शुरू हुई। उसके बाद रात्रि–शाखाएं शुरू हुईं। यह सब इस कारण हुआ कि स्वयंसेवकों को शाखा में नित्य प्रति आना चाहिए। इसी के लिए ये दैनिक शाखाएं, संघ–शिक्षावर्ग, गुरू दक्षिणा तथा अन्य भिन्न–भिन्न कार्यक्रमों की योजना रहती हैं कार्यक्रमों का यह जो ढांचा तैयार किया गया है, उसकी महत्ता है, आवश्यकता भी। इसीलिए लोग कहते हैं कि संघ का वायुमण्डल विद्युत्य (इलेक्ट्रीफाइड) है। जो वहाँ जाता है, पूरा–पूरा संघ का बन जाता है। संघ में इतने प्रभावी संस्कार मिलने चाहिए कि उसमें अन्य कोई विपरीत परिवर्तन आ ही न सकें। यह निर्माण इसी कार्यपद्धति से हो सका है।

अनेक ऐसे बड़े अधिकारी, नेतागण मिलेंगे जिन्होंने संघ के कार्यक्रमों में आने के बाद स्पष्ट रूप से कहा है कि बड़े–बड़े सरकारी अधिकारियों के कार्यक्रमों में भी लोग ऐसे नहीं खड़े होते जैसे संघ में होते है। संघ का जो व्यवहार है। उसका सब ओर सम्मान होता है। इसी तरह समाज में परिवर्तन आते है।

अपने देश के बारे में बिचार करते समय यह आवश्यक कि समाज के एक बड़े भाग को हम संघ–स्थान पर लायें, उस पर बहुत प्रभावी संस्कार डालें ताकि वे जाकर बाकी समाज को प्रभावित कर सकें। यदि बाकी लोग उससे प्रभावित नहीं होते तो यह अपनी कमी है। संघस्थान का वायुमण्डल बाहर समाज में पहुँचना चाहिए,। यदि बड़ी मात्रा में अपने संस्कारयुक्त स्वयंसेवक रहें तो समाज में संस्कार पहुँचे बिना रहेंगे नहीं। सम्पूर्ण समाज को संस्कारित करने का इसके अतिरिक्त और कोई तरीका ही नहीं है। कुछ साहित्य बाँटने या बौद्धिक वर्गों से यह कार्य पूरा नहीं हो सकता। संघ–स्थान पर खड़ा होने वाल मॉडेल जितना बड़ा होगा, समाज में जितना सक्रिय होगा उतना ही भाव समाज ग्रहण करेगा।

पंजाब में इसका प्रत्यक्ष अनुभव आ चुका है। 1947 में मारपीट के समय जब संघ के पचास स्वयंसेवक खड़े होते थे तो समाज के भी पचासों लोग उनके साथ खड़े हो जाते थे। इसलिए विशिष्ट राष्ट्रभाव तथा संस्कारों से युक्त, समय पर डाक्टर खड़े रहने वाले लोगों की संख्या यदि काफी मात्रा में रहेगी तो समाज के शेष घटकों पर प्रभाव हुए बिना रहेगा नहीं। संघ स्थान पर जो भाव स्वयंसेवकों में निर्माण होते हैं वे समाज में जायेंगे ही। संघ के जो दैनिक कार्यक्रम है, शाखा की चर्चा, वहाँ के गणवेश, संचलन, बाकी के कार्यक्रम, आपसी सम्बन्धों का स्वरूप–इन सबके आधार पर एक नित्यसिद्ध शक्ति खड़ी होती है जो किसी भी क्षण समाज की समस्याओं के निराकरण हेतु काम आ सकती है। संघ की कार्यपद्धति से यह जो शक्ति खड़ी होती है उसके प्रभाव के कारण समाज में वांच्छित परिवर्तन अवश्य आयेगा। यह परिवर्तन ही समाज का स्वाभाविक सामर्थ्य है। जब

सारे हिन्दुस्थान में संघ शाखाओं का बड़ी संख्या में जाल फैल जायेगा तो समाज का एक बहुत बड़ा भाग उनमें उपस्थित होगा और उसके द्वारा जिस प्रकार का हम समाज में परिवर्तन लाना चाहते है, उस प्रकार का परिवर्तन ला सकेंगे। संघ शाखा या संघ स्थान पर एक प्रकार से आधार है–संस्कार जागरण का श्री गणेश है। संघ तो सभी क्षेत्रों में छा जाना चाहता है। संघ सब कुछ करेगा इसका अर्थ यही था कि पर्याप्त शक्ति का जागरण कर संघ इस सम्पूर्ण समाज में योग्य परिवर्तन लायेगा। यदि शुरू में इस कार्य को 'शाखा–केन्द्रित' न कहा गया होता तो विदेशी सरकार उसे चलने न देती। वास्तविकता यह थी कि सारी परिस्थितियों का विचार करके ही सब क्षेत्रों से एक प्रकार से हटकर संघ स्थान पर ध्यान केन्द्रित किया गया। यदि इतना संघ केन्द्रित आग्रह उस समय न होता तो आज संघ मिलता ही नहीं। समाज के सभी अंगो और क्षेत्रों में अनुकूल परिवर्तन लाने के लिए ही वास्तव में संघ का जन्म हुआ है। इसलिए संघ के स्वयंसेवकों को हर क्षेत्र में छा जाना चाहिए।

संघ स्थान, संघशाखा तो आधार मात्र है–बिलकुल प्राथमिक वस्तु है। इसके आधार पर हमें सारे समाज में व्याप्त हो जाना है। आज की परिस्थितियों में सब क्षेत्रों के बारे में सम्यक् दृष्टि से सोचना अनिवार्य हो गया है। संघ और समाज एक रूप हो जाना चाहिए। यह तो मनोवैज्ञानिक ही है कि एक विशिष्ट–प्रकार के लोग यदि बहुत बड़ी मात्रा में सारे समाज में फैल जायेंगे तो वे सारे गुण समाज में भी फैल जायेंगे। समाज में परिवर्तन लाने का यह अपना ही ढंग है।

संघ यथास्थितिवादी नहीं उदाहरण के लिए ही संघ के कुछ स्वयंसेवक राजनीतिक क्षेत्र में गये तो लोगों की उनके बारे में यही धारणा उत्पन्न हुई कि ये लोग बड़े अच्छे हैं, चरित्रवान हैं, बड़े राष्ट्रवादी हैं। इस धारणा का केवल एक ही कारण है कि अपने लोगों के जो भाषण होते हैं उनमें प्राचीन, परम्परा, संस्कृति, अध्यात्मवाद, धर्म आदि शब्दों का प्रयोग रहता है। यद्यपि इसमें कोई गलती या दोष नहीं है। आजकल के जो अत्यधिक

आधुनिक लोग हैं, फिर चाहे वे कम्युनिस्ट हों या सोशलिस्ट या कांग्रेस वाले ही हों, सभी लोग अपने भाषणों में एक विशिष्ट भाषा, विशिष्ट शब्दों का प्रयोग करते हैं। अपने लोग भी उसी प्रकार अपनी विशिष्ट भाषा का प्रयोग करते है। उसमें जो रूढ़ पद्धति रहती है उसके कारण अन्यान्य लोगों कों भ्रम हो जाते है।

हमें आज ऐसा व्यवहार करना होगा जिससे ये भ्रानितयाँ दूर हों। बाकी लोगों को लगे कि संघ के लोग पुरानी बातों का अभिमान और उसकी उचित मर्यादा का विचार रखते हुए भी आज जो चारों ओर परिस्थिति है–युग–प्रवाह है–सामयिक प्रश्न और समस्यायें हैं उनकी भी ठीक–ठीक और सही जानकारी रखते हैं। संघ के स्वयंसेवक को इस दृष्टिकोण से विचार नहीं करना चाहिए कि हिन्दुओं की जो पुरानी परम्परायें है उनमें तो सब आ ही गया है। इसलिए भौतिकता (मेटेरियलिज्म) के बारे में क्या सोचें? यदि स्वयंसेवकों ने किसी कारण ऐसा विचार किया तो फिर दूसरे लोगों पर संघ के द्वारा हम यह प्रभुत्व नहीं उत्पन्न कर सकते जो करना चाहते हैं। आज जो स्थिति है, वैसी ही रहनी चाहिए इस प्रकार का यथास्थितिवादी संघ है ही नहीं। दासता के काल में हमारे दृष्टिकोण बहुत संकुचित हो गये इस कारण ही समाज में विचार करने का ढंग भी संकुचित हो गया। यह मत खाओं, इससे शादी मत करो आदि संकुचित विचारों के कारण एक प्रकार से अपने समाज के लिए पराजय और छोटे होने का समय आ गया। पुरानी परम्पराओं का अभिमान करने का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि यह जो बीच के काल में विकृत जीवन आ गया उसका भी हमें अभिमान है।

भौतिकता और उच्च जीवन स्तर के प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करने पर लोग हमें या तो पुरातनपंथी कहेंगे या यह कहेंगे कि आज के होने वाले परिवर्तनों की इन्हें कोई जानकारी नहीं है। अतः पुरानी व्यवस्थाओं और विचारों का समुचित चिन्तन आवश्यक है। पुरांनी जितनी बातें हैं उनका केवल कोरा अभिमान रखना ठीक नहीं। राष्ट्रपुरुष, आने वाले काल का भी, विचार करने वाला होता है। इस कारण उसके समय में जो स्थिति होती

है उसे ही चलते रहने नहीं देता। कुछ समय पहले सावरकर जी की दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उनके एक अध्याय में लिखा है कि इस्लाम मतानुयायियों ने जब भारत का काफी भाग जीत लिया, कई मन्दिरों को नष्ट–भ्रष्ट कर मस्जिदें बनवाई और लोगों को भ्रष्ट किया। गोमांस भक्षण कराकर यहाँ के हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बना लिया। इसके बाद कहते हैं कि पेशवा लोग उन्हें पराजित कर काबुल तक बढ़ते चले गये। लौटने के बाद उन्हें चाहिए था कि जो हिन्दू जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये थे उन सब पर गोमूत्र डालकर पुनः हिन्दु बनाते परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। मुसलमानों ने जिन मन्दिरों को तोड़कर मस्जिदें बनबाई थीं उन्हें दुबारा मन्दिर बनवाया। युद्ध में तो वे जीत गये लेकिन जो हिन्दु मुसलमान बनाये गये थे वे मुसलमान ही बने रहे। आज यह जो पाकिस्तान का निर्माण हुआ है वह इसी भूल का परिणाम है। अपने अपने समाज के धर्म परिवर्तन बन्धुओं को पुनः हिन्दू धर्म में न लाने का ही यह प्रत्यक्ष दुष्परिणाम है। गाँवों में रात के समय कहीं पादरियों ने कुएं में डबलरोटी के टुकड़े डाल दिए और सुबह जब लोगों ने उस कुएं का पानी पी लिया तो उन ईसाइयों ने कहा कि पानी पीने वाले सभी लोग ईसाई हो गये क्योंकि हमने रात को कुएं में "ब्रेड" डाल दी थी। जिन लोगों को जबरदस्ती मुसलमान बंनाया गया था उनमें से ही भोपाला जाति बनी। कश्मीर में हिन्दुओं को बहुत बड़ी संख्या में मुसलमान बनाया गया। वहाँ के राजा ने जब कश्मीरी पण्डितों से उन सब को दुबारा हिन्दू करने को कहा तो उन पण्डितों ने यह कहकर उन्हें हिन्दु धर्म में वापस लाने से इनकार कर दिया कि शास्त्रों में दुबारा हिन्दु करने की कोई व्यवस्था नहीं है। उन कश्मीरी ब्राह्मणों ने यहाँ तक कहा कि यदि आप इन सबको पुनः हिन्दु बनाने की घोषणा कर देंगे तो हम सब ब्राह्मण आत्महत्या कर लेंगे जिससे आपको ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। उस समय सोचने का ढंग इस प्रकार का था। किन्तु संघ के स्वयंसेवक इस प्रकार के पुरातनपंथी नहीं होते। जिस हिन्दु समाज के लोग छोटे–छोटे जहाजों में बैठकर जावा और सुमात्रा गये, जिन्होंने "कृण्वन्तो विश्वमर्यम्" यानी हिन्दुस्थान से बाहर निकलकर 'हम

अन्य लोगों को भी आर्य बनायेंगे' की घोषणा की उस समाज की यह कैसी हास्यापास्पद स्थिति निर्माण हो गयी।

जब भारत पर हूणों और शकों का आक्रमण हुआ तो इस समाज ने उन्हें हजम कर लिया। हूण और शक केवल युद्ध करके राजा बनने की आकांक्षा रखते थे। मुसलमानों की तरह अपना धर्म और संस्कृति थोपने का प्रयत्न करने वाले वे थे नहीं। उनके यहाँ शासक बनने के बाद भी चूंकि यहाँ की धर्म और संस्कृति उनसे कहीं अच्छी और श्रेष्ठ थी, उन दिनों हमारे समाज में शक्ति भी थी इस कारण उन्हें पचा लिया गया। मुसलमानों के काल में वे कहते थे कि बाकी लोगों को जबरदस्ती मुसलमान बनाओं जबकि हिन्दु समाज के लोग कहते थे कि एक बार जो मुसलमान हो गया वह हमेशा के लिए हो गया। मुसलमानों और अंग्रेजों ने जो जाति–भेद जगाये, छुआछूत–खानपान की समस्यायें खड़ी की उनके लिए उनको दोष देते रहने से कुछ नहीं होगा इसकी जिम्मेदारी हिन्दू समाज की भी है। हमारे जो कुछ भी दोष रहे होंगे, कमजोरी थी उसका उन्होंने दुरुपोग किया। लेकिन वर्तमान स्थिति में हमें इस सम्बन्ध में ठीक ढंग से चिन्तन करना ही होगा। अब यह असम्भव–सा है कि भंगी की पीढ़ी, पींढी दर पीढ़ी इसी प्रकार समाज के मल मूत्र की टोकरियाँ उठाती रहे या कोई भंगी यह सोंचे कि समाज का मैला आखिर किसी न किसी को तो उठाना ही है, मेरी दस पीढ़ियाँ इसी प्रकार काम करती रही हैं अतः जन्मना मेरी आगे आने वाली पीढ़ी भी इसी प्रकार काम करती रहेगी। दुनियाँ में जो परिवर्तन की शक्तियाँ कार्य कर रही हैं उन सबकी जानकारी तथा उस सबके प्रति सचेत रहने की अतीव आवश्यकता है। संघ वालों तथा संघ के बाहर के लोगों में मौलिक अन्तर यह है कि हम जहाँ भौतिक जीवन का विचार करते हैं वहीं आधिभौतिक जीवन का भी विचार करते हैं क्योंकि केवल भौतिकवादी जीवन ही सब कुछ नहीं है। उसके अतिरिक्त भी एक जीवन है और उसका भी महत्व है। संघ भौतिकता का विचार करते हुये भी आध्यात्मिकता का सूत्र छोड़ना नहीं चाहता। यदि यह सूत्र ही छूट गया तो मनुष्य मनुष्य न रहकर पशु

बन जायेगा। नयी बातों का भी महत्व है, उनके बारे में सोचना होगा। पुरानी बातों के साथ उनका सामंजस्य करना पड़ेगा। हो सकता है कि कुछ बातें छोड़नी भी पड़ें। जो लोग कुछ दे सकते हैं, समाज उन्हीं के साथ जाने वाला हैं। उनके सम्बन्ध में भ्रान्त धारणायें भी निर्माण नहीं होंगी। उन्हीं का प्रभाव होगा। इसे चाहे कोई समाजवाद, साम्यवाद कहे चाहे 'हिन्दु समाजवाद' के नाम का प्रयोग करे। नाम का कोई महत्व नहीं है–महत्व इस बात का है कि लोगों का व्यवहार और आचरण कैसा है किस प्रकार का दृष्टिकोण प्रदर्शित किया जाता है। संघ के स्वयंसेवक भी समाज पर तभी अपनी छाप छोड़ सकेंगे जब वे समाज के अन्य लोगों के साथ वार्ता–चर्चा के दौरान समरस होकर विचार व्यक्त करें। युग की नयी–नयी शक्तियों और उनके साथ होने वाले प्रभाओं को पहचानें। हमें अभिमान है उसं पुराने जमाने का, जब हिन्दुस्थान के लोग जहाजों में बैठकर जावा, सुमात्रा, बाली में जाकर दुनिया को आक्रान्त करते थे। यह जो बीच का काल आया जिसे कूप–मण्डूक काल कहते हैं, उसमें इस अभियान की कड़ी टूट गयी। इसी से भ्रान्त धारणायें पैदा हो गयीं। इन सबका विचार कर, संघ की तात्विक भूमिका, प्राचीन आधार पर स्थापित इस समाज के लिए नवीन नवीन परिस्थितियों में विकास का मार्ग प्रशस्त करने के लिए निर्माण की गई हैं।

देश में जैसे–जैसे संघ कार्य का विस्तार होता गया, वैस–वैसे सब जगह एक जैसा ढांचा (पेटर्न) रखने का विचार किया गया। 'प्रचारक' की कल्पना अयाी। इसके पीछे भी एक लम्बी भूमिका है। देश भर में शाखाओं को संघ कार्य का एक जैसा स्वरूप तभी खड़ा हो सकता है जब उसके लिए कोई व्यवस्था हो। इसके लिए शारीरिक शिक्षा हेतु प्राथमिक शिक्षा वर्ग और संघ शिक्षा वर्ग लगाये जाने लगे। इन शिक्षा वर्गों में भिन्न–भिन्न शाखाओं से स्वयंसेवक आये। उनको एक जैसी संघ शिक्षा दी गयी। उन्होंने अपने–अपने स्थानों पर शाखायें खड़ी की। धीरे–धीरे जब कार्य का और विस्तार हुआ, लोगों ने कार्यकर्ताओं की माँग की। यह करने वाले अनेक लोग हो गये कि हमारे गाँव में एक महीना, दो महीना

के लिए कोई कार्यकर्ता दे दिए जायें तो वहाँ शाखा चल जायेगी। जब चारों ओर से ऐसी माँगें आने लगीं तो डाक्टर साहब ने कुछ लोगों को इधर–उधर गांवों में भेजा। जो कार्यकर्ता बाहर जाते थे, वहाँ के लोग उसके भोजन आदि का प्रबन्ध कर देते थे। इस प्रकार कार्यकत्ताओं को इधर–उधर भेजा जाने लगा।

नागपुर के आस–पास छोटी–मोटी शाखायें थी। उनमें लोग जाने लगे। जो कार्यकर्ता संघ–कार्य के लिए समय निकाल कर बाहर जाते थे उन्हें तब तक प्रचारक या विस्तारक जैसा कोई नाम नहीं दिया जाता था। महाराष्ट्र में काम बढ़ने से लम्बे समय के लिए कार्यकर्ताओं की माँग आने लगी। एक दो महीने का समय देना पर्याप्त नहीं लगता था। इसमें से यह कल्पना निकली कि संघ कार्य के लिए ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो अपनी शिक्षा–दीक्षा पूरी कर नौकरी धंधा करने के बजाय संघ कार्य के लिए अपना समय दें। जब ऐसे स्वयंसेवक बनने लगे तो धीरे–धीरे 'प्रचारक' नाम का स्वसंसेवक वर्ग बनने लगा। शिक्षा समाप्त करने के बाद फिर नागपुर से कोई स्वयंसंवक सांगली गया, कोई पूना गया, कोई बम्बई चला गया। इस प्रकार बाहर जाने की पद्धति प्रचलित हो गयी। जैसे–जैसे इस पद्धति के कारण संघ कार्य खड़ा करने में सफलता मिलने लगी, यह विचार आया कि अगर संघ के कार्य को तेजी से बढ़ाना है तो पूरा समय देकर काम करने वाले प्रशिक्षित स्वयंसेवक, जिन्हें आगे चलकर प्रचारक कहा जाने लगा, अपने पास काफी मात्रा में होने चाहिए। संघ का कार्य बढ़ने के साथ–साथ ऐस स्वयंसेवकों का वर्ग भी बढ़ता गया जो संघ में प्राप्त संस्कारों और प्रेरणा के कारण स्वेच्छा से संघ का कार्य करने के लिए अपना पूरा समय देने को उद्यत हो गये। एसे कार्यकर्ता सारे प्रान्त में फैल गये। आज संघ का जो काम फैला हुआ दिखाई देता है, इतनी शाखायें निर्माण हुई हैं, सभी स्वयंसेवकों के व्यवहार का एक विशिष्ट प्रचार का नमूना चारों ओर उत्पन्न हो सका है यह सब प्रचारक स्वयंसेवकों के प्रयत्नों से हुआ है।

प्रचारक वर्ग संघ का कार्य बढ़ाने वाला तो है ही परन्तु सम्पूर्ण कार्य का मुख्य

आधार समाज का सामान्य व्यक्ति ही है। संघ का वास्तविक आधार वह सामान्य स्वयंसेवक ही है जो समाज के अन्य चार लोगों जैसा व्यवहारिक जीवन निर्वाह करता है। प्रचारकों का जीवन तो एक प्रकार से अस्वाभाविक–सा ही है। संघचालक, कार्यवाह तथा सामान्य जीवन व्यतीत करने वाले जो स्वयंसेवक सब प्रकार के व्यक्तिगत प्रश्न, मोह, ममता, सुख, दुख, काम–धन्धे के खतरे उठाते हुए भी अपने मन में समाज का कार्य करने की आकांक्षा लेकर संघ का कार्य करते है। वे ही संघ के वास्तविक आधार हैं। उन्हीं के द्वारा संघ–कार्य चलाने का प्रयास होना चाहिए। अपना कार्य प्रचारकानुवर्ती नहीं बनाना चाहिए। यदि सामान्य जीवन व्यतीत करने वाला एक बड़ा वर्ग संघ कार्य की जिम्मेदारियाँ उठाने के लिए तैयार नहीं होगा तो संघ का कार्य संतुलित नहीं रह सकेगा। अनेक प्रकार की समस्यायें भी उठ खड़ी हों जायेंगी। अतः इन सब बातों का विचार करके संतुलन बैठाना पड़ेगा। प्रचारक की उपयोगिता को देखते हुए ही इस वर्ग का अस्तित्व बनाये रखना जहाँ आवश्यक है वहीं इस वर्ग को और बढ़ाते जाने का सदा आग्रह भी रहेगा। परन्तु यह विचार सम्मुख रखते हुए भी यह विस्मरण नहीं होना चाहिए कि वास्तविक आधार सामान्य जीवनयापन करने वाला स्वयंसेवक वर्ग ही है। यह विचार कभी आँखों से ओझल नहीं होना चाहिए अन्यथा कार्य में दोष निर्माण हो जायेंगे। प्रचारक की भूमिका उस गाय जैसी हो जो दूध तो अधिक दे परन्तु खाये बहुत कम और सींग छोटे हों। प्रचारक कैसा होना चाहिए, उसमें क्या–क्या गुण होने चाहिए इसका वर्णन करना एक समस्या है। प्रचारक को चाहिए कि व्यक्तिगत जीवन में लगे हुए सामान्य लोगों को प्रेरणा देकर यथाशीघ्र स्थानीय कार्यकर्ता तैयार कर दे।

सामान्य स्वयंसेवकों से कार्य कराना प्रचारक का कार्य है। यदि अधिकारी नहीं है तो जो भी स्वयंसेवक उपलब्ध हैं, उन्हीं में से किसी को भाषण के लिए, किसी को आभार प्रदर्शन और किसी को कार्यक्रम लेने के लिए लगाना चाहिए। इसके लिए उनकी तैयारी करानी चाहिए यह सोचना कि, बाकी लोग नये होने के कारण बिगाड़ देंगे अतः सब कुछ

प्रचारक को करना चाहिए उपयुक्त न होगा। उपयुक्त तो यह है कि जितनी जल्दी हो सके स्थानीय लोगों के द्वारा ही काम करवाना चाहिए। यथासम्भव शीघ्रता करके प्रचारक को स्वयं 'पिक्चर' से हट जाना चाहिए। ऐसी स्थिति निर्माण करनी चाहिए कि प्रचारक के हटने के बाद भी वहाँ कार्य ठीक प्रकार से चलता रहे। संघ को समाज में योग्य स्थान तभी प्राप्त होगा जब सामान्य जीवन व्यतीत करने वाले अपने–अपने काम धन्धे करने वाले, परिवार चलाने वाले लोग सब प्रकार से संघ का कार्य करने लगेंगे।

सामान्य लोगों की प्रेरणा और प्रयत्नों पर ही अनेक लोग जेल गये, फाँसी पर झूले अन्य बड़े–बड़े कार्य किए। संघ का आधार भी ऐसे ही व्यक्ति हैं–प्रचारकों की पद्धति का निर्माण संघ कार्य को तेजी के साथ चारों ओर फैलाने तथा नित्यसिद्ध शक्ति का निर्माण करने के लिए ही हुआ है। प्रचारक को एक अच्छे, कुशल और श्रेष्ठकार्यकर्ता के रूप में क्षेत्र में आना पड़ता है, लोगों को उससे तीव्र प्रेरणा मिलनी चाहिए। सम्पर्क में आने वाले स्वयंसेवकों तथा परिस्थितियों का बड़ी योग्यता से मार्ग दर्शन तथा संचालन करना पड़ता है। प्रचारक के गुणों की सूची देनी हो तो उसमें सब गुण होने चाहिए। वह अच्छा वक्ता हो, विद्वान हो, तपस्वी हो, त्यागी हो, मितभाषी हो, मधुर व्यवहार वाला हो आदि प्रचारक के गुणों की तालिका देने की आवश्यकता नहीं है। प्रचारक से वैसे अनेक कार्य अपेक्षित हैं परन्तु सबसे महत्व का यह काम है कि वह बाकी लोगों को कार्य करने के लिए प्रेरणा दे और तदनन्तर सारे कार्यकताओं और परिस्थितियों का विचार कर उनका सुयोग्य समायोजन और मार्गदर्शन करें। सतर्कता और चतुराई के साथ सबको ठीक तरह से सँभालते हुए आगे बढ़ायें। यदि कोई स्वयंसेवक अपने क्षेत्र में अच्छा कार्य करने वाला है किन्तु अन्य लोगों को सँभाल नहीं सकता तो उसे प्रचारक बनने की अपेक्षा कार्यकर्ता बनकर ही काम करते रहना चाहिए। आज जो बहुविध कार्य खड़े हो रहे हैं उसके कारण प्रचारक पर काफी बोझ आने लगा है उसके लिए सबसे ज्यादा महत्व का यही गुण है कि सब बातों और परिस्थितियों का विचार करते हुए कुशलतापूर्वक सबको सँभाले रख सके।

सब परिस्थितियों को सँभालने के साथ ही अपनी वाणी पर भी संयम रखना आवश्यक है। प्रचारकों के मुख से जो भी शब्द निकलें वे आवश्यक हों, सोद्देश्य हों तथा योजनापूर्वक हों। यह गुण बड़ा आवश्यक है। प्रचारक होने से ही सब स्वयंसेवकों की ओर से आदर, सम्मान नहीं मिलने लगता, यह मान सम्मान और प्रतिष्ठा अपने व्यक्तित्व के आधार पर प्राप्त होती है। वैसे प्रचारक का काम बहुत कठिन बड़ी जिम्मेदारी का होता है। ड़ाक्टर साहब के समय में भी चर्चा होती थी कि प्रचारक को अविवाहित जीवन व्यतीत करना पड़ता है यद्यपि वे कोई जनम से ही निवृत्ति मार्गी नहीं होते। कौटुम्बिक जीवन की तो मनुष्य में स्वाभाविक इच्छा होती है। ऐसे लोग बहुत थोड़े होंगे जो बचपन से ही जीवन की सभी प्रकार की आकाँक्षाओं से निवृत्त हों। जो होंगे वे भाग्यवान है। मनुष्य होने के नाते उनके भी चारों ओर धोखे हो सकते है। निवृत्त जीवन व्यतीत करने वाले भी यदि सदा सतर्क नहीं रहे तो उनसे भी गलती हो सकती है। जो स्वयंसेवक प्रचारक निकले हैं उनके सामने यही विचार रहा है कि संघ कार्य को तेजी से बढ़ाने की आवश्यकता है। संघ के प्रचारकों की निवृत्ति ठीक वैसी ही है जैसी सेना में भर्ती होने वालों में मरने की तैयारी की भावना रहती है। वे किसी भी क्षण मरने को तत्पर रहते हैं यद्यपि उनको भी जिन्दा रहने की इच्छा रहती है। संघ के पहले गाँधी जी और तिलक के जमाने में भी ऐसे कार्यकर्ता थे जिन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन के लिए कुछ नहीं किया। उन्होंने वैवाहिक जीवन का परित्याग कर समाज में रहते हुए कार्य किया। डाक्टर साहब ने जो बहुत से अनुभव लिये थे उनके आधार पर ही वे कहा करते थे कि समाज में व्यवहार करते समय जितनी भी सतर्कता बरती जा सके, वह कम ही है। यह अहंकार मत करो कि हमने सब कुछ जीत लिया। जो अहंकार में फँस जाते हैं, वे मार खाते हैं।

प्रचारक और स्वयंसेवकों के बीच कैसे सम्बन्ध हैं। लोगों के घरों में कैसे जाते हैं, कैसे बैठते हैं ये सब प्रश्न भी बहुत महत्व के हैं। संघ में परस्पर के निकट सम्बन्ध बनाने का प्रयास ही रहता है। चौके तक सम्बन्ध बनाने का प्रयास ही रहता है। चौके तक सम्बन्ध

स्थापित करने समय भी पूरी सावधानी और सतर्कता बंरतनी चाहिए। व्यवहार का तरीका शुद्ध और इस प्रकार का हो कि बाकी चार लोगं भी सम्भावना न रहे इसकी भी चिन्ता करनी होगी। क्योंकि समाज में कभी लोगों के बारे में जैसा अनुभव आता है उसी प्रकार वे हम सबके बारे में भी विचार करते है। प्रचारकों के प्रति लोगों के मन मे अब तक जो भाव हैं वही उनके यश का आधार है इस भाव को यदि कभी इधर–उधर धक्का लग गया तो प्रचारकों के प्रति सारा सद्भाव समाप्त हो जाएगा। अतः प्रचारकों के यश का जो आधार अब तक रहा है, उसी प्रकार का व्यवहार और उसी प्रकार के प्रचारक निकलने चाहिए। इसके लिए शिक्षा, पढाई–लिखाई का उतना महत्व नहीं है जितना कि व्यवहार का। प्रचारक के प्रति कैसा प्रेमभाव, आदर व कैसी श्रद्धा होना चाहिए कि सम्पर्क में आने वाले लोगों के मन में उनके प्रति प्रेम और श्रद्धा का निर्माण हो। सावधानी इतनी कि कहीं पैर न फिसले, पैर फिसलने का प्रसंग ही उत्पन्न न हो। जो संस्था जितनी पुरानी होती, जो कार्य जितना पुराना होता उसमें उतनी ही अधिक सावधानी आवश्यक होती है। प्रचारकों का काम एक विचित्र प्रकार का कार्य है। उसके अनुरूप व्यवहार करने की सारी जिम्मेदारी स्वाभाविक रूप से आ जाती है। समाज में आज भी स्वयंसेवक के बारे में संघ के बारे में, प्रचारक के बारे में, एक प्रकार की श्रद्धा तथा आदर दिखाई देता है। जिस व्यवहार ओर आचरण के कारण यह सम्मान मिलता रहा है उसके प्रति अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता है। स्वयंसेवकों के सामने डाक्टर साहब सुभाषचन्द्र बोस का आदर्श प्रस्तुत करते थे। प्रचारक का व्यवहार भी शुद्ध रहना चाहिए तथा और लोगों का भी शुद्ध रहे इतना सँभलकर चलना चाहिए। 'शूली के ऊपर रोटी खाने' जैसा प्रचारकों के जीवन का मामला है। इसे आज तक संघ ने निभाया है आगे भी निभाना है। यदि प्रचारक बराबर व्यवस्था से चलते रहे। तो उनके प्रति समाज में प्रेम, सम्मान, श्रद्धा और आदर आज जैसा ही सदा बना रहेगा। संघ का कार्य परिस्थिति निरपेक्ष है। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि परिस्थिति का कोई विचार किया जाना चाहिए।

परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं रहीं तब भी कार्य करना है क्योंकि उन परिस्थितियों को बदलने के लिए कार्य की आवश्यकता होती है। जब परिस्थितियां अनुकूल होती तो उनका लाभ अपना कार्य बढ़ाने के लिए करते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियाँ में अधिक परिश्रम करने पर भी इतना प्रतिफल (रेस्पांस) और यश नहीं मिलता जितना अनुकूल परिस्थितियों में मिलता है। चारों ओर पत्थरों के बीच से होकर बहने वाला नदी का पाट अधिक चौड़ा नही हो पाता परन्तु वह नदी जब मैदानों मे आती है तो उसकी चंचल धारा जमीन को काटकर अपना पाट बहुत चौड़ा बना लेती है। जबलपुर के पत्थर की चट्टानों के बीच नर्मदा नदी का पाट इतना छोटा है कि उसे बन्दर भी कूदकर पार कर सकता है– इसी कारण उसका नाम बन्दरकुदी रूढ़ हैं परन्तु वही नदी मैदानों में आकर काफी चौड़ी हो जाती है। संघ कार्य के बारे में भी ऐसा ही है। विषम परिस्थितियों में इसका पाट अधिक चौड़ा नहीं हो पाता परन्तु अनुकूल परिस्थिति आने पर यह कार्य विशाल रूप ग्रहण कर जाता हैं अतः काम तो दोनों ही परिस्थितियों में करना पड़ता है।

संघ के पास आज भी जिस प्रकार की और जितनी मात्रा में शक्ति है, वैसी शक्ति लेकर समाज में आज कोई भी खड़ा नहीं है। इस शक्ति को और बढ़ाने की आवश्यकता है। सब लोगों से जिस प्रकार का सम्पर्क आवश्यक है यदि संघ के कार्यकताओं ने उस प्रकार का सम्पर्क रखा तो विभिन्न शक्तियों के केन्द्रित होने (धुवीकरण) के समय अपना यह संघ कार्य अश्वयमेव एक बड़े शक्ति केन्द्र के रूप में प्रकट होगा जो सारे समाज को स्थिर रखने में सामर्थ्यशाली होगा आगे जो अनुकूल परिस्थितियाँ आती हुई दिखाई दे रही हैं उनका विचार करके अधिक से अधिक कार्यकताओं को, संघ का कार्य करने के लिए प्रेरणा दे कर निकालने की आवश्यकता है। जहाँ शाखायें हैं, उनकी स्थिति अच्छी बनाई जाय, जहाँ नहीं है, वहाँ शाखायें खड़ी की जायें। जहाँ अपने (संघ के) लोग नहीं हैं वहाँ संघ के लोग बनाने, जहाँ हैं वहाँ उनकी शिथिलता आदि दूर कर उन्हें सचेत और कार्यशाली करने के लिए सफल प्रयत्न करने होंगे यह स्थिति जल्दी से जल्दी आनी

चाहिये। आज जो परिथितियाँ हैं उनका विचार करना होगा, आगे आने वाली परिस्थितियों पर दृष्टि रखनी होगी। काँग्रेस पार्टी ने आज तक संघ को साम्प्रदायिक कहकर उसके प्रति अनेक प्रकार की भ्राँत धारणायें समाज में उत्पन्न करने के प्रयास योजनापूर्वक किये हैं। इसके अतिरिक्त एक दूसरी भी विचारधारा है जो इससे भी अधिक अप्रचार संघ के विरुद्ध करती है। यह विचारधारा है कम्युनिस्ट या साम्यवादी। यदि अपने देश और बाहर के देशों की परिस्थितियों का अध्ययन किया जाय तो ऐसा दिखेगा कि साम्यवाद के नाम से जो विचार फैला है उसके पीछे कुछ क्षणिक जोश था। आगे चलकर यह जोश मिट गया। समाज के सभी प्रश्नों को हल करने का दावा लेकर चलने वाला साम्यवाद दुनियाँ के सामने विफल सिद्ध हो चुका है। उसकी शक्ति अब पतनोन्मुख हैं पूर्वी बर्लिन और पश्चिमी बर्लिन के बीच जो दीवार बनी है यह सिद्ध करती है कि कम्युनिज्म विफल हो गया है। अन्य विचारधाराओं से उसका जब प्रत्यक्ष संघर्ष आया तो कम्युनिस्टों को अपने विचारों तथा अपने लोगों को बचाकर रखने के लिए खुद दीवार खड़ी करनी पड़ी। दीवार बनाने के कुछ और कारण भी हो सकते हैं परन्तु इससे साम्यवाद की पराजय निश्चित हो गई। इस नयी विचारधारा ने पढ़े लिखे लोगों पर भी यह प्रभाव डाला कि उसके द्वारा दुनियाँ की सभी समस्यायें और प्रश्न चुटकी बजाते छूमन्तर हो जायेंगे। इससे सारे रोग, सारे कष्ट दूर हो जायेंगे। शिक्षित नयी पीढ़ी पर उसका प्रभाव पड़ा और कम्युनिज्म का फैशन बन गया क्योंकि वे समझते थे कि यह एक नयी दवा है, नयी विचारधारा है। जो पढ़े–लिखे युवक उसके साथ रहे उन्हें तो प्रगतिशील कहा गया परन्तु जो विवेकी जन उनसे भिन्न मत वाले हुए उन्हें प्रतिक्रियावादी, साम्प्रदायिक आदि कहकर उनके प्रति गलत धारणायें उत्पन्न की गयीं। परन्तु आज सारी दुनियाँ में बड़ी तेजी से मोड़ आ रहा है। लोगों ने यह अनुभव कर लिया है कि इस विचारधारा के द्वारा ही सब कुछ होने का दावा झूठ है, फरेब है, धोखा है। यह विचार कई राष्ट्रों में फैल रहा है और अपने देश में भी आया है।

ऐसी अवस्था में हमें अपने संगठन समाज की शाश्वत जीवन शक्ति, अति

प्राचीनकाल से चली आ रही परम्पराओं का और जो परिवर्तनहम समाज में लाना चाहते है उसका विचार इस प्रकार से रखना चाहिए जिससे हमें कोई पुरातनपंथी न कह सके। समाज में यह विचार जगाना होगा कि संघ का जो विचार है वही योग्य तथा उचित है। इसी के आधार पर समाज संगठित और शाक्तिशाली बनेगा। इसी शक्ति के आधार पर यहाँ का समाज अपने सारे प्रश्नों का हल कर सकेगा। इस प्रकार से विचार करना साम्प्रदायिकता नहीं है, न इसमें पुरातनपंथी होने की ही कोई बात है।

1946—47 में देश में जो घटनायें हुई उनके कारण सम्पूर्ण हिन्दु समाज में एक प्रतिक्रिया निर्माण हुई थी। संघ को उसका किसी न किसी प्रकार लाभ हुआ था। उस समय सैकड़ों की संख्या में प्रचारक निकले और साल—दो साल में ही भिन्न—भिन्न स्थानों पर कितनी ही शाखायें खड़ी हो गयीं। लेकिन इस प्रतिक्रिया का जो लाभ था वह स्थायी नहीं हो सका। 1948 में 30 जनवरी को गांधी हत्या की घटना न हुई होती तो प्रतिक्रियावश इतनी बड़ी संख्या में जो स्वयंसेवक संघ के पास आये थे। उनको आत्मसात् करने का समय संघ को मिल जाता। इससे अपनी शक्ति भी बहुत बढ़ जाती, समाज के अनेक दोष भी मिट जाते। उस समय महाराष्ट्र में इस बात का, प्रत्यक्ष अनुभव भी आया जब संघ के सैकड़ों स्वयंसेवक प्रचारक विस्तारक के नाते निकले तो गाँव—गाँव में ऐसी परिस्थिति निर्माण हो गयी कि ब्राह्मण और अब्राह्मण परिवारों के अच्छे—अच्छे, पढ़े लिखे युवक साथ—साथ संघ स्थान पर आने लगे थे। संघ के कारण ब्राह्मण और अब्राह्मण का भाव ही मिट गया तो हमारी नेतागिरी कैसे चलेगी? सम्पूर्ण महाराष्ट्र में ब्राह्मण और अब्राह्मण का यह भाव ही समाप्त हो जाता। अन्य प्रांतों में भी संघ के पास इतने लोग आये थे कि यदि वे सब संघ के हो जाते तो देश का सारा चित्र ही बदल गया होता।

सन् 1948 की उपर्युक्त घटना की आड में शासन की ओर से अकारण ही संघ पर जो बज्रपात किया गया उसके कारण बड़ी संख्या में संघ के पास आये हुए लोग हजम नहीं हो सके। इसी कारण भिन्न—भिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले जो अन्य लोग हैं। वे भी

स्पष्ट, अस्पष्ट या निजी तौर पर यह विचार व्यक्त करते हैं कि संघ की शक्ति बढ़नी चाहिए। संघ ही एक ऐसा है जो इससे अछूता है और संघ के कार्यकर्ता देश में ज्यादा से ज्यादा मात्रा में सब प्रकार के लोगों से सम्पर्क करने का प्रयास करते हैं। अगर समाजवाद का अर्थ है कि अपने समाज की उन्नति हो, प्रगति हो, तो यह तो संघ ने पहले से ही सोच रखा है। सर्वोदय वालों ने जो कहा वह अपने प्राचीन सामाजिक ढंग से मिलता जुलता है। उन्होंने कहा सबको मकान चाहिए। सबको दवा चाहिए, ऐसे 10 सूत्र दिये हैं। यदि समाजवाद है, यही सर्वोदयवाद है तो इससे किसका झगड़ा हो सकता है? किन्तु देश में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो सोशिलिज्म का नाम लेकर समाज को दूसरी गलत दिशा में ले जाने का प्रयास कर रहे हैं। उस दिशा में जाना नहीं चाहिए ऐसा संघ चाहता है।

समाज को स्थिर रखने की शक्ति अखिल भारतीय स्तर पर केवल संघ के पास ही है परन्तु वह जितनी मात्रा में चाहिए, उतनी मात्रा में अभी नहीं हैं। हमें इतनी शक्ति सम्पादित करनी है कि देश के किसी भी भाग में यदि कोई मामला उठ खड़ा हो तो अपने सामर्थ्य के बल पर हम उसे हल कर लें। किसी भी प्रकार के दूसरे लोग इस देश में समाज को किसी गलत दिशा में मोड़ कर भ्रष्ट न कर सकें। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी अब ऐसी है कि विध्वंसक विचार की दृष्टि से अब स्थिति एकदम बदल चुकी है। देश के अन्दर और बाहर जो भी परिस्थितियाँ आ रही है। उनका लाभ उठाना चाहिए। 1946–47 में जैसे हजारों की संख्या में प्रचारकों ने इधर–उधर जाकर गाँवों में हजारों शाखायें निर्माण की उसी प्रकार इस समय भी विचार करना होगा। जितने भी प्रचारक या विस्तारक निकल सकते हैं, उन्हें निकाला जाय। कार्य पुराना हो चुकने के कारण हताश होकर बैठने की आवश्यकता नहीं हैं। समस्याओं के बीच से हमें मार्ग निकालना है।

संघ के जितने भी स्वयंसेवक हैं उन्हें अपने जीवन का ढाँचा इस प्रकार बनाना चाहिए कि वर्ष में संघ कार्य के लिए 2–4 महीने निकाल लें, जो स्वयंसेवक डाक्टर हैं अध्यापक हैं, वकील हैं, अन्य काम धंधे करते हैं। उन सब को कुछ वर्ष का समय संघ कार्य

के लिए देना चाहिए। फिर चाहे वे अपने काम पर ताला लगायें या अपना काम धंधा अपने छोटे भाई पर छोड़ें। जिस प्रकार भी हो सके, एक ऐसी पद्धति बननी चाहिए। अनेक देशों में महीने–दो महीने का अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण दिया जाता है। हमने भी यदि संघ के निमित्त कम से कम एक धण्टा समय निकाला तो यह कोई असम्भव नहीं। संघ का स्वयंसेवक अपने जीवन का भी कुछ समय संघ कार्य के लिए देने को तत्पर हो। इसका प्रभाव सारे देश पर पड़ेगा। इस प्रकार संघ का कार्य करने वाले लोगों की इतनी अधिक संख्या हो जायेगी कि उसे गिनना भी कठिन हो जायगा। बड़ी संख्या मे विस्तारक उपलब्ध हो जायेंगे जो व्यावहारिक जीवन बिताने वाले होंगे। गाँव–गाँव में जो पुराने स्वयंसेवक हैं उन्हें ढूंढ निकालना तथा उन्हें फिर संघ की श्रृंखला में कड़ी के समान आबद्ध करना। जहाँ शाखायें नहीं है वहाँ शाखायें निर्माण करना, स्वयंसेवक खड़े करना। योजनापूर्वक कार्य करने से थोड़े ही समय में काफी शाखायें और स्वयेसेवक निर्माण हो जायेंगे। यदि कुछ शाखायें बन्द भी हो गयीं तो भी कुछ बढ़ ही जायेंगी। जिन स्थानों की शाखायें बन्द होगीं वहाँ भी दो–चार स्वयंसेवक मिल जायेंगे। कार्यक्रमों आदि में उन्हें बुलाते रहने से सम्पर्क सम्बन्ध बना रहेगा। उन्हें भी इस बात का अभिमान बना रहेगा कि 'मैं स्वयंसेवक हूँ।' संघ कार्य के तीव्र गति से विकसित होने का अब समय आ गया है। लेकिन इस अनुकूलता का लाभ तभी होगा जब उस दृष्टि में प्रयत्न किया जायेगा। संघ का कार्य इतना पुराना और इतनी बड़ी संख्या में स्वयंसेवकों के होने के बावजूद यदि इन परिस्थितियों का लाभ हम नहीं उठा सकेंगे तो इसके लिए हम ही दोषी हैं।

परिस्थितियों का फायदा उठाना हमारा कर्तव्य है। संघ ने जो अनेक प्रकार के कार्य खड़े किये हैं उनके कारण समस्यायें तो खड़ी होगीं ही। बहुत बड़ी मात्रा में लोगों को चालना देकर उन्हें कार्य के लिए खड़ा करना होगा। इससे जोखिम (रिस्क) भी उठानी पड़ेगी समस्यायें खड़ी ही नहीं होंगी यह सोचकर काम करना असम्भव हैं।

आगे चलकर जो परिस्थितियाँ आने वाली हैं उसके लिए संघ कार्य का ढांचा अभी

से निर्माण करना होगा। दो–तीन साल के अन्दर काम बढ़ाने की यदि योजना बनायी गयी और प्रयास किए गए तो परिस्थितियों का लाभ भी प्राप्त होगा तथा कार्य भी तेजी से फैलेगा लोगों के मन में यह भाव अवश्य बढ़ेगा कि संघ समाज को चिरस्थायी रखने वाला आधार हैं आज जो लोग भय या अन्रा किसी कारणवश संघ से दूर हैं वे भी हमारे साथ आकर खड़े ही जायेंगे। इससे एक बहुत बड़ी शक्ति, निर्माण हुए बिना नहीं रहेगी। आज सब लोगों की दृष्टि संघ की ओर लगी है। वह दिन दूर नहीं है जब से सब लोग इस संघ शक्ति के चारों ओर आकर खड़े होंगे और उनके सहयोग से हम एक शक्तिशाली समाज का निर्माण करने में अवश्य ही सफल होंगे।[1]

1–राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ : लक्ष्य और कार्य, लोकहित प्रकाशन, लखनऊख संस्करण वि0 सं0 2038, पृ0, 3–71

षष्ठ अध्याय

आद्य सरसंघ चालक

समूचे भारत में दैनन्दिनि

शाखाओं की संरचना

संघीय व्यवस्था के अनुसार

देश को विभिन्न, क्षेत्र

संभाग, विभाग, जिला, तहसील

एवं खण्डो में

विभक्त करना

संघीय संगठन की व्यवस्था

षष्ठ अध्याय

सन् 1857 ई0 एवं उसके पश्चात् भारतीय जन–मानस में एक ऐसी प्रचण्ड लहर उद्वेलित हुई जिसमें स्वाधीनता की अपराजेय छटपटाहट विद्यमान थी। प्रत्येक व्यक्ति के सामने एक अडिग निश्चय, दृढ़ विश्वास और राष्ट्र के गौरव को सुरक्षित रखने के लिये एकमात्र दिव्य और भव्य लक्ष्य था–अपनी स्वतंत्रता की प्राप्ति।

सन 1885 ई. में इस सुगबुगाहट ने राष्ट्रीय कांग्रेस को जन्म दिया। पवित्र ध्येय को पाने के लिये नरम दल और गर्म दलों में यह छटपटाहट परिवर्तित हो गई। इन दोनों का उद्‌देश्य एक ही था–भारत को स्वतंत्र कराकर के स्वशासन अथवा स्वराज्य की उपलब्धि। समवेत रूप से यहाँ कि निवासियों ने अपनी बलिदानी परम्परा और साम्प्रदायिक सद्‌भाव का परिचय देते हुये अपनी अनूठी एकता का मंत्र पढ़ा–'वन्देमातरम्'। डॉ0 राम स्वरूप खरे के मतानुसार "परिणाम स्वरूप 15 अगस्त सन् 1947 को यहाँ के निवासियों ने स्वतंत्रता की स्वर्णिम और सुहानी भोर देखी। युग–युगों की पराधीनता की काली रात्रि का अवसान हो गया। असीम नील–गगन में पक्षि–शावक अपने स्वर्णिम पंख फैला, निर्भय होकर स्वतंत्रता के सुख का आनन्द लेने लगे। निःसन्देह इस पवित्र एवं पुनीत अवसर को पाकर प्रत्येक भारत वासी का मन–मयूर थिरक उठा।"

तत्कालीन इतिहासकार आंग्ल शासकों के आश्रित अथवा प्रलोभन के वशीभूत थे इसलिए उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के कारणों को तोड़ा–मरोड़ा। इसी क्रम में वे भारतीय संस्कृति और भारतीय इतिहास को बिलकुल भूल गये। अनेक हुतात्माओं के बलिदान को उन्होंने अनदेखा किया। यहाँ तक कि उनके बहुमूल्य योगदान की चर्चा तक करना समीचीन न समझा। इस प्रकार जिन इतिहास–पुरुषों ने अधुनिक भारत का नव–निर्माण किया जानबूझकर उनकी पूर्ण उपेक्षा की गई–जैसे लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, परमवीर सावरकर, युवा ह्रदय सम्राट सुभाष चन्द्र बोस, समग्र क्रान्ति के

प्रणेता जय प्रकाश एवं डॉ0 केशव बलीराम हेडगेवार इत्यादि।

इन सब इतिहास पुरुषों पर भिन्न–भिन्न रूप में अनेकानेक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये जा सकते है जबकि लेखकों द्वारा इन पर केवल छुटपुट प्रयास ही किये जा सके हैं। इनके एतिहासिक योगदान को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

डॉ0 हेडगेवार एक ऐसे ही राष्ट्र निर्माता सांस्कृतिक विचारक महामनीषी और प्रेरक व्यक्तित्व के धनी थे, जिन्होंने अपने जीवन का एक मात्र यह उद्देश्य निरूपित किया कि उन्हें भारत राष्ट्र को अपार वैभव के शिखर पर ले जाना है, इसी के लिए उन्होंने एक ऐसी अपराजेय "राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ" संस्था का निर्माण किया जिसके कोटि–कोटि स्वयं सेवकों ने सच्चे देश निर्माण का बीड़ा उठाया। इनमें उत्कट राष्ट्र भक्ति कूट–कूट कर भर दी जाती है। ये चरित्र के धनी और अदम्य साहस के अवतार होते है अतः राष्ट्र निर्माता इतिहास पुरुष एवं प्रेरक व्यक्तित्व का शोध–परक अध्ययन होना चाहिए।

इसी की सम्पूर्ति के लिए यह छोटा सा प्रयास जिसे पूर्ण करने का मैंने बीड़ा उठाया। इसके प्रकाश में आने पर अनेक भ्रांतियों एवं पूर्वाग्रहों का समूह उच्छेदन होगा और नये–नये अनुद्घाटित एवं ऐतिहासिक तथ्य भारतीय समाज के समक्ष उजागर होंगे, ऐसा मेरा अपना विश्वास है।

आद्य सरसंघ चालक– 9 एवं 10 नवम्बर 1929 ई. को सभी संघ चालकों की सभा नागपुर में करने का निश्चय हुआ है। इस सभा में आप अपने साथ ऐसे एक दो व्यक्तियों को लेकर जिनका संघ के साथ आत्मीयता होने के कारण विचार विनिमय में उपयोग होगा, अवश्य लायें। योजनानुसार उक्त तिथि पर ही नागपुर में डोके महाराज के मठ में संघ चालकों तथा कार्यकर्ताओं की बैठक हुई। इसमें सबने खुले दिल से चर्चा करके देश की तत्काल परिस्थिति और लोगों की मनःस्थिति का विचार करते हुये अनुशासन की दृष्टि से 'एकचालकानुवर्ती' रखने का निश्चय किया। इस चर्चा में भाग लेने बालों में उल्लेख्य थे सर्वश्री विश्वनाथ राव केलकर बालाजी हुद्दार, आप्पाजी जोशी, कृष्णराव मोहरीर,

तात्या जी कालीकर, बापूराव मुठाल, बाबा साहब कोलते, चाँदा के देवईकर तथा मार्तण्डराव जोग।

बैठक के दूसरे दिन सायंकाल मोहिते संघ स्थान पर नागपुर के सभी स्वयं सेवकों तथा बैठक के निमित्त आये हुये कार्यकर्ताओं का एकत्र कार्यक्रम हुआ। उस समय संघ स्थान के पीछे आज भी उत्तम स्थिति में विद्यमान भव्य पत्थर के द्वार की ओर पीठ करके संघ चालक तथा कार्यकर्ता खड़े थे और डाक्टर जी संघ स्थान पर ध्वज के पास खड़े वह दृश्य देख रहे थे। इतने में बैठक में लिये गये निर्णय के अनुसार श्री आप्पा जी जोशी ने सबको पूर्व से सूचना देकर जोरदार स्वर में आज्ञा दी–"सर संघ चालक प्रणाम–1, 2, 3,।" सभी समवेत स्वयं सेवकों ने सर संघ चालक डॉक्टर केशवराव हेडगेवार को प्रणाम किया। इसके उपरान्त एकचालकानुवर्तित्व की कल्पना को विशद करने वाला श्री विश्वनाथ राव केलकर का ओजस्वी भाषण हुआ।

इस प्रकार परम पूजनीय डॉ0 हेडगेवार राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के आद्य (प्रथम) सर संघ चालक बने।

संघ चालकों की इसी बैठक में सर संघ चालक जी के सहायक के रूप में सरकार्यवाह तथा सर सेनापति दो अधिकारी भी निश्चित किये गये। तदनुसार बाला जी हुद्दार प्रथम सर कार्यवाह और मार्तण्डराव जोग प्रथम सर सेनापति नियुक्त हुये। इसके साथ अन्य अधिकारी श्रेणियाँ भी निश्चित की गईं।

डाक्टर जी के सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति यह स्वीकार करेगा कि इस प्रकार के सब कर्तव्यों का निर्वाह करने योग्य मनःस्थिति और कर्तव्य का सुयोग्य संयोग संघ संस्थापक डॉ0 हेडगेवार जी के पास हुआ था।

डॉ0 जी की मनःस्थिति को व्यक्त करने वाले उनके ही हाथ के लिखे हुए शब्द सुदैव से आज उपलब्ध हैं। यह टिप्पणियाँ कालक्रम से 1933 सितम्बर की हैं तो भी विषयानुषंग से उन्हें यहीं उद्धृत करना ठीक होगा। वे लिखते हैं–

"1–इस संघ का जन्मदाता अथवा स्थापनकर्ता मैं न होकर आप सब हैं, इसका मुझे पूरी तरह ज्ञान है।

2–आपके द्वारा उत्पन्न संघ का, आपकी इच्छा एवं आज्ञा से, मैं धात्री का काम कर रहा हूँ।

3–इसके आगे भी आपकी इच्छा और आज्ञा होगी तब तक यह काम मैं करता रहूँगा तथा यह काम करते हुए कितने भी संकट आयें और मानापमान सहन करने की बारी आयी तो भी मैं अपना पाँव पीछे नहीं हटाऊँगा।

4–परन्तु मेरे इस काम के लिये अयोग्य होने के कारण मुझझे संघ का नुकसान होता है ऐसा यदि आपको लगे तो दूसरा योग्य मनुष्य इस स्थान के लिए ढूँढ़ निकालिए।

5–आपकी आज्ञा से जितने आनन्द के साथ मैंने यह पद स्वीकार किया है उतने ही आनन्द से आपके द्वारा नियोजित व्यक्ति के हाथ में सब अधिकार–सूत्र देकर उसी क्षण से उसकी आज्ञापालन करके स्वयंसेवक के नाते चलूँगा।

6–कारण, मेरे लिए अपने व्यक्तित्व का मूल्य नहीं, संघकार्य का मूल्य है और संघ के हित के लिए कोई भी बात करने में मुझे किसी भी प्रकार का अपमान कभी नहीं प्रतीत होगा।

7–संघचालक की आज्ञा का किसी भी परिस्थिति में स्वयंसेवक के द्वारा बिना ननु–नुच किये पालन होना आवश्यक है। तथा 'नाक से भारी नथ' यह स्थिति संघ में कभी न उत्पन्न होने देने में ही संघकार्य का रहस्य है।

8–अतः स्वतः वह आज्ञापालन कर दूसरे स्वयंसेवक से उसको पालन करवाना, यह प्रत्येक स्वयंसेवक का कर्तव्य है।"

कर्तव्य मानकर भरत के समान सब कार्य की धुरी वहन करने की मन की सिद्धता और उसके साथ नेतृत्व के रत्नजड़ित सिंहासन को अपना न मानकर उस पर हिन्दू–राष्ट्र पुरुष की पादुकाएँ स्थापित करने का ेराग्य और सेवाभाव डॉ0 जी के रूप में मूर्तिमान

हुआ था। इस प्रकार कर्तव्य कठोर एवं कार्य के शरण व्यक्तित्व इस बैठक में सरसंघचालक–पद पर आरूढ़ हुआ था। समय ने बताया है कि इस रचना में ही संघ के अनुशासनपूर्ण विकास का रहस्य छिपा हुआ है।

"..................हिन्दू संस्कृति हिन्दुस्थान का प्राण है। अतः हिन्दुस्थान की रक्षा करना हो तो हिन्दू संस्कृति का रक्षण प्रथम कर्तव्य हो जाता है। यदि हिन्दुस्थान की हिन्दू संस्कृति नष्ट हो जाय, हिन्दू समाज़ क‚ नामनिशान भी देश में न रहे तो फिर बचे हुए भूमि के टुकड़े को हिन्दुस्थान अथवा हिन्दू राष्ट्र नाम भी शोभा नहीं देगा। कारण, राष्ट्र केवल जमीन का टुकड़ा नहीं।................यह बात सत्य होते हुए भी हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति की रक्षा की ओर तथा प्रतिदिन विधर्मियों के हिन्दू समाज पर विध्वंसक आक्रमणों की ओर कांग्रेस से बिलकुल विरोध नहीं। अपनी राष्ट्रीय संस्कृति के मार्ग में बाधा न पहुँचाने वाले स्वातंत्र्य–प्राप्ति के कार्यक्रम में संघ कांग्रेस के साथ सहयोग करेगा और आज तक करता आया है।" इसी उदात्त भूमिका से डॉ0 जी ने शाखाओं को एक परिपत्रक भेजा। उसमें लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में पण्डित जवाहर लाल नेहरू के प्रयत्न से स्वीकृत पूर्ण स्वतंत्रता के प्रस्ताव का स्वागत किया गया था। संघ के सम्पूर्ण स्वातंत्र्य के ध्येय और सहयोग की नीति पर प्रकाश डालने वाला यह परिपत्रक ऐतिहासकि महत्व का है। उसमें लिखा था कि "इस वर्ष कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता निश्चित हो जाने के कारण कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने घोषणा की है कि रविवार 26 जनवरी 1930 को हिन्दुस्थान भर में 'स्वतन्त्रता दिवस' के रूप में मनाया जाय। अखिल भारतीय राष्ट्रीय सभा ने अपना स्वतंत्रता का ध्येय स्वीकार किया है यह देखकर अपने को अत्यानन्द होना स्वाभाविक है। वह ध्येय अपने सामने रखनेवाली किसी भी संस्था के साथ सहयोग करना अपना कर्तव्य है..........अतः राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सब शाखाएँ रविवार, दिनांक 26 जनवरी 1930 को सायंकाल ठीक छः बजे अपने संघस्थान पर शाखा के सभी स्वयंसेवकों की सभा करके राष्ट्रीय ध्वज अर्थात् भगवा झण्डे का वन्दन करें। व्याख्यान के रूप में स्वतंत्रता की कल्पना तथा प्रत्येक

को यही ध्येय अपने सामने क्यों रखना चाहिए यह विशद करके बतायें और कांग्रेस के द्वारा स्वतंत्रता के ध्येय का पुरस्कार करने के लिए अभिनन्दन का समारोह पूरा करें।"

इस आदेश के अनुसार सब शाखाओं में 'स्वतंत्रता दिवस' मनाया गया था। पोवाडे, शोभायात्रा, व्याख्यान, 'श्रद्धानन्द' साप्ताहिक में से स्वतंत्रता–विषयक लेखों का वाचन और वन्देमातरम् का उद्घोष आदि के विविध कार्यक्रम इस अवसर पर हुए थे।

देश में अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन के चिह्न दिखने लगे थे। इस होने–वाले आन्दोलन में संघ की क्या निश्चित रीति रहेगी इसकी कल्पना न होने के कारण पुलिस की ओर से स्थान–स्थान के स्वयंसेवकों को सताया जाने लगा था। तुम्हारा प्रमुख कौन है? उद्देश्य क्या है? संघ के पैसे किसके पास रहते है? इस प्रकार के अनेक प्रश्नों को शाखा के छोटे–छोटे स्वयंसेवकों से पूछकर उन्हें सताने की घटनाएँ सुनने को मिलीं। इन बातों का ठीक प्रकार से सामना करने के लिए डॉक्टर जी ने स्वयंसेवकों की पीठ पर नगर का व्यवहार दक्ष, वजनदार तथा प्रौढ़ व्यक्ति संघचालक के नाते नियुक्त करने की ओर ध्यान दिया और यह व्यवस्था की कि शाखा की दृष्टि से होनेवाले आर्थिक आय–व्यय का हिसाब भी यह प्रौढ़ व्यक्ति ही रखे। डॉक्टर जी ने अपने व्यवहार से यह सिखा दिया था कि सार्वजनिक कार्य के लिए जमा किये हुए पैसे का उपयोग अत्यन्त योग्य कारण के लिए और मितव्ययिता से होना चाहिए। दक्षता से काम में लाया गया पैसा संघटन के लिए उपकारक होता है परन्तु यदि उसका उपयोग लापरवाही से किया गया तो उस पैसे से ही संघटन की प्रतिष्ठा भी धूल में मिल सकती है। इसलिए उनका इस बात पर बड़ा बल था कि पाई–पाई का आय–व्यय समुचित रूप से और समय पर ही लिखा जाय। इस काम में उनको अपने चाचाजी श्री आबाजी हेडगेवार से बहुत सहायता मिली। उनके स्वभाव में अत्यन्त दक्षता एवं नियमनिष्ठा होने के कारण कार्यालय तथा आय–व्यय की वे बहुत अच्छी व्यवस्था रखते थे। डॉक्टरजी ने दिनांक 5 फरवरी 1930 को इस सम्बन्ध में जो टिप्पणी लिखी है वह उनकी आय–व्यय के विषय में धारणा पर अच्छा प्रकाश डालती है।

वे लिखते है कि "संघ की स्थापना से जनवरी 1930 तक और तब से आज तक का सब हिसाब, इस प्रकार जाँचकर ठीक–ठीक तैयार करना कि कोई भी आलोचक उसमें दोष न निकाल सके। कारण इसके आगे इस व्यवस्थितता की अत्यन्त आवश्यकता है।" पैसे के सम्बन्ध में उनकी प्रामाणिकता की कुछ लोगों ने परीक्षा करके भी देखी थी। एक बार जब डॉक्टर जी 'ऑल इण्डिया रिपोर्टर' के सम्पादक राव साहब दातार के पास निधिसंग्रह के उद्देश्य से गये तो उन्होंने आय–व्यय की बही देखने की इच्छा प्रकट की। तदनुसार डॉक्टर जी ने बहियाँ उनके पास भिजवा दीं। अति सूक्ष्मता से बही का निरीक्षण करनेवाले दातार जी को भी बड़ा सन्तोष हुआ और उन्होंने मुक्तहस्त से चन्दा दिया। आर्थिक व्यवहार की ओर इतनी दक्षता रखनी चाहिए, यह डॉक्टर जी का सबसे कहना था।

सघटन के तंत्र की अनेक छोटी–मोटी बातें धीरे–धीरे अनुभव से ही निश्चित हुई हैं। संघ का घोष (वैण्ड) वादन–कला में इतना दक्ष हो गया था कि वह लोगों का ध्यान सहज आकृष्ट कर लेता था। फलतः संघ के प्रति प्रेम रखने–वाले लोग अपने यहाँ के उत्सव तथा अन्य समारोहों के निमित्त डॉक्टर जी से घोष की माँग करने लगे। अपने लोगों को "ना" कहना भी मुश्किल और "हाँ" भी सम्भव नहीं, डॉक्टर जी विषम स्थिति में फँस गये। कुछ सहकारियों का कहना था कि पैसे मिलें तो घोष देने में क्या हर्ज है। परन्तु केवल पैसे के पीछे लगकर घोष बजानेवाले स्वयंसेवक की मनोवृत्ति में हीन भाव लाना डॉक्टर जी को पसन्द नहीं था। उनकी तो यही इच्छा थी कि संघ का घोष स्वतन्त्रता और वैभव की ओर प्रयाण करनेवाले तरुणों का साथ देने के लिए ही गरजते रहना चाहिए। अतः एक मित्र ने घरेलू समारोह के लिए घोष देने का जब आग्रह किया तो डॉक्टर जी ने कहा "तुम्हारा लड़का देश के लिए दिग्विजय करके आया होता तो उसके स्वागत के लिए मैं संघ का घोष स्वयं लेकर जाता तथा देश का गौरव बढ़ाने वाले उस सुपुत्र के आगमन का आनन्द दशों दिशाओं मैं गुँजा देता। पर उसके विवाह के लिए तुम चाहे जितने पैसे देने को कहो तो भी यह घोष नहीं दिया जा सकेगा। फिर एक को

देने के बाद अनेक लोग आग्रह करने लगेंगे और एक ही समय यदि अनेकों ने माँगा तो एक को छोड़कर सबको नाहीं करके अप्रसन्न करना पड़ेगा।" पैसे की दृष्टि से किया हुआ विचार संग्रह में बाधक होगा यह देखकर डॉक्टर जी ने निश्चित किया कि संघ का घोष केवल राष्ट्रीय कार्य के लिए ही बजाया जायगा।

पैसा कहीं से मिले तो लेना चाहिए यह नीति सार्वजनिक संस्थाओं के संचालकों को निरूपाय रूप से स्वीकार करनी पड़ती है क्योंकि अधिकांशतः उनके कोई निश्चित और सम्पन्न साधन–स्रोत तो होते नहीं तथा कार्य की आवश्यकताएँ आय से चार कदम आगे ही रहती है। पर इतना ध्यान तो रखना ही चाहिए कि कहीं से भी पैसा लेते समय अंगीकृत कार्य की पवित्रता में किसी भी प्रकार की न्यूनता न आने पाये। परन्तु कभी–कभी पैसे की अनिवार्यता कार्य की अपेक्षा भी अधिक लगने लगती है तथा सामान्य लोग तो उसे सब बातों को खोलनेवाली एकमेव कुंजी मानकर उसका खूब गुणगान करते हैं। 1930 के पहले संघ की बाल्यावस्था में पैसे की तंगी होने पर नागपुर के 'महाल अमेच्यूअर क्लब' और बर्डी की सहकारी संस्था ने यह सुझाव रखा कि उनके नाटकों के टिकिट यदि संघ के स्वयंसेवक बेचें तो वे खेलों से होनेवाली आय का एक हिस्सा संघ को दे देंगे। कार्यकर्ताओं ने जब यह कल्पना बैठक में रखी तो डॉक्टर जी उससे सहमत न हुए और दो–तीन दिन बाद स्पष्ट शब्दों में उसे अमान्य कर दिया।

इस घटना के थोड़े दिन बाद ही नागपुर में 'ताराबाई सर्कस' आया। उसके संचालकों ने श्री मार्तण्डराव जोग के आग्रह पर एक खेल के पाँच–छः सौ रूपये संघ को दे दिये। उसे स्वीकार करते ही कुछ लोगों ने डॉक्टर जी से प्रश्न किया कि "आपने यह पैसे कैसे ले लिये?" इस पर डॉक्टर जी ने जो उत्तर दिया वह मननीय है। उन्होंने कहा कि "सर्कस और नाटक में अन्तर है। इसके अलावा ये पैसे लेने पर भी इस प्रकार के पैसों के भरोसे से संघ का काम चले यह कल्पना मुझे असह्य लगती हैं संघ का कार्य तो स्वयंसेवकों तथा संघ–हितैषी लोगों द्वारा सहर्ष अर्पण की गयी दक्षिणा पर ही निर्भर रहना

चाहिए।"

आन्दोलन की सम्भावना बढ़ते समय डॉक्टर जी को पैसे की तंगी अधिक अनुभव में आने लगी। यह दिखता है कि संघकार्य के बढ़ते व्यय को सँभालने के लिए स्वयसेवक तथा संघ–हितैषियों के पास से 1930 की फरवरी में उन्होंने निधिसंग्रह किया था। हितचिन्तकों के लिए निकाले गये निवेदन–पत्रक में उन्होंने लिखा था कि "..................
........आज तक हम लोगों ने बिना पैसे के कैसे काम किया यह हमें ही पता है। परन्तु उसके आगे संघ को बिना पैसे के काम करना कठिन होगा, यह अत्यन्त नम्रतापूर्वक आपको बताना चाहता हूँ। इसके लिए उदारहृदय लोगों से अंशदान लेकर एक बड़ी निधि संग्रह करने का विचार है। परन्तु अभी हम मासिक चन्दा माँगने के लिए आपके पास उपस्थित हैं तथा आपसे अत्यन्त विनम्र निवेदन है कि अपनी आय में से एक दिन की आय हमें मासिक चन्दा के रूप में देकर उपकृत करें। हमारी यद्यपि प्रार्थना यह है फिर भी आप सहर्ष जो देंगे उसे हम आनन्द से स्वीकार करेंगे।"

स्वयंसेवकों के पास से भी उस वर्ष पैसे जमा करने पड़े। उनके पास से आयु और सम्पत्ति के प्रमाण से क्या अपेक्षा है इसके नियम डॉक्टर जी ने जिस कागज पर लिखे थे उसके अन्त में दो सूचनाएँ भी लिखी हुई मिलती हैं। इन सूचनाओं से एक बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि यद्यपि चन्दे की अनिवार्यता नहीं थी पर श्रद्धा और आत्मीयता से किसी ने कितना भी धन दिया वह अपर्याप्त ही होगा इतनी आवश्यकता उस समय अनुभव में आ रही थी। वे लिखते हैं कि "..................ऊपर लिखे हुए किसी भी हिसाब से चन्दा देना सम्भव न हो तो स्वयंसेवक के चालक को बताने पर उससे बिलकुल चन्दा नहीं लिया जायेगा। संघ का स्वयंसेवक होने के लिए चन्दा देना आवश्यक नहीं।" इसके नीचे विशेष सूचना यह है कि "ऊपर दिये हुए चन्दे की दरें कम से कम हैं। उन्हीं दरों पर चिपटे रहने की आवश्यकता नहीं। इतना ही नहीं इस महान् कार्य के लिए ज्यादा–से–ज्यादा साम्पत्तिक त्याग करने के लिए सिद्ध होकर जितना अधिक चन्दा दिया जा सके उतना

देना आवश्यक है।" यह निधि संग्रह करते हुए भी डॉक्टर जी ने बराबर ध्यान रखा कि मिलने वाले पैसे के साथ–साथ देनेवाले के मन की प्रसन्नता भी बनी रहे। उनका लोक संग्रहक स्वभाव उन्हें अन्यथा आचरण करने नहीं दे सकता था।

हिंगणाघाट के पिस्तौल–काण्ड के बाद संघकार्य की ओर सरकार की संशयदृष्टि स्पष्ट प्रतीत होने लगी थी और अब तो सरकार–विरोधी आन्दोलन भी शुरू होने वाला था। सरकार का अनुमान था कि डॉक्टर जी संघ चलाते हैं तो भी उनके पूर्व इतिहास की ओर ध्यान दिया तो आन्दोलन शुरू होते ही वे उसमें कूद पड़ेंगे अतः उनकी नीति के बारे में पता लगाने का प्रयास सरकार की ओर से होने लगा। सरकार की इस हलचल का पता डॉक्टरजी को भी लग गया था। उन्हें लगता था कि आन्दोलन शुरू होते ही सरकार कुछ–न–कुछ चाल निकालकल उन्हें जेल में डाल देगी और तब उनके घर में संघ की बैठकें चलाना तथा कार्यालय रखना सम्भव नहीं होगा। उस समय कोई गड़बड़ न हो इसलिए उन्होंने मोहिते बाड़े के पास वॉकर रोड से लगे हुए दशोत्तर के बाड़े में कार्यालय के लिए एक अलग जगह किराये पर ले ली। भाड़े के मासिक बीस रुपये जमा करने की भी उन्होंने व्यवस्था कर दी। बाहर से यह दिखाने के लिए कि वह विद्यार्थियों के रहने का स्थान है उन्होंने दो छात्रों, श्री तुम्बडे और श्री वाटवे, को वहाँ रख दिया।

1930 के प्रारम्भ से ही महात्मा गाँधी ने 'यंग इण्डिया पत्र के द्वारा सत्याग्रह का प्रचार धूम–धड़ाके से शुरू कर दिया था। उसमें यह नीति घोषित की गयी थी कि "सत्याग्रह का आन्दोलन शुरू होने पर देश के एकाध भाग में अत्याचार हुए तो भी आन्दोलन बन्द नहीं होगा।" इससे सरकार और भी अधिक हड़बड़ा गयी। गाँधी जी का वायसराय से पत्र व्यवहार भी शुरू था। उनकी माँगे पूरी नहीं होनेवाली हैं ऐसा लगते ही उन्होंने दिनांक 12 मार्च को साबरमती–आश्रम से उनासी सत्याग्रहियों के साथ नमक का कानून तोड़ने के लिए समुद्र के किनारे दाण्डी के लिए प्रस्थान करने की घोषणा कर दी। दौ सौ मील का पैदल प्रवास और प्रचार करते हुए 'दाण्डी–यात्रा' 5 अप्रैल को पूरी हुई

तथा 6 अप्रैल को प्रातःकाल महात्माजी ने समुद्र में स्नान कर नमक इकट्ठा करते हुए सत्याग्रह का बिगुल बजा दिया। इसके बाद देश में सब जगह पकड़—धकड़ शुरू हो गयी तथा सरकार का दमनचक्र चल निकला। किन्तु लक्षावधि जनता स्वाभिमान से इस चुनौती को स्वीकार करके खड़ी हो गयी और "नहीं रखनी, सरकार जालिम नहीं रखनी" के नारों से सम्पूर्ण वातावरण गूँज उठा।

समूचे भारत में दैनन्दिनि शाखाओं की संरचना—संघ की सच्ची और अजेय शक्ति गाँव—गाँव, नगर—नगर, तहसील, जिला और प्रान्तों में लगने वाली दैनन्दिनि शाखा को ही माना जाता है। इसीलिये डॉक्टर साहब का यह प्रेमपूर्वक आग्रह रहता था कि अब समूचे देश में अधिकाधिक शाखायें लगें जिसमें विशेष रूप से सभी वर्गों के शिशु, बाल, तरुण और प्रौढ़ जन सम्मिलित हों। प्रत्येक बड़े नगर तहसील खण्ड और जिला में एक आदर्श शाखा अवश्य होना चाहिये जिसके कार्यक्रमों और अन्य बौद्धिक, शारीरिक एवं सांस्कृतिक कार्य अनुकरणीय हों।

गुरु जी स्वयं प्रचारार्थ कलकत्ता गये तथा वहाँ दिनांक 22 मार्च सन् 1938 को वर्ष प्रतिपदा के शुभ मुहूर्त पर शाखा प्रारम्भ कर दी। चारों ओर से संघ कार्य—वृद्धि के समाचार निरन्तर प्राप्त हो रहे थे। श्री भाऊराव देवरस ने उत्तर प्रदेश में शिक्षा के लिये जाकर संघ शाखाओं का जाल पूरना प्रारम्भ कर दिया। कराची में भी संघ—कार्य करते हुये श्री बापूराव मिशीकर ने अनेक शाखाओं की संरचना की। पंजाब में तो उत्साह का कोई पारावार ही नहीं था। रावल पिण्डी, सियालकोट आदि स्थानों से भी अच्छे सामाचार प्राप्त हुये। बिहार में भी संघ कार्य शाखाओं के क्रमिक से प्रारम्भ हो चुका था।

मान्नीय एकनाथ रानाडे सन् 1952 में वे संघ के अखिल भारतीय प्रचार प्रमुख बने और उनका कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण भारत वर्ष हो गया। वे जिस प्रकार आवेश में काम करते थे उसी प्रकार अवसर आने पर आवेश पर काबू पाना भी जानते थे। सन् 1956—57 की बात हैं कलकत्ता के देशबन्धु पार्क में सार्वजनिक कार्यक्रम था। परमपूजनीय श्री गुरुजी का

भाषण था। इस विशाल पार्क में एक हिस्सा केवल महिलाओं के उपयोग के लिये था। इसी लेडीज पार्क वाले हिस्से में कार्यक्रम की अनुमति ली गई थी। कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। परमपूजनीय श्री गुरुजी का भाषण हो रहा था। इसी समय कुछ मनचले लड़के द्वार पर आये। वहाँ जो रक्षक स्वयंसेवक तैनात थे उन्होंने उन लड़कों भीतर जाने से रोका। कहासुनी हो गयी। वे लोग कह रहे थे कि 'यह सार्वजनिक पार्क है। हमें भीतर ज़ाने से नहीं रोक सकते।' रक्षक स्वयंसेवक उन्हें समझा रहे थे कि, 'कार्यक्रम की विशेष अनुमति ली गई है। कार्यक्रम प्रारम्भ हो चुका है। अब किसी को भीतर जाने नहीं दिया जायेगा। यह बात इतनी बढ़ गई कि झगड़ा हो गया। पत्थर बाजी शुरू हो गई। लड़को के साथ अब मोहल्ले के लोग भी शामिल हो चुके थे। कुछ ईट पत्थर कार्यक्रम तक भी पहुँचे थे। धड़ाधड़ फटाखे फूटने लगे। यह आवाज सुनकर एकनाथ जी द्वार पर आये और उन्होंने रक्षक स्वयंसेवकों को फटकारा कि किसी तरह झगड़ा टालना चाहिए था। फिर वे उपद्रवी समूह की और बढ़ने लगे। उपद्रवी लड़के ईट–पत्थर फैंक ही रहे थे। उन्होंने कठोरता से रक्षक स्व्यंसेवकों को कहा कि उनके स.थ कोई न आये। केवल श्रीकालीदास बसु (जो उस समय बंगाल के प्रान्तकार्यवाह थे) और श्री केशव दीक्षित (जो बंगाल के प्रान्त प्रचारक थे) उनके पीछे–पीछे चल रहे थे। श्री एकनाथ जी दोनों हाथ पीछे बाँधे निर्भयता से आगे बढ़े। कुछ पत्थर उन्हें लगे भी। परन्तु उन्होंने यह खतरा उठाना ही ठीक समझा। जैसे–जैसे श्री एकनाथजी निहत्थे आगे बढ़ रहे थे। वैसे–वैसे पत्थर फेंकनेवाले उपद्रवी लड़कों का समूह पीछे हट रहा था। उनकी निर्भयता ने मानों उस समूह पर जादू का काम किया था। परमपूजनीय श्री गुरुजी का भाषण समाप्त होने तक वे इसी प्रकार उस उपद्रवी समूह को प्रभावित किये रहे। बाद में उन्होंने कार्यकर्ताओं को कहा, कि 'मारना ही केवल बहादुरी का काम नहीं है। कई बार मार खाने की तैयारी भी रखनी होती है।'

जलाहत विद्युत अग्नि के समान विपत्ति में भी जिसकी प्रज्ञा की द्युति क्षीण नहीं पड़ती वही नेतृत्व का सच्चा अधिकारी है। सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस ने श्री

एकनाथ जी की मृत्यु पर इसीलिए कहा है कि 'एक बलवान यशस्वी कार्यकर्ता और नेता होने के लिए जो गुण आवश्यक माने गए हैं वे सब गुण श्री एकनाथ जी में विद्यमान थे।'

श्री एकनाथ जी संस्कार क्षमता के विश्वासी थे। आधुनिक काल में जब संस्कार व्यवस्थायें ढ़ीली पड़ गईं हैं, परमात्मा की असीम कृपा से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के रूप में वह व्यवस्था पुनरुज्जीवित हुई है। आद्य सरसंघचालक डा0 के0 ब0 हेड़गेवार ने दैनिक शाखा का जो अभिनव प्रयोग सम्पन्न किया वह नया लगते हुए भी व्यक्ति निर्माण के कार्य में पुरातन जैसा ही पुण्य फलदायी है। श्री एकनाथ जी कहा करते थे कि दैनिक शाखा की मिट्‌टी के कण जब शरीर में प्रवेश करते हैं तो मिट्‌टी का सोना बन जाता है। इस अत्यन्त संस्कारक्षम संघशाखा में ही डॉ0 हेडगेवार ने उन किशोरों को एकत्रित किया जो तरुण होकर देश के विभिन्न कोनों में जा पहुँचे और जिनकी गुण–सम्पदा देखकर समाज चकित रह गया।

ऐसा लगता है कि विवेकानन्द केन्द्र की स्थापना में पिछले बीस वर्ष उन्होंने जो पसीना बहाया उससे उनका शरीर रूपी घोड़ा पूरी तरह निचोड़ा जा चुका था। लम्बी बीमारी में उन्हें मस्तिष्क के रक्त संचारण की कठिनाई से बहुत कष्ट हुआ। स्मरणशक्ति क्षीण हो गई। फिर भी इच्छाशक्ति के बल पर वे एकबार पुनः भले चंगे लगने लगे। चाहते तो इस घोड़े को वे किसी अस्तबल में बाँधकर रख सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया 'विवेकानन्द इन्टरनेशनल' नामक एक नये कार्य की आवश्यकता उन्हें महसूस हुई। उनके साथियों ने उन्हें आगाह किया। सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस ने तो इससे पहले दो बार उनके देशभ्रमण के विचार को स्थगित करा दिया था। सभी चिन्तित थे। परन्तु उन्होंने घोड़े को बेतहाशा चाबुक लगाए और विभिन्न प्रान्तों का दौरा किया। जहाँ पहुँचे वहाँ प्रत्येक परिचित व्यक्ति से मिलने की कोशिश की। दो वर्ष की लम्बी बीमारी के टूटे हुए सूत्रों को वे दो सप्ताह में जोड़ लेने की आतुरता से इस बार घूमे थे। सवार की तेज दौड़ की माँग के सामने बेचारा घोड़ा क्या करता? सवार भले ही असीम अनन्त

अविनाशी के हौसले बुलन्द कर रहा था परन्तु घोड़ा तो 'क्षित जल पावक गगन समीरा' वाले पाँच तत्वों की सीमा में मजबूर था।

स्वर्गीय एकनाथ जी को समाज ने तो विवेकानन्द शिला स्मारक निर्माण से जाना किन्तु उन्होंने संघ के प्रचारक के नाते विभिन्न उत्तर दायित्वों को सफलता के साथ पूरा किया। वे संघ के अखिल भारतीय बौद्धिक प्रमुख व दो बार सरकार्यवाह भी रहे।

जिसके अन्दर राष्ट्रीय स्वाभिमान है। जो स्वाभिमानी है उसमें माँगने की प्रवृत्ति नहीं होगी, जिसके अन्दर यह प्रवृत्ति है उसमें स्वाभिमान नहीं हो सकता। स्वाभिमान नहीं तो स्वावलम्बन नहीं। अतः आत्मनिर्भर होने की आकांक्षा को देश के अन्दर जमाना ही आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। देश का प्रत्येक व्यक्ति सैनिक बनकर खड़ा होगा किन्तु अपने देश की रक्षा के लिए दुनियाँ के ऊपर निर्भर नहीं रहेंगे। शक्तिशाली देशों का मुँह नहीं ताकते। ऐसा स्वाभिमान का भाव देश में जगाना है। अपने राष्ट्र को हम प्रथम श्रेणी का राष्ट्र बनाएंगे, ऐसी महत्वाकांक्षा व्यक्ति के जीवन में जागृत करनी होगी। आत्मसम्मान की इस तेजस्वी भावना का ही दूसरा नाम है–राष्ट्रीयता। यह भाव हिन्दुत्व के स्वाभिमान के बिना पैदा नहीं हो सकता। यह देश हिन्दुओं का है, हमारा है, ऐसा भाव 60 करोड़ हिन्दुओं के अन्दर निर्माण करने का संघ का प्रयत्न क्यों है? एकात्मा ही एक समस्या है। सम्पूर्ण देश एक होना चाहिए। इसके लिए हमारे देश के नेताओं ने राष्ट्रीय एकात्मता परिषद् खड़ी की।

आज 60 करोड़ हिन्दू बिखरे हुए हैं, भाषा, प्रान्त, सम्प्रदाय आदि न जाने कितने नामों से। सिख, जैन, आर्यसमाजी, लिंगायत, सनातनी, शैव, वैष्णव न जाने कितने भेदों की चर्चा इस समाज में चलती रहती है। इस प्रकार की बात करने वालों को कोई साम्प्रदायिक नहीं कहता। जो इन सबको मिलाने वाले हिन्दुत्व के स्वाभिमान की बात बोलते हैं। उन्हें ही साम्प्रदायिक कहा जाता है। ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति आज हमारे यहाँ है। किन्तु हम जानते हैं कि हिन्दुत्व के भाव के जागरण से वे सारी संकीर्ण भावनाएँ दब जाती हैं। आसेतु

हिमाचल भारतवर्ष के किसी भी कोने में हम चले जाँय वहाँ की शाखाओं पर भिन्न भाषा के बोलने वाले जो स्वयंसेवक आते हैं वे एक ही भावना लेकर आते हैं कि हम हिन्दू हैं। कोई नहीं सोचता कि तमिल हूँ, तेलगू हूँ, पंजाबी हूँ, सबका एक ही भाव रहता है कि हम हिन्दू हैं—हमारी मातृभूमि एक है, हमारी संस्कृति एक है। इस प्रकार मातृभूमि की भक्ति एवं हिन्दुत्व के अभिमान का संस्कार मन पर होते ही अन्दर की साम्प्रदायिकता, भाषा, प्रान्त और जाति का दुरभिमान सब कुछ दूर हो जाता है और विशुद्ध राष्ट्रीय भावना का संस्कार होने लगता है। यह आज तक का हमारा अनुभव है और इसी अनुभव के कारण लाखों श्रेष्ठ नवयुवक अन्तःकरण से संघ कार्य के पीछे खड़े हैं। जब स्वयंसेवक संघ की शाखा पर आकर ध्वज प्रणाम करके 'नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमि' की प्रार्थना करता है तो उसके सामने सम्पूर्ण देश का चित्र खड़ा हो जाता है। उसकी सारी संकीर्ण भावनाएँ समाप्त हो जाती है। संघ ने हिन्दू राष्ट्र का यह विचार मुसलमानों का विरोध करने के लिए नहीं अपितु 60 करोड़ हिन्दुओं को एकता के रूप में गूँथने के लिए सामने रखा है। क्या देश भक्ति की भावना केवल नारों और भाषणों से पैदा की जा सकती है? कदापि नहीं। उसके लिए ह्रदय पर संस्कार अंकित करने की आवश्यकता है और वे संस्कार नित्य प्रति के अभ्यास से पड़ सकते हैं। इसलिए प्रतिदिन का एकत्रीकरण उसका अनिवार्य साधन है। दैनिक शाखा के बिना भावना की यह दृढ़ता उत्पन्न नहीं होती। यह हमारा अब तक का अनुभव है इसलिए प्रतिदिन की प्रार्थना और ध्वज प्रणाम प्रत्येक स्वयंसेवक के लिए अनिवार्य है। इसके बिना स्वयंसेवक के अन्दर प्रखर ध्येयवाद उसे प्रत्यक्ष कार्य करने के लिए निःस्वार्थता एवं समर्पण का भाव कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता।

इसमें सन्देह नहीं कि अपने कार्य के बारे में जनता में सम्मान है, विश्वास है, निष्ठा है, उसका विश्वास है कि ये लोग सच्चे हैं, ईमानदार हैं, निःस्वार्थी हैं और समाज के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना से ओतप्रोत है, यह विश्वास बहुत बड़ी पूँजी है। इस पूँजी के आधार पर भविष्य वास्तव में हमारा है। यही विश्वास लेकर हमें आगे बढ़ना चाहिए। अन्य

लोगों के पास ऐसा कोई संगठनात्मक आधार नहीं जैसा हमारे पास है। प्रत्येक प्रान्त, जिले और तहसील में अपनी शाखाएँ फैली हैं जिनमें प्रतिदिन लक्षावधि स्वयंसेवक एकत्रित होते है। इस कार्यपद्धति के द्वारा ही हमने इतनी बड़ी शक्ति एकत्र की है। ऐसा होते हुए भी यदि हममें आत्मविश्वास की कमी है तो उसे दूर करना चाहिए। आत्मविश्वास की आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस आत्मविश्वास के साथ दूसरी आवश्यकता है अपने कार्य के बारे मे अत्यन्त निष्ठा की। और निष्ठा के साथ–साथ यदि कर्मठ जीवन न रहा तो सफलता संदिग्ध हो जाती है, शक्ति वृद्धि नहीं हो सकती। यह कर्मण्यता भी नित्य की शाखा के माध्यम से ही उत्पन्न होती है। उसी में अच्छे, ईमानदार, चारित्र्य सम्पन्न, निःस्वार्थी और समर्पित जीवन वाले कार्यकर्ता निर्माण होते हैं। स्वयंसेवकों के अन्तःकरण की पवित्रता बनाए रखने और ध्येयवाद की प्रखरता निर्माण करने की दृष्टि से शाखा अतीव आवश्यक है।

डॉक्टर जी कहा करते थे कि जो परिस्थितियों का गुलाम है वह स्वयंसेवक नहीं हो सकता। हम यह स्मरण रखें कि अपने में गुटबन्दी, दलबन्दी, पदलिप्सा या व्यक्तिगत मान सम्मान प्राप्त करने की लालसा का कोई स्थान नहीं है। यहाँ तो केवल कर्तव्य की भावना और उसके पालन को स्थान है। कर्तव्य जितना कठोर होता है अपना जीवन भी उतना ही कठोर और कर्मण्य चाहिए। व्यक्तिगत अभिमान या अहंकार इस कार्य के साधक नहीं बाधक हैं–इससे व्यक्ति का विकास भी नहीं होता। स्वयंसेवक संघ के अतिरिक्त अन्य चाहे जिस क्षेत्र में कार्य करें उसे अपने स्वयंसेवकत्व का विस्मरण नहीं होना चाहिए। यदि उसे विभिन्न क्षेत्रों में यश, प्रतिष्ठा मिलती है तो यही समझना चाहिए कि उसके सिद्धान्तों की विजय है, सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा हो रही है। सार्वजनिक क्षेत्र में तो अहंकार निर्माण होने की काफी गुंजाइश रहती है और संगठन की उपेक्षा करने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। इससे संगठन को लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। अतः अपने अन्तःकरण में स्वयंसेवकत्व की भावना दृढ़ बनाकर अपने कार्य की विशेषता का सदैव ध्यान रखें।

हमारा व्रत केवल वैचारिक नहीं है, आचरणात्मक है। यदि हमने अपने विचारों की कर्मठता के साथ आलस्य त्याग कर अपने आचरण में उतारा तो आज की परिस्थितियाँ बदलेंगीं, भविष्य निःसन्देह रूप से हमारा ही होगा।

(ख) संघीय व्यवस्था के अनुसार देश को विभिन्न क्षेत्र संभाग, विभाग, जिला, तहसील, एवं खण्डों में विभक्त करके राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति हेतु सुव्यवस्था का संचालन— कोई भी राष्ट्र बिना सुव्यवस्था के अपनी उन्नति कदापि सही ढंग से नहीं कर सकता क्यों कि भारत एक छोटा सा महाद्वीप ही है।

जैसा पूर्व शासकों ने चाहे वे मराहठा, राजपूत एंव मुसलमान रहे हों चाहे वे अंग्रेज रहे हों। उन्होंने पूरे देश को अनेक इकाइयों में विभक्त करके ही शासन को सुचारु रूप से चलाने का प्रयास किया था। जैसे—पूरे देश को उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम क्षेत्रों में बाँटते हुये एक मध्य क्षेत्र भी विनिर्मित किया था। इन क्षेत्रों को क्रमशः प्रान्तों, जिलों, तहसीलों और खण्डों में बाँटकर ग्राम पंचायतों के उपक्षेत्रों में विभक्त कर दिया गया था और उसकी देख—रेख एक प्रमुख अधिकारी को सौंप दी गई थी। ये सब छोटी—छोटी इकाईयाँ स्वतंत्र नहीं थीं वरन् वे सब केन्द्रीय शक्ति के अधीनस्थ रहकर अपनी—अपनी सीमाओं का ध्यान रखते हुये कार्य करती थीं। उनमें पारस्परिक नियंत्रण और सौमनस्य रक्खा जाता था।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का प्रारम्भ में अत्यन्त छोटा रूप था इसलिये काल ओर परिस्थिति के अनुसार पूर्व में कोई स्थायी और समान रूप नहीं था। जब जैसी आवश्यकता अनुभव की गई, उसी प्रकार का परिवर्तन करके संगठन को एक नई दिशा देने का प्रयत्न किया गया। डाक्टर हेडगेवार का कार्यकाल लगभग 15 वर्ष का रहा। उस समय सभी व्यवस्थायें मौखिक रूप से ही सम्पादित होती थीं। यहाँ तक कि संघ का कोई लिखित संविधान भी नहीं था।

आज जैसा बौद्धिक विभाग, शारीरिक विभाग, सांस्कृतिक कार्यकलाप विभाग एवं

अन्यान्य आनुषांगिक संगठनों का विचार भी तब नहीं आया था। प्रारम्भ में संघ के आज के समान दैनन्दिन कार्यक्रम भी निर्धारित नहीं थे। संघ के सदस्य से इतनी ही अपेक्षा थी कि वह किसी भी व्यायामशाला में जाकर पर्याप्त व्यायाम करे। बौद्धिक वर्ग सन् 1927 ई0 के बाद प्रचलित हुआ। इस प्रकार उस समय के बाल एवं तरुण स्वयंसेवक भी श्री अण्णा रवोत की 'नागपुर व्यायामशाला में जाते थे। डाक्टर जी के सभी सदस्य इस व्यायामशाला में दण्ड, बैठक, मलखम्भ, एकदण्डी, द्विदण्डी इत्यादि के कार्यक्रम करते थे। इनमें केवल स्कूली विद्यार्थी एवं कुछ व्यवसायी ही भाग लेते थे। संघ का वाह्य स्वरूप अखाड़े जैसा ही था। उस समय संघ का कोई निश्चित नाम भी नहीं रक्खा गया था। इसलिये 17 अप्रैल 1926 को इस हेतु एक बैठक डाक्टर साहब ने अपने घर पर ही बुलाई जिसमें सभा के 26 सदस्य उपस्थित थे। उनमें से कुछ–कुछ लोगों ने अपने–अपने विचार रखते हुये–'जरिपटि का मण्डल', 'भारतोद्वारक मण्डल' एवं 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ नाम सुझाये। किन्तु फिर अन्तिम नाम 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' ही सर्व सम्मति से स्वीकार कर लिया गया और यही नाम आज तक प्रचलित है।

इसी प्रकार "प्रारम्भ में संघ ने उसी वेश को स्वीकार किया जो कि काँग्रेस अधिवेशन ने समय डॉ0 परांजपे तथा डॉ0 हेडगेवार के नेतृत्व में बनाये गये 'भारत सेवक सामाजिक स्वयंसेवकों का था। इसमें खाकी नेकर, खाकी कमीज, दो बटनों की खाकी टोपी का अन्तर्भाव होता था। नेकर घुटनों के नीचे तक ढीला–ढाला रहा करता था।

सालबाई का मोहित महाल में स्थित बाड़ा ही संघ स्थान बना। इसी में 28 मई सन् 1926 ई0 में विधिवत लाठी की शिक्षा दी जाने लगी। संघ में इस समय तक अभ्यास हेतु अंग्रेजी शब्दावली युक्त आज्ञायें भी ज्यों की त्यों स्वीकार करलीं किन्तु कुछ समयबाद संस्कृत की आज्ञायें प्रचलित की गई जैसे दक्ष, आरम् इत्यादि।

इसी प्रकार पूर्व में मराठी भाषा की प्रार्थना 'नमो मातृभूमि जिथे जन्मजो मी' प्रचलित थी जो प्रायः अन्यान्य प्राथमिक विद्यालयों में गाई जाती थी। इसी वर्ष से 'युद्ध

योग पद्धति' का श्री गणेश श्री अण्णा जी सोहोनी द्वारा किया गया। जब कि वे लाठी शिक्षा के जनक थे इस समय के सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी स्व0 दामोदर बलवन्त उपाख्य भिड़े भट जी। इसी प्रकार 'रक्षा बन्धन' का त्योहार भी डाक्टर साहब की प्रेरणा से संघ में 'प्रथम बार सन् 1926 में ही मनाया गया किन्तु वह त्योहार मात्र बहन और ब्राह्मण की रक्षा ही नहीं करता अपितु राष्ट्रीयता की स्वीकार निर्मिति का महत्वपूर्ण साधन है। इस विचार को रखने के लिये उस समय यह त्योहार तुलसीबाग में दो दिन तक मनाया गया।

इसी प्रकार संघ का प्रथम वार्षिकोत्सव भी डाक्टर साहब के घर पर 1926 में मनाया गया। इसमें संघ के स्वयं सेवकों के साथ–साथ 'अनाथ विद्यार्थी गृह के विद्यार्थी भी उपस्थित थे। कार्यक्रम के अन्त में यह गीत गाया गया।

"परम पावना भगव्या झेण्डया काय दशा तब ही।

जियें जन्मला, जियें तलपता, तिथें ठाँव नाहीं।।

सुना रायगढ़ सुनें पुण्यापुर, सुना महाराष्ट्र।

उदासवाणें तुम्या विणेरे! श्मशान सर्वत्र।।"

(अर्थात् परमपूत भगवाध्वज हुई दशा क्या और जन्मा जहाँ–जहाँ पर चमका, वहीं न तेरा ठौर। सूना हुआ रायगढ़ पूना और महाराष्ट्र हुआ विना है सर्वत्र उदासी श्मशान सवत्र।"[1]

संघ में सर्वप्रथम 'प्रतिज्ञा' का कार्यक्रम मार्च 1928 ई0 में प्रारम्भ हुआ। नागपुर से तीन–चार मील दूर स्टार्कीप्वाइंट' पर। इस कार्यक्रम में कुल 99 दृढ़निश्चयी स्वयंसेवकों ने भाग लिया।

इसी प्रकार विधिवत् दक्षिणा का कार्यक्रम 1928 ई0 से प्रारम्भ हुआ। इस प्रथम कार्यक्रम में चौरासी रुपये 12 आने दक्षिणा हुई।

नागपुर भाग में सन् 1928 के अन्त में कुल 18 शाखायें चाल रही थीं। काशी में भी हिन्दू विश्वविद्यालय के परिसर में शाखा चलती थी। इसमें श्री माधवराव गोलबलकर

उपाख्य 'गुरुजी' भी सम्मिलित होते थे। सन् 1933 ई0 में नाग नदी के पार रेशम बाग में लगभग सवा दो एकड स्थान एक किसान से सात सौ रूपये में खरीद लिया। इस सन् 1933 के अन्त में संघ के अनेक कार्यक्रम इस नये, खुले एवं विस्तृत मैदान पर होने लगे।

सन् 1936 ई0 के 25 अक्टूबर को विजयदशमी के शुभ अवसर पर 'राष्ट्र सैनिक' समिति का जन्म हुआ।

(ग) संघीय संगठन की व्यवस्था– जब संघ शिक्षा वर्गों से प्रतिवर्ष अनेक निश्चयी कार्यकर्ता प्रथम वर्ष, द्वितीय वर्ष एवं तृतीय वर्ष उत्तीर्ण होकर प्रत्यक्ष रूप से शाखाओं में भिन्न–भिन्न प्रान्तों से गये तब इसके एक केन्द्रीय स्वरूप का वृहदरूप से गठन हुआ और उसी के अनुरूप क्षेत्र, प्रान्त, जिला, तहसील, खण्ड और पंचायत केन्द्रों के अतिरिक्त पृथक–पृथक गाँवों से भी एक जैसी ही 'पैटर्न' पर संगठन खड़ा किया गया। इन सभी स्थानों पर प्रशिक्षित स्वयंसेवक पूरे अनुशासन में रहते हुये अशेष रूप से दत्त–चित्त इस कार्य में निर्भीक होकर संघ कार्य बृद्धि करने लगे।

जो ऊपर इकाइयाँ बनाई गई हैं उनमें निम्नलिखित रूप से पूर्ण संयमी और तपस्वी व्यक्ति क्षेत्र प्रचारक, प्रान्त प्रचारक, विभाग प्रचारक, संभाग प्रचारक, जिला प्रचारक, तहसील प्रचारक, खण्ड–प्रचारक इत्यादि जीवनदानियों की नियुक्तियाँ की गईं। इनका सारा मासिक व्यय स्थानीय इकाइयाँ बहन करती थीं। इस प्रकार समूचे देश में इस प्रकार संगठन खड़ा किया गया। यथा–

फिर इस संगठन को प्रत्येक ग्राम में पहुँचाया गया। यह इतना प्रभावी सिद्ध हुआ कि मात्र एक धंटे में लाखों–लाखों स्वयं सेवकों कों सूचना पहुँचाकर उन्हें किसी एक विशिष्ट निर्दिष्ट स्थान पर एकत्र कराया जा सकता था। इस समय तक प्रत्येक जिला और तहसील में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के अपने कार्यालय निर्मित हो चुके हैं।

इसी प्रकार प्रत्येक शाखा भी प्रातः सायं लगने लगी। जिनमें पूर्ण प्रशिक्षित मुख्य शिक्षक, शाखा कार्यवाह, के अतिरिक्त गटनायक के पद रक्खे गये। यही सब अपने–अपने व्यक्तिगत प्रभाव और प्रयास से शाखा में स्वयंसेवकों की अभिवृद्धि करते हैं। एक–एक स्वयंसेवक कम से कम पाँच नये स्वयंसेवक बनाने का व्रत लेकर उसे पूरा करने का सफल प्रयास करता है।

आजकल एक पूर्ण अनुशासित स्थानीय संघीय संगठन है। जिसमें केन्द्रीय इकाई से लेकर ग्राम्य इकाई तक सारे कार्य एक समान आज्ञाओं द्वारा संचालित होते हैं तथा इन सबमें एक रूपता बनी हुई।

इसी संघीय सुव्यवस्था के आधीन आज संघ को पूर्ण रूपेण अनुशासित ढंग से कार्य करते हुये 80 वर्ष हो चुके हैं।

सप्तम अध्याय

द्वितीय सरसंघ चालक

शाखाओं द्वारा विकास

उदात्त चरित्र स्वयं सेवकों का निर्माण

तृतीय सरसंघ चालक

चतुर्थ सरसंघ चालक

आनुषांगिक अन्य संगठन

सप्तम अध्याय

राष्ट्रीय स्वयंसेवक के द्वितीय सर संघ चालक परमपूज्य 'गुरुजी' थे। हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस में प्राध्यापन करने के कारण वहाँ के सभी छात्रों में उनका बड़ा सम्मान था। इसीलिये वे सब उन्हें 'गुरुजी' के अभिधान से उनका स्मरण करते थे। यही संक्षिप्त नाम उनके व्यक्तित्व को उजागर करने के लिये पर्याप्त था।

"अपने राष्ट्र समर्पित और कर्मयोगी जीवन के कारण इस देश के श्रेष्ठ सन्तों, तपस्वियों और महापुरुषों की उज्ज्वल परम्परा को गंगा की शुद्ध, निर्मल और पवित्रधारा की भाँति सतत प्रवाहमान करने वाले वे महान सपूत थे। चारित्र्य, अनुशासन और निःस्वार्थ देशभक्ति के अत्युच्च आदर्श के रूप में उनका जीवन एक खुली पुस्तक की भाँति, हम सभी के समक्ष रहा है। हिमालय की ऊँचाई को छूने वाले और महासागर की गहराई तथा विशालता को अपने ह्रदय में समेटने वाले इस महान व्यक्तित्व के जीवन का परिचय, इस देश की बाल एवं युवा पीढ़ी को कराने के उद्देश्य से ही श्री गुरुजी के जीवन की कुछ झलकियाँ विशेष प्रसंगों पर आधारित उनके संस्मरणों को ही संकलित करने का प्रयास इस ग्रन्थ[1] में किया गया है।"

जब–जब धरती पर अधर्म के बादल घिर–घिरकर समूचे समाज को तिमिराच्छिादित करके धर्म के सूर्यालोक को मन्द सा कर देते हैं, तब–तब कोई न कोई ईश्वरीय शक्ति इस धरा धाम पर अवतरित होकर अपने व्यक्तित्व के प्रखर दिव्य आलोक के द्वारा धर्म की, सदाचरण की एवं सत्य की संस्थापना करने में सफल होती है। राम, कृष्ण बुद्ध आदि ऐसी ही अलौकिक और अनूठी प्रतिभायें सगय–समय पर आईं और अपना अभीष्ट कार्य पूर्ण करके तिरोहित हो गईं। मानव शरीर धारण करने पर उनका क्षणभंगुर शरीर तो अवश्य विनष्ट हो गया। क्योंकि–"जातस्यहि ध्रुवोमृत्यु ध्रुवं जन्म मृत्यस्य च। तस्मादपरिहारेर्थे नत्वं शोचितुमर्हसि।"[2] किन्तु उनका कृतित्व आज भी प्रदीप्त–प्रदीपकी भाँति अह रह जलता हुआ हम सबका पथ प्रशस्त कर रहा है। इस असार–संसार में मात्र कृति ही अवशिष्ट रह

जाती है। संस्कृत के सुभाषित में इसीलिये कहा गया है कि 'कीर्तियस्य सः जीवति।' इसी अर्थ में महान कृतित्वपूर्ण करने वाले महानुभाव अमर कहे जाते हैं।

"हमारी सत्ता की गहराइयों में चिन्तन की नीरवता में एक ज्योर्तिमयी शक्ति हमारी चेतना में एक विशाल और ज्योतिर्म्यी शान्ति की बाढ़ ले आती है जो सभी तुच्छ प्रतिक्रियाओं पर अभिभूत होती है और हमें भगवान के साथ ऐक्य के लिये तैयार करती हैं, जो वैयक्तिक जीवन का एकमात्र प्रयोजन है। अतः जीवन का प्रयोजन और उद्देश्य दुःख और संघर्ष नहीं, एक सर्वशक्तिमान और सुखी उपलब्धि है।"[3] परमपूज्य गोलवकर इसके जीवन्त उदाहरण थे। आइए उनके जन्म, जन्म स्थान एवं माता–पिता, शिक्षा एवं जीवनोद्देश्य पर एक विहंगम दृष्टि डालते चलें :–

जन्म– माघकृष्ण एकादशी जिसे विजया एकादशी भी कहते हैं। अपने पौराणिक महत्व के साथ ही एक युग–पुरुष की जन्म–तिथि होने के कारण ऐतिहासिक महत्व भी प्राप्त कर चुकी है। शक संवत 1827 की माघ कृष्ण एकादशी अर्थात् सोमवार दिनांक 19 फरवरी 1906 ई0 को यह प्रेरणा–पुंज भारत भू पर अवतरित हुआ।

"प्रातःकाल की मंगल बेला में नये दिन के उदय के साथ ही इस नवोदय की कांति चारों दिशाओं में फैल रही थी। नागपुर के भोसलों के राज–प्रसाद में नित्य की भाँति नगाड़े बज रहे थे और शहनाई भी मधुर ध्वनि मानों इस नवागन्तुक के आगमन की सूचना दे रही थी। नागपुर के महाल स्थित श्री बालकृष्ण पन्त रायकर के घर मे सकल सौभाग्य मण्डित श्री मती लक्ष्मीबाई ने एक पुत्र–रत्न को जन्म दिया।"

इस बालक का नाम यद्यपि माधव रक्खा गया परन्तु घर पर उसे सभी लोग प्यार से 'मधु' कहकर ही पुकारते थे। 'माधव' के आगमन के साथ ही उनके मामा रायकर के घर की दशा धीरे–धीरे सुधरने लगी थी, जिसे देखकर उनकी स्नेहमयी मौसी इसका सारा श्रेय माधव को देते हुए दुलार भरे अभिमान से कहती–"अपने घर में यह सवाई माधव राय' ही पैदा हुआ है। (हिन्दू पद पातशाही का सर्वोत्तम उत्कर्ष पेशवा सवाई माधवराव के ही

काल में हुआ। उनके जन्म के समय पेशवा–शासन बड़े संकट में था। किन्तु बाद में सभी संकटों को पारकर गौरव के पद पर प्रतिष्ठित हुआ।) इसी अर्थ में 'माधव' को सवाई माधव राव कहा गया था। कुलरीति और परम्परा के अनुसार इनका पूरा नाम माधव सदाशिव गोलवलकर था।

गुरु जी के माता–पिता एक सामान्य परिवार के थे। पिता श्री सदाशिव राव गोलबलवर मिडिल स्कूल में अध्यापन का कार्य करते थे। उन्हें 'भाऊ जी' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। अध्यापन के व्यवसाय में उन्हें तत्कालीन मध्यप्रदेश के दुर्ग, रायपुर, चाँदा, भण्डारा, बालाघाट, नरसिंहपुर, होशंगाबाद, सरायपाली आदि स्थानों पर रहना पड़ा। गुरु जी की माता जिन्हें ताई' नाम से जाना जाता था, एक धार्मिक वृत्ति, पावित्र्य एवं वात्सल्य की मूर्ति थीं। गृहस्थी का कारोबार सँभालते हुये भी यदा–कदा वे तीर्थ–यात्रा पर निकल पड़तीं।[4]

वाल्यकाल–तीन चार वर्ष की आयु में माधव ने अपने पिता से सुन–सुनकर अनेक संस्कृत के श्लोक कंठग्र कर लिये थे। इतनी छोटी उम्र में भी उनमें बुद्धि आ गई थी कि प्रसाद–रूप में मिलने वाली थोड़ी सी चीनी (शक्कर) भी घर के सब लोगों में बाँटकर खानी चाहिये। जब वे छैः वर्ष के हुये तब इनके पिता जी ने 'रामरक्षा स्तोत्र' की पुस्तिका दी। तब माधव उसके संयुक्ताक्षर युक्त संस्कृत श्लोकों को ठीक से नहीं पढ़ पाते थे। अतः उन्होंने पिता जी से कहा–"आप मुझे रामरक्षा स्तोत्र सस्वर पढ़कर सुनाइये। इसे सुनकर में याद कर लूँगा और माधव ने उन स्तोत्र को न केवल कंठग्र कर लिया अपितु सम्यक आरोह–अवरोह के साथ गाकर पाठ भी करने लगा। इस असमान्य स्मरण शक्ति के कारण 'मधु एक पाठी है' कहकर सर्वत्र उसकी प्रशंसा की जाने लगी। सन् 1953 ई0 में माधव के चौथी कक्षा में पूरे नर्मदा संभाग में सर्वाधिक अंक पाकर एक छात्र वृत्ति भी प्राप्त की।

माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा–माधव सदैव गौरवशाली छात्र रहे। इनकी वक्तत्व

कला प्रभावी और अनुकरणीय थी। काशी में मालवीय जी इनकी इस क्षमता को देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुये। उनमें अच्छी तार्किक शक्ति विद्यमान थी। सन् 1922 ई0 में चन्द्रपुर के ज्युबिली हाईस्कूल से शालान्त परीक्षा उत्तीर्ण की। इण्टर साइंस की कक्षा में प्रवेश हेतु यह पुणे के फर्ग्यूसन कालेज में प्रविष्ट हुये किन्तु बाहरी प्रदेश के होने के कारण तीन ही माह में उन्हें नागपुर वापस आना पड़ा। इसके पश्चात् माधव को नागपुर के ही प्रोटेस्टंट ईसाई मिशन के हिस्लाय कालेज में प्रवेश मिल गया।

इण्टर की परीक्षा अंग्रेजी प्रावीण्य सहित सन् 1920 ई. में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। पुनश्च इन्हें लखनऊ के मेडिकल कॉलेज में उच्च शिक्षा प्राप्त करने लखनऊ भेजा गया, किन्तु वहाँ भी प्रवेश न मिल पाने के कारण बी0 एस0 सी0 करने के निमित्त माधव को सन् 1926 ई0 में हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी भेजा गया। यहीं से माधव ने प्राणिशास्त्र विषय लेकर सन् 1928 ई0 में एम0 एस–सी0 की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् 1935 ई0 में आपने कानून की परीक्षा भी उत्तम श्रेणी में उत्तीर्ण की किन्तु बकालत नहीं की केवल इसलिये कि इस व्यवसाय में बहुत झूठ बोलना पड़ता है जो उनके स्वभाव में विल्कुल प्रतिकूल था। माधव को शोध करने की इच्छा थी पर उनकी यह इच्छा अपूर्ण ही रह गई।

व्यवसाय– पिता की ही भाँति पुत्र ने भी व्यवसाय के निमित्त प्राध्यापन को ही चुना। मद्रास में रहने के उपरान्त गुरुजी काशी आ गये और हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राणिशास्त्र के प्राध्यापक बन गये। यह सन् 1930 ई0 की बात है। अध्यापन करने के साथ–साथ अन्यान्य गतिविधियाँ भी प्रारम्भ हो गईं। उन्होंने संस्कृत का विविध साहित्य, पाश्चात्य दर्शन, श्री रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द का ओजस्वी साहित्य, विविध धर्मों के आधार ग्रन्थ आदि का अध्ययन भी किया।

वैराग्य एवं आध्यात्म की और झुकाव– संगीत में आपने अत्यधिक निपुणता प्राप्त कीं वह बहुत अच्छी बांसुरी और सितार बजाते थे। इसी प्रकार हाकी और टेनिस

खेलने मे पटु थे। यहीं माधव का सम्पर्क संघ के क़ार्यकर्ताओं से हुआ। आद्य सरसंघ चालक डॉ0 हेडगेवार की प्रेरणा से कुछ छात्रों ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की एक शाखा स्थापित की थी। गुरु जी जब मद्रास से नागपुर लौटे तब अपने एक वर्ष के प्रवास में डॉ0 हेडगेवार से उनका परिचय हो चुका था।

संघ–कार्य में सातत्य, बिना ढोल पीटे कार्य करते रहने की पद्धति तथा इस प्रकार व्यक्ति को प्रखर राष्ट्र भक्ति से ओतप्रोत कर विशुद्ध समाज सेवा के लिये प्रेरित कर क्रमशः समष्टि में विलीन कर देने की जीवन–दृष्टि आदि कुछ ऐसी बातें थीं जो किसी भी सात्विक वृत्ति–सम्पन्न व्यक्ति को अपनी ओर सहज आकृष्ट कर लेतीं।

संघ स्वयं सेवकों के सदाचार एवं सद्‌भावना पूर्ण व्यवहार तथा अनुशासन प्रियता से महामना पं0 मदन मोहन मालवीय भी इतना प्रभावित हुये कि उन्होंने विश्वविद्यालय के परिसर में ही संघ शाखा के लिये पृथक स्थान एवं कार्यालय के लिये कमरे की व्यवस्था कर दी।

सन् 1930 ई0 में गुरुजी कहीं अन्यत्र चले गये। बाद में पता चला कि श्री विवेकानन्द के गुरु बन्धु स्वामी अखण्डानन्द के पास अपनी आध्यात्मिकता की प्यास शान्त करने के लिये सन् 1936 ई0 में वह सारगाछी आश्रम जा पहुँचे। यहाँ उन्होंने स्वामी जी की अत्यधिक सेवा की और साधना में निरन्तर रत रहकर एक सफल साधक के रूप में गूरुजी ने दीक्षा तो प्राप्त की है। साथ ही जिस ईश्वरीय संगीत से अपनी वीणा के तार मिलाने को वे उत्सुक थे, वह मनोकामना भी पूरी हो गई। यहीं उन्हें अपने गुरु स्वामी अखण्डानन्द जी से यह निर्देश मिला "दरिद्र दुखी, अनपढ़ तथा अज्ञ–जनों की सेवा ही सच्ची ईश्वरीय सेवा है। वही तुम्हारे भगवान हैं। उनकी सेवा ही तुम्हारा परमोच्च धर्म हैं।" यहीं गुरु जी ने "नर–नारायण–सेवा" का व्रत लिया और स्वामी अखण्डानन्द जी के 7 फरवरी 1937 में ब्रह्मलीन होने पर वे पुनः नागपुर वापस आ गये।

स्वामी अखण्डानन्द जी के आश्रम में रहते हुये गुरु जी ने सिर तथा दाढ़ी के बाल

बढ़ा लिये थे। तारुण्य के तेज से पूर्ण उनके मुख–मण्डल पर वे बहुत शोभित होते थे। एक बार स्वामी जी ने उनके विखरे हुये मुलायम बालों पर हाथ फेरते हुय स्नेहपूर्ण होकर कहा कि "ये बाल तेरे खूब फबते हैं" देखना, इन्हें कभी कटवाना नहीं।' स्वामी जी के हुलास भरे आदेश को गुरु जी ने स्वीकार किया और जीवन पर्यन्त बाल नहीं कटवाये।

संसारी होने के नाते गुरु जी के माता–पिता की यह इच्छा थी कि वह परिणय–सूत्र में बँधकर उनका वंश–वर्द्धन करने में अपनी कुल परम्परा का निर्वाह करे किन्तु उनकी नौ सन्तानों के बीच एक मात्र बचे गुरु जी को यह तनिक भी पसन्द न था। परिणाम स्वरूप उन्होंने आजीवन अविवाहित रहने की भीष्म प्रतिज्ञा कर डाली। क्योंकि वह सोचते थे कि यदि मुझे राष्ट्र–कार्य में प्रवृत्त होना है तो व्यक्तिगत जीवन की ओर ध्यान देने का अवकाश ही कहाँ है? इस सम्बन्ध में उनका कहना था–"भारत माता की महान सेवा के इस महान कार्य में मुझ जैसे अनेक वंश खप जायें तो भी कम होगा। इस प्रकार अभिवृद्धि की चिन्ता उन्हें बराबर रहने लगी। सन् 1938 ई0 में गुरु जी नागपुर संघ शिक्षा वर्ग के 'सर्वाधिकारी' रहे। इसी वर्ष उन्होंने मात्र एक दिन में ही महान क्रान्तिकारी श्री बालाराव सावरकर की 109 पृष्ठवाली प्रसिद्ध पुस्तक 'राष्ट्र मीमांसा' का मराठी से अंग्रेजी में अनुवाद कर डाला जो उनके अध्ययन–अध्यवसाय और उनकी अलौकिक प्रतिभा का अनूठा उदाहरण था।

डाक्टर हेडगेवार का प्रत्यक्ष सान्निध्य– डॉ0 हेडगेवार संघकार्य के निमित्त जहाँ–जहाँ जाते थे, गुरुजी को भी साथ ले जाते। इस प्राकर निरन्तर दो वर्षों तक डाक्टर जी के सान्निध्य में रहने के कारण उनके व्यवहार और कार्य–शैली से गुरु जी अत्यधिक प्रभावित हुये और डाक्टर जी के प्रति उनका आदर भाव बढ़ता ही गया।

सन् 1932–33 ई0 में की एक घटना! बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में एक सभा में पं0 मदन मोहन मालवीय जी छात्र तथा प्राध्यापक वर्ग के सम्मुख व्याखान दे रहे थे। "हिन्दुस्थान हिंदुओ का" इस सिद्धान्त का समर्थन वे कर रहे थे। यह सिद्धान्त सुशिक्षित लोगों को भी समझाने की आवश्यकता उस समय थी। अपने प्रपिपादन में मालवीय जी ने

कहा कि, जिस देश में जिस समाज की बहुसंख्या होती है, उसी समाज का वह देश माना जाता है! अपनी इस पवित्र जन्मभूमि का नाम है हिन्दुस्थान। इस देश में हिन्दुओं की ही बहुसंख्या है, इसी कारण हिन्दुस्थान हिन्दुओं का ही है।" तालियों की गडगडाहट में, एक तरुण खड़ा होकर कहने लगा, "आप के इस युक्तिवाद से मैं सहमत नहीं हूँ। उसे अपने विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभाग की ढीठ छात्र मान कर उन्होंने कहा–"हिन्दुओ की बहुसंख्या होने के कारण ही हिन्दुस्थान हिन्दुओं का देश है–यह सरल युक्तिवाद तुम्हें सम्मत नहीं है? फिर तुम्हारा मत क्या है?" इस संवाद में उस तरुण को पहचानने वाले श्रोता आपस में कहने लगे–"अरे ये तो अपने गोलबलकर "गुरुजी" है।"

हिन्दु विश्वविद्यालय में, प्राणिशास्त्र (बायालोजी) में एम, एस–सी0, परीक्षा उत्तीर्ण होने पर, माधव सदाशिव गोलबलकर उसी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त हुए थे। मालवीय जी चकित हुए थे। उन्होंने पूछा "क्या हिन्दुओं का हिन्दुस्थान, इस सिद्धान्त का तुम्हारा विरोध है?"

इस सिद्धान्त पर मतभेद होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। वह एक निरपवाद सिद्धान्त है।

"तो फिर तुम किस बात पर सहमत नहीं हो" मालवीय जी ने पूछा।

उस सौम्य स्वर में श्री गुरुजी बोलने लगे। "मैं हिन्दू राष्ट्रवादी हूँ। हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है यही मेरा मत है। किन्तु हिन्दुओं की बहुसंख्या है, इसी कारण हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है, यह बात नहीं है। अगर दुर्भाग्य से सम्पूर्ण हिन्दुस्थान में हिन्दु समाज अल्पसंख्य हुआ तो आपके प्रस्तुत युक्तिवाद के अनुसार हिन्दुस्थान हिन्दुओं का नहीं, यही सिद्ध होगा। इस देश में सर्वत्र बेरोकटोक जारी धर्मान्तरण के कारण या किसी प्रलय के कारण, एक भी हिन्दु रहा तो भी हिन्दुस्थान हिन्दुओ का ही है, यही मेरा मत है।"

गुरुजी के उस प्रखर युक्तिवाद से सारी सभा स्तब्ध हुई। सभा समाप्त हुई। मालवीय ने श्री गुरुजी को अपने निवासस्थान पर बुलाकर, उनका परिचय पाया। प्रायः एक

सप्ताह भर 'हिन्दुत्व'—इस विषय पर दोनों की भरपूर चर्चा हुई।

सन् 1922 में चन्द्रपुर के ज्युबिली हायस्कूल नामक सरकारी विद्यालय से शालान्त परीक्षा उत्तीर्ण हुए अपने मेधावी सुपुत्र को 'डाक्टर' बनाने की श्री भाऊ जी (श्री गुरु जी के पूज्य पिता श्री सदाशिव बालकृष्ण गोलवलकर) की इच्छा थी। 'मधु' को इन्टर साइंस की कक्षा में पुणे के फर्ग्यूसन कालेज मे प्रवेश प्राप्त करवाया गया था। किन्तु किसी नियम के कारण तीन ही मास के बाद उन्हें नागपुर वापिस लौटना पड़ा। नागपुर में प्रोटेस्टंट ईसाई मिशन के हिस्लाप कॉलेज में उन्हें प्रवेश मिला।

इण्टर की परीक्षा अंग्रेजी प्रावीण्य सहित प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने पर भाऊ जी ने मधु को लखनऊ के मेडिकल कालेज मे पढ़ाई के लिए भेजा था, किन्तु किसी कारण वहाँ प्रवेश न मिलने से बी0 एससी की परीक्षा के लिए वाराणसी के हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने का निर्णय हुआ। सन 1926 में बी0 एससी और 1928 मे प्राणिशास्त्र विषय में एम एससी परीक्षा उन्होंने प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की श्री भाऊ जी और माता लक्ष्मीबाई अपने मधु के भावी जीवन का विचार लौकिक दृष्टि से करते थे। इतनी उच्च उपाधि प्राप्त करने पर उच्च सरकारी नौकरी प्राप्त करने हुए गृहस्थाश्रमी जीवन का शुभारंभ मधु करे, यह विचार स्वाभाविक था। विशेषतः आठ अपत्यों की अकाल मत्यु के कारण, व्यथित माता—पिता के अन्तःकरण में अपने वंश की अखंडता के लिए, पुत्र के विवाह तथा सुखी परिवारिक जीवन के विचार आना स्वभाविक था। अपने प्रिय विषय—प्राणि—शास्त्र में शोध कार्य करते हुए डॉक्टरेट की उच्च उपाधि प्राप्त करने का अपना संकल्प उन्होंने पिता को बताया।

भाऊ जी शासकीय माध्यमिकशाला में शिक्षक थे। शीघ्र ही सेवानिवृत्ति पाने पर नागपुर से 40 किलोमीटर दूर रामटेक तीर्थ क्षेत्र में रामगिरी के राममंदिर के सोपान मार्ग पर छोटे से अपने मकान में वानप्रस्थाश्रमी जीवन व्यतीत करने की योजना उन्होंने की थी। इस अवस्था में भी प्राणिशास्त्र में शोधकार्य करने की पुत्र की इच्छा पूर्ण करने के लिए,

आवश्यक आर्थिक भार उठाना उन्होंने मान्य किया।

मद्रास में माधवराव का शोधकार्य प्रारम्भ हुआ। भाऊ जी प्रतिमास 50 रूपये भेजते थे। मत्स्यालय से एक कि0 मी0 दूरी पर ट्रिप्लिकेन विभाग में मितव्यय करते हुए माधवराव का शोधकार्य चल रहा था। आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन तथा योगाभ्यास भी साथ में हो रहा था। परन्तु मद्रास की जलवायु उन की शरीर प्रकृति के अनुकूल नहीं रही। उत्तम डाक्टरों के उपचारों से भी स्वास्थ्यलाभ नहीं होता था। इस समय सेवानिवृत्ति के कारण पिता जी उनका आर्थिक भार उठाने मे असमर्थ हुए। इन दो कारणों से विवश होकर माधव राव अपना शोधकार्य छोड़ कर 1929 के मई में नागपुर लौट आये।

मामा श्री आबाजी रायकर के घर में उनका निवास रहा। रायकर कोचिंग क्लास उन दिनों नागपुर में विशेष प्रसिद्ध था।

मद्रास के वास्तव्य में माधवराव का स्वभाव–वैशिष्टय व्यक्त करने वाली एक उल्लेखनीय घटना हुई। जिस मत्स्यालय मे वे शोधकार्य कर रहे थे, उसे देखने, हैदराबाद के निजामशाह अपने शाही परिवार के साथ आये थे। बिना शुल्क प्रवेश न देने का मस्त्यालय का नियम था। निजामशाह का ठाठ देखकर किसी ने उनसे प्रवेश शुल्क की माँग नहीं की। नियम का उल्लंघन माधवराव को ठीक नहीं लगा। परन्तु उन्होने निजामशाह से प्रवेश पत्रिका माँगी। प्रवेश पत्रिका का नियम बताकर उन्होंने निजामशाह को रोक दिया। उनके सचिव द्वारा प्रवेश पत्रिका लाई जाने पर ही निजामशाह को प्रवेश मिल सका।

मद्रास से लौटने पर माधवराव को तीन महीनों के लिए हिस्लाप कॉलेज मे काम मिला। शीघ्र ही, उनके प्रिय हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राणिशास्त्र के प्राध्यापक पद पर उनकी नियुक्ति हुई। यह नियुक्ति तीन वर्षों के लिए थी। इन तीन वर्षों में ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से उनका प्रथम सम्पर्क हुआ।

सन 1925 की विजय दशमी के शुभ मुहूर्तपर डाक्टर केशव वलीराम हेडगेवार ने

नागपुर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की प्रतिष्ठापना की थी। दो वर्षों की अल्पावधि में यह अपूर्व कार्य, तेजी से बढ़ने लगा।

संघ शाखाओं का विस्तार देश के प्रमुख नगरों में करने की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए, शालान्त परीक्षा मे उत्तीर्ण स्वयंसेवकों को, नागपुर से बाहर, उच्च शिक्षा के निमित्त भेजने का प्रयत्न वे करते थे। 1928 में श्री भैया जी दाणी जैसे संघटक कुशल कुछ तरुण, हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए। उन्होंने विश्वविद्यालय के परिसर में संघ की शाखा स्थापित की थी।

भैया जी दाणी और उनके कुछ सहाध्यायी नित्य संघकार्य में ही व्यग्र रहते थे। इस कारण उनकी परीक्षा की तैयारी ठीक नहीं हो सकी थी। उस वर्ष परीक्षा न देने का विचार वे करने लगे। यह बात माधवराव के ध्यान में आते ही, उनका अभ्यास पूरा करने के लिए उन्होंने उनकी सारी पाठय पुस्तकें पढ़कर उन्हें पढाना प्रारम्भ किय। इसी पढ़ाई के कारण वे कार्यकर्ता छात्र माधवराव को 'गुरुजी' कहने लगे। डॉक्टर हेडगेवार जी को इस गुरुजी के स्वयंसेवकों से मैत्री संबंधों की पूरी जानकारी प्राप्त हुई थी। संघ के प्रति उनकी बढ़ती हुई आत्मीयता का भी उन्हें पता था।

1932–33 में डॉक्टर हेडगेवार काशी गए थे। महामना मालवीय जी से उनकी भेट तथा संघकार्य के सम्बन्ध में चर्चा हुई। विश्वविद्यालय के परिसर में चलने वाली संघशाखा का अनुशासन पूर्ण तथा उत्साहसम्पन्न स्वरूप देखकर मालवीय जी जैसा सत्पुरुष प्रभावित न होता तो ही आश्चर्य होता। काशी के वास्तव्य–काल में श्री गुरुजी के परममित्र प्राध्यापक सद्गोपालजी को नागपुर की संघशाखा का विजया दशमी महोत्सव देखने का निमंत्रण डॉक्टर साहब ने दिया था। उनके नागपुर आने पर आसपास के कुछ नगरों के संघकार्य से उनका प्रत्यक्ष परिचय उन्होंने प्राध्यापक सद्गोपाल तथा श्री गुरुजी को अपने साथ ले जाकर कराया। इसके बाद काशी लौटने पर श्री गुरुजी वहाँ के स्थानिक संघकार्य में अपनी स्वाभाविक तन्मयता से ध्यान देने लगे।

हिन्दू विश्वविद्यलाय के विद्यार्थी तथा प्राध्यापक के नाते श्री गुरु जी का काशी में निवास सात वर्षों तक रहां इस कालावधि में वहाँ के समृद्ध ग्रंथालय का उपयोग उनके समान अन्य किसी ने शायद ही किया होगा।

संस्कृत के शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि आचार्यों के भाष्य ग्रंथों का उन्होंने आमूलाग्र अध्ययन किया था। भरपूर साहित्य उन्हें कंठस्थ था। काशी के इस वास्तव्य काल में रामकृष्ण मठ द्वारा प्रकाशित स्वामी विवेकानन्द का समग्र वाङ्मय तथा थिऑसोफिकल् सोसायटी के उत्तमोत्तम ग्रंथ उन्होंने पढ़े थे। 1933 में प्राध्यापक पद की तीन वर्षों की कालमर्यादा समाप्त हुई और श्री गुरु जी नागपुर लौट आये। बीच में रामटेक में आध्यात्मिक साधना में कुछ दिन उन्होंने बिताये। आवश्यकता होने पर रायकर–कोचिंग क्लास में अध्यापन भी वे करते थे। अध्ययन की तीव्र प्रेरणा के कारण लॉ–कॉलेज में उन्होने प्रवेश लिया। उन दिनों श्री हिदायतुल्ला (जो आगे चलकर वरिष्ठ न्यायाधीश तथा भारत के उपराष्ट्रपति भी हुए थे) उस महाविद्यालय में मुस्लिम कानून पढ़ाया करते थे।

एक दिन गर्भाधान जैसे शास्त्रीय विषय का विवेचन करते हुए, उस से संबंधित हिन्दू परम्परा और इस्लामी परंपरा का तुलनात्मक विवरण करते हुए, इस्लामी परंपरा ही अधिक शास्त्रशुद्ध है ऐसाा अपना अभिप्राय व्यक्त किया। तत्काल दाढ़ी–मूछवाला एक छात्र खड़ा होकर कहने लगा, "महाराज, आपका अभिप्राय गलत है। प्रस्तुत विषय में हिन्दू परम्परा ही अधिक शास्त्रशुद्ध हैं, यह मैं अधिकारवाणी से कह सकता हूँ। उतने में वर्ग समाप्ति की घंटी बजी। प्रा0 हिदायतुल्ला जी ने, उस छात्र को प्रस्तुत विषय में सर्वंकश ज्ञान, मत प्रतिपादन की तर्कशु पद्धति, और अंग्रेजी भाषा पर प्रभुत्व देखकर, हिदायतुल्ला जी चकित मुद्रा से उस छात्र की ओर देखते रहे। उन्होंने अपनी भूल मान ली। तब श्री गुरुजी के परममित्र श्री कोतवाल (जो आगे चलकर मुम्बई के उच्चतम न्यायाधीश और महाराष्ट्र के राज्यपाल तथा लोकायुक्त हुए) और श्री दत्तोपंत देशपांडे, उन्हें कहने लगे, "यह हमारा सहाध्यायी गोलबलकर हिन्दू विश्वविद्यालय में गत तीन वर्षों में प्राणिशास्त्र

का प्राध्यापक था। उसी विषय में डॉक्टरेट– के निमित्त इसने मद्रास में रहकर शोधकार्य भी किया है।" यह तथ्य जानने पर प्रो0 हिदायतुल्ला अत्यंत प्रसन्न हुए। उस दिन से वे श्री गुरुजी को मित्रवत् मानते रहे।

नागपुर में श्री सावलाराम एक अंध व्यक्ति थे, किन्तु संगीत के विशेषज्ञ थे। वे श्री गुरुजी के बचपन से मित्र थे। एक दिन बाँसुरी वादन सीखने की इच्छा, श्री गुरुजी ने अपने बाल मित्र के पास व्यक्त की। सावलकर का अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अच्छा था। श्री गुरुजी उनके लिए आंग्लसाहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथ ऊँचे स्वर में पढ़ते थे और सावलराम तन्मयता से श्रवण करते थे। यह कार्यक्रम बहुत दिनों तक चलता रहा। फुरसत के समय श्री गुरुजी बाँसुरी वादन सीखते थे। केवल तीन महीनों में श्री गुरुजी ने वह कला आत्मसात की। कुछ दिन सितार वादन का अभ्यास उन्होंने किया था।

नागपुर के संघपरिवार में माधवराव को समरस करने के अनेक प्रयोग डॉक्टर साहब ने किए थे। सन् 1934 में तुलसीबाग की केन्द्र शाखा का कार्यवाह पद उन्हें दिया गया। मुम्बई में प्रचारक के नाते कुछ दिनों के लिए भेजा था। अकोला में संघ शिक्षा वर्ग के सर्वाधिकारी का दायित्व उन पर सौंपा गया था। अपनाया हुआ प्रत्येक कार्य तन्मयता से ठीक करने का उनका स्वभाव होने के कारण संघ कार्य का प्रत्येक दायित्व वे उत्तम रीति से निभाते थे। परन्तु उनका अन्तःकरण परमार्थ के प्रति अत्यंत आकर्षित हुआ था। रामकृष्ण–विवेकानन्द की विभूतिमत्ता से वे संपूर्णतया प्रभावित हुए थे। स्वामी भास्करेश्वरानन्द और अमूर्तानन्द (अमिताभ महाराज) के मार्गदर्शनानुसार पत्रव्यवहार के उपरान्त बंगाल के सारगाछी (अर्थात् वृक्षराजि) के विनोद कुटी नामक आश्रम में, प्रत्यक्ष श्री रामकृष्ण परमहंस से अनुग्रहप्राप्त, स्वामी अखण्डानन्द के चरणों में सन् 1936 के जुलाई मास में यह नागपुर का तरुण मुमुक्षु उपस्थित हुआ।

सारगाछी बंगाल में होने के कारण वहाँ का जल–वायु, अन्न तथा सारा परिसर माधवराव के लिए अपरिचित था, किन्तु गुरुसेवा के भक्तिरस में मग्न होने के कारण उसी

में उन्होंने परमसुख का अनुभव पाया। नागपुर के रामकृष्ण आश्रमवासी उनके परममित्र, अमिताभ महाराज, उस कालावधि में सारगाछी में निवास करने आये। उन्होंने 'गोवालकर' (इसी नाम से स्वामी अखंडानन्द जी श्री गुरु जी का उल्लेख करते थे) को मंत्रदीक्षा से अनुगृहीत करने की प्रार्थना तीन बार गुरुदेव के पास की। उस पर वे कहते थे, ठाकुर (श्री रामकृष्ण परमहंस) को पूछ कर जो करना होगा वही मैं करूँगा। 1937 के मकरसंक्रमण के शुभ दिन, स्वामी जी ने अपने इस सेवामग्न शिष्य पर मंत्रदीक्षा का अनुग्रह किया। आशीर्वाद देते समय स्वामी अखण्डानन्द जी ने कहा "अरे गोवालकर, तुझे समाज में रहकर बहुत बड़ा कार्य करना होगा। उस कार्य में तू यशस्वी होगा, मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ।"

इस आश्रमवासी जीवन में गोवालकर की दाढ़ी–मूछ–जटा बढ़ चुकी थी। एक दिन स्वामी जी ने कहा, गोवालकर,। ये दाढ़ी मूंछ और जटा तुझे शोभा देती है। इन का त्याग कभी नहीं करना।

इस दीक्षाविधि के बाद तीसरे सप्ताह में (दिनांक 7 फरवरी 1937) स्वामी अखण्डानन्द समाधिस्थ हुए। उनका प्रियशिष्य गोलवलकर अकस्मात अगतिकया हो गया। इस घटना के बाद एक डेढ़ महीने का समय श्री रामकृष्ण, सारदा माता और स्वामी विवेकानन्द इन विभूतियों के निवास से पवित्र तीर्थश्रेत्रों की यात्रा समाप्त करते हुए, सन् 1937 मार्च के अन्तिम सप्ताह में छह महीनों के बाद श्री गुरुजी नागपुर में वापिस आ पहुँचे।

नागपुर में आते ही वे संघकार्य में अधिक समरस होने लगे। अध्यात्मयोग की साधना की अपेक्षा वे संघयोग की साधना में अधिक मग्न हो गये। डॉक्टर हेडगेवार का जीवनादर्श सम्मुख रखते हुए संघयोग की साधना के लिये अपने जीवन में यथोचित परिवर्तन करने लगे थे।

1939 के मार्च मास में डॉ0 हेडगेवार जी ने नागपुर वर्धा मार्ग पर स्थित सिंदी गांव में अग्रगण्य संघकर्ताओं की एक बैठक आयोजित की थी। इस बैठक में दस दिनों तक

प्रतिदिन सात–आठ धंटों तक विविध विषयों पर भरपूर चर्चा होती थी। उस महत्वपूर्ण बैठक में सर्वश्री आप्पा जी जोशी, गुरुजी, बालासाहेब देवरस, एकनाथ जी रानडे, यादवराव जोशी, कृष्णराव मोहरील जैसे उत्साही और अनुभवी कार्यकर्ता संघकार्य की प्रगति का सर्वंकष विचार–विमर्श कर रहे थे। संघ की प्रार्थना राष्ट्रीय एकात्मता की दृष्टि से संस्कृत भाषा में करने का दूरदर्शी निर्णय इसी बैठक में हुआ। आज की संघ प्रार्थना का मूल आलेख, इसी बैठक में श्री गुरुजी ने लिखा। उसी का संस्कृत श्लोकबद्ध अनुवाद करवाया गया। बैठक की सभी चर्चाओं में श्री गुरुजी तन्मयता से मार्मिक विचार व्यक्त करते थे। स्वयं डॉ0 हेडगेवार उन चर्चाओं का समारोप करते थे।

संघ कार्य की धुरी सँभालने के लिए आवश्यक सर्वस्वर्शी और दूरदर्शी बुद्धिमत्ता, त्याग, तपस्या, तितिक्षा, गंभीरता तथा अपना व्यक्तिगत समष्टिजीवन में विलीन करने की क्षमता इत्यादि देवदुर्लभ गुण श्री गुरुजी के व्यक्तित्व में प्रकर्ष से एकत्रित हुए है,यह तथ्य उस बैठक में सहभागी सभी कार्यकर्ताओं के ध्यान में आया।

" मेरे पश्चात् श्री गुरुजी को सरसंघचालक किया गया तो कैसा रहेगा।" यह प्रश्न उसी समय डॉक्टर जी ने ज्येष्ठ कार्यकर्ता श्री आप्पा जी जोशी के सामने उपस्थित किया। आप्पा जी डॉक्टर साहब के अंतरंग मित्र थे। लोग उन्हें डॉ0 हेडगेवार की दाहिनी भुजा मानते थे। वे अप्पाजी उस समय से श्री गुरुजी को डॉक्टर साहब का ह्रदय मानने लगे। डॉक्टर जी ने श्री गुरु जी को प्रचारक के नाते कलकत्ता भेज दिया। तीन सप्ताह में वर्ष प्रतिपदा के सुमुहूर्त पर (दिनांक 22 मार्च 1939) उन्होंने बंगाल में प्रथम संघशाखा की स्थापना की। 1939 के उस संघ शिक्षा वर्ग के सर्वाधिकारी पद का दायित्व डॉक्टर ने श्री गुरु जी पर सौंपा।

इस शिक्षा वर्ग के बाद डॉक्टर जी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। विश्रांति तथा उपचार के लिए उन्हें नासिक में रखने का निर्णय हुआ। वहाँ उनकी सेवा–शुश्रूषा करने के लिए श्री गुरु जी नासिक में रहे। 'सरकार्यवाह' के प्रमुख अधिकार पद पर श्री गुरुजी

के नाम की घोषणा डॉक्टर जी ने की।

आषाढ़ बद्य द्वितीया–शुक्रवार, शाके 1862 दिनांक 21 जून 1940 प्रातः 9–27 बजे, नागपुर प्रांत संघ–चालक श्री बाबासाहेब घटाटे के बंगले पर डॉ0 हेडगेवार जी ने इहलोक का त्याग किया। अन्तिम क्षण में, "अब आगे चलकर संघ का सारा दायित्व आपको ही सम्हालना है," यह आदेश उन्होंने श्री गुरुजी को दिया था। उस समय श्री गुरु जी की आयु केवल 35 वर्ष की थी। दिनांक 3 जुलाई को तेरहवें दिन के श्राद्ध विधि निमित्त रेशमी बाग संघस्थान पर आयोजित कार्यक्रम में पुराने मध्यप्रदेश के प्रांत संघचालक ॲड् बाबासाहेब पाध्ये ने (आगे चलकर वे नागपुर के उच्चतम–न्यायाधीश हुए थे) डाक्टर हेडगेवार की इच्छानुसार सरसंघचालक पद पर श्री मा0 स0 गोलवलकर उपाख्य गुरु जी के नामकी घोषणा की और उन्हें प्रथम प्रणाम किया। श्री गुरु जी सरसंघचालक हुए उस समय, 1939 में भड़का हुआ द्वितीय महायुद्ध आवेश में था।

अपने 33 वर्षों के कार्यकाल में 35 हजार से अधिक प्रदीर्घ पत्र श्री गुरु जी ने अपने हस्ताक्षर में लिखे। श्री गुरुजी के कार्य को तूफानी गति आयी थी। ऐसी अवस्था में दिनांक 30 जनवरी 1947 के दिन दिल्ली में विश्ववंद्य महात्मा गांधी जी की निर्घृण हत्या हुई। श्री गुरु जी उस समय मद्रास में थे। 1 फरवरी की रात को श्री गुरु जी को कारागृह में बंद किया गया। 4 फरवरी को अन्यायपूर्ण संघ बंदी लादी गयी। दिनांक 5 फरवरी को संघबंदी की वार्ता श्री गुरु जी को कारागृह में प्रथम अवगत हुई। उस समय संघ के विसर्जन का आवेदन अपने परममित्र श्री दत्तोपंत देशपांडे जी के पास लिख कर दिया।

9 दिसम्बर 1948 में संघ शाखा चलाने का शान्तिपूर्ण सत्याग्रह सारे देश में शुरु हुआ। उसकी प्रतिक्रिया में, "सरकार अपनी सम्पूर्ण शक्ति से संघ के इस सत्याग्रह का दमन करेगी। संघ को अपना मस्तक ऊपर उठाने का अवसर नहीं दिया जाएगा।" इस प्रकार की जाहीर घोषणा स्वयं प्रधानमंत्री ने की थी। कारागृह में ठूँसे गए अनेक उच्चशिक्षा प्राप्त संघ सत्याग्रहियों पर लाठी प्रहार जैसे भीषण अत्याचार हुए। करीब एक

लक्ष स्वयंसेवक उनके साथ कुछ संघ प्रेमी तटस्थ सज्जनों को कारागृह में भरती किया गया था। "यह धर्म का अधर्म से, न्याय का अन्याय से, विशालता का क्षुद्रता से और स्नेह का दुष्टता से युद्ध है। विजय निश्चित है, क्योंकि जहाँ धर्म रहता है वहाँ भगवान रहते हैं और जहाँ भगवान होते हैं वहाँ विजय होती है। 12 जुलाई 1949 को सायंकाल संघबन्दी हटाने की सरकारी घोषणा, आकाशवाणी से प्रसारित हुई और 13 को प्रातः बैतूल (मध्य प्रदेश) के कारागृह से श्री गुरु जी मुक्त हुए।

इसी काल में दिनांक 15 अगस्त को असम प्रदेश में प्रचण्ड भूकम्प हुआ। तत्काल श्री गुरुजी ने भूकम्प पीड़ित सहायता समिति की स्थापना की और उस माध्यम से भरसक सेवाकार्य चालू किया। सितंबर में इस कार्य का अवलोकन करने श्री गुरुजी असम प्रांत के दौरे पर गये थे। तत्पश्चात् 1952 में बिहार, आन्ध्र और महाराष्ट्र में अकाल के कारण जो भीषण परिस्थिति निर्माण हुई थी, वहाँ भी सहायता के कार्य में संघ अग्रेसर हुआ था। इस प्रकार की सभी संघीय सेवाकार्यों में प्रेरणा और योजना श्री गुरु जी की ही होती थी। समाज का सनातन श्रद्धा–केन्द्र गोमाता की हत्यापर निर्बंध नहीं लगा। सन् 1952 में रा० स्व० संघ की अ० भा० प्रतिनिधि सभा ने गोहत्या विरोध का आन्दोलन करने का निर्णय लिया। उस आन्दोलन के निमित्त देश भर सर्वत्र संचार करते हुए श्री गुरु जी कहते थे–"सारे संसार ने विरोध किया तो भी हिन्दुओ को अपने मानबिन्दुओं तथा श्रद्धा केन्द्रों का रक्षण करना ही चाहिए।"

गोहत्या पर निरोध लगाने के सारे राष्ट्र की मांग, सरकार के कान तक पहुँचाने के लिए दिनांक 19 नवंबर को संघ द्वारा संकलित दो करोड़ हस्ताक्षरों का अपूर्व संग्रह, श्री गुरु जी ने राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद जी को समारोह पूर्वक समर्पण किया था। श्री गुरु जी के आदेशानुसार 5 हजार स्वयंसेवकों ने 85 हजार गाँवों में जाकर हस्ताक्षरों का यह अपूर्व आन्दोलन यशस्वी किया था। संसार के इतिहास में, इतना विराट कार्य कभी भी और कहीं भी नहीं हुआ था।

सन् 1950 में डॉ0 श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने पूर्व बंगाल में पीड़ित हिन्दुओं का रक्षण करने में सरकार को असमर्थ देख कर केन्द्रीय मंत्रिपद का त्याग किया। राजकीय क्षेत्र में भारतीय धारणाओं का प्रभाव निर्माण करने के उद्देश्य से नया, राजकीय दल (भारतीय जनसंघ) स्थापन करने का अपना संकल्प, उन्होंने श्री गुरु जी के सामने प्रस्तुत किया उस के लिए योग्य कार्यकर्ताओं की माँग भी उन्होंने की। श्री गुरुजी पं0 दीनदयाल उपाध्याय और श्री अटलविहारी वाजपेयी इन दो संघ प्रचारकों पर डॉ0 श्यामाप्रसाद जी के सहकार्य का दायित्व सन् 1951 में सौंपा। इसमें श्री गुरु जी की योजकता कितनी उच्च कोटि की थी, यह सभी जानते हैं। संघ योजनानुसार विविध क्षेत्रों मे कार्य करने वाली संस्थाओं की निर्मिति, उन्होंने व्यक्त की थी। सन् 1951 के बाद अ0 भा0 विद्यार्थी परिषद् तथा भारतीय मजदूर संघ की निर्मिति करने श्री दत्तोंपंत ठेंगडीजी को उन्होंने प्रवृत्त किया। सन् 1962 में श्री बालासाहेब दीक्षित (पुणे) पर प0 पू0 डॉ0 हेडगेवार जी की समाधि के स्थान पर स्मृति मन्दिर की रचना का दायित्व सौंपा। सन् 1963 में कन्याकुमारी में विवेकानन्द शिलास्मारक का दायित्व श्री एक नाथ जी रानडे पर सौंपा। सन् 1964 में श्री दादा साहेब आपटे को विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना का दायित्व सम्हालने, हिन्दुस्थान समाचार के कार्य से मुक्त किया। इन कार्यों के अतिरिक्त वनवासी कल्याण, महारोगी सेवा, राष्ट्रीय शिशु शिक्षा, सन्मित्र सभा इत्यादि भारतीय धारणा के अनुसार कार्य करने वाली अनेक योजनाओं को संघटित स्वरूप में उन्होंने चालना दी।

सन् 1956 में श्री गुरु जी की 51 वी वर्षगांठ निमित्त 51 दिनों का एक अखिल भारतीय कार्यक्रम संघ के कार्यकर्ताओं ने आयोजित किया था। देश के अनेक महानगरों में सार्वजनिक सत्कार तथा श्रद्धानिधि समर्पण के अपूर्व कार्यक्रम हुए। व्यक्तिशः श्री गुरु जी को अन्तःकरण से यह कार्यक्रम अप्रिय था, किन्तु अपने प्रिय सहकारियों की इच्छा को अपनी ओर से विरोध न हो इसी भावना से वे सभी सत्कार समारोहों में उपस्थित रहे थे। अन्यायपूर्ण बन्दी के कारण कुण्ठित संघकार्य के पुनरुत्थान में यह कार्यक्रम बहुत

उपकारक रहा।

सन् 1969 से श्री गुरु जी के स्वास्थ में अस्वस्थता बढ़ने लगी। तथापि उनका प्रवास अव्याहत चालू ही रहा। मजाक में वे कहते थे 'रेलगाड़ी का डिब्बा ही मेरा घर है।" सम्पूर्ण वर्ष की कालावधि में तीन बार वे अखिल भारत का दौरा प्रतिवर्ष करते थे। 1970 के 15 मई के दिन मुम्बई के टाटा मेमोरियल इस्पिताल में उनकी अस्वस्थता के कारण का निदान हुआ। डेढ़ माह के बाद 1 जुलाई को कर्क रोग (कैन्सर) की शल्यक्रिया निश्चित हुई, इसका कारण, पूर्व नियोजित संघशिक्षा वर्गों के कार्यक्रम स्थगित करना उन्हें संमत नहीं था। निश्चित दिन को शल्यक्रिया हुई। उस समय श्री गुरु जी का आयु 64 वर्ष की थी। 4 अगस्त को टाटा मेमोरियल से वे बाहर निकले, तब से 1973 तक प्रवास सभा, बैठकें, पत्र–लेखन इत्यादि सभी नित्य–नैमित्तिक कार्यक्रम वे करने लगे। विश्रांति से उनकी पहचान ही नहीं थी। दिनांक 25 मार्च को संघ की अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा को 40 मिनटों के व्याख्यान द्वारा बैठकर ही उन्होंने संबोधित किया। बाद में सभी से बातचीत हुई। 3 अप्रैल को जीवन के समारोप के तीन पत्र लिखकर, नागपुर–संघकार्यालय के व्यवस्थापक श्री पांडुरगपंत क्षीरसागर के पास, अपना देहावसान होने पर पढ़ने के लिए दे रखे थे। उनमें से एक पत्र में, श्री मधुकर दत्तात्रेय उपाख्य बाला साहेब देवरस (डॉ0 हेडगेवार को काम करते हुए जिन्होंने नहीं देखा होगा, वे बाबा साहेब को देखें–इन शब्दों में जिन का परिचय उन्होंने उत्तराधिकारी सरसंघचालक के स्थान पर नियुक्त करने की अपनी इच्छा लिखी थी।

ज्येष्ठ शुद्ध–पंचमी (5 जून 1973) की रात्रि को 9.5 बजे अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर, श्री गुरु जी सच्चिदानन्द स्वरूप में विलीन हुए। 5 जून 1973 के दूसरे दिन सांयकाल 6 बजने के समय रेशीमबामग मे डॉ0 हेडगेवार जी की समाधि के सामने, राष्ट्र की सेवा में क्षणशः और कणशः चन्दन से समान घिसे हुए उस पवित्र शरीर को चन्दन काष्ठों की अन्तिम शय्यापर मंत्राग्नि दी गयी। संघ की प्रार्थना और भारत माता की जय

कहने पर लक्षावधि लोग विषण्ण अन्तःकरण से वापिस लौटे। एक दिव्य जीवन यज्ञ समाप्त हुआ।

श्री गुरु जी ने लिखे हुए अन्तिम तीन पत्रों में से एक पत्र में, "मेरा श्राद्ध या किसी प्रकार का स्मारक करना नहीं" यह स्पष्ट आदेश दिया है। डॉ० हेडगेवार जी की समाधि के सम्मुख एक विद्युत ज्वालामय यज्ञ कुण्ड बनाया गया है। बस वही है श्री गुरु जी का भौतिक स्मारक। आज सारे संसार में यत्र–तत्र बसे हुए संघ के स्वयंसेवक तथा संघनिष्ठ सज्जन उस पवित्र समाधिस्थान का दर्शन लेने, नागपुर की तीर्थ–यात्रा करते हैं। उनका वाङ्मयीन दर्शन "श्री गुरु जी समग्र–दर्शन" नामक सात ग्रंथों के द्वारा जिज्ञासुओं को हो सकता है। संघ कार्य के विराट् स्वरूप में, उनका चैतन्यमय स्वरूप "परं वैभवं नेतुमेतत् स्वराष्ट्रम्" यथा पूर्व अपनी तपश्चर्या कर रहा है।

(ख) शाखाओं द्वारा विकास– डॉ० हेडगेवार अत्यन्त दूरदर्शी थे। वह विभिन्न राजनैतिक संगठनों की स्थिति देख चुके थे। वह काँग्रेस के भी एक अच्छे कार्यकर्ता और स्वयंसेवकों के कुशल संगठक थे। काँग्रेस से अलग होने के पश्चात उन्होंने स्वयं सेवक का सच्चा और सार्थक स्वरूप निखारा और सन् 1925 की विजय दशमी के पावन अवसर पर 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' की संस्थापना की। इसके स्वयं सेवक और संगठनों के स्वयंसेवकों से भिन्न हुआ करते थे। उनका आचरण और व्यवहार अत्यन्त शालीन और पूर्णरूपेण अनुशासित रहा करता था।" इन्होंने स्वेच्छा से आजीवन 'स्वयसेवक' बनकर अपना सर्वस्व यहाँ तक कि यदि मातृभूमि की सेवा में उन्हें अपने प्राण–पुष्प भी अर्पित करने पड़े, तो भी वह किसी प्रकार पीछे नहीं रहते। ये सब स्वयंसेवक कुछ पाने के लिये स्वयं सेवक नहीं बने थे अपितु स्वेच्छा से अपना तन मन और धन न्योछावर करके (प्रतिज्ञा ग्रहण करते हुये) स्वयं सेवक बने हैं और इसीलिये ये सब अपने राष्ट्र देवता के चरणों में डाक्टर हेडगेवार की भाँति ही सब कुछ अर्पण करने को सदैव तैयार रहते हैं।

डॉ० रामस्वरूप खरे के मतानुसार– "जिस प्रकार टकसाल से एक ही प्रकार के

अनेक सिक्के ढ़ाले जाते हैं ठीक उसी प्रकार डाक्टर हेडगेवार ने भी दैनन्दिनि शाखा रूपी टकसाल से एक से ही त्यागी, बलिदानी, अनुशासन प्रिय, निर्भीक और शील सम्पन्न, सदगुणी तथा सच्चे अर्थों में राष्ट्र भक्त रूपी सिक्के ढ़ाले हैं। इनकी खनक और मूल्य समाज में अनमोल है।" इसीलिये आज समूचे राष्ट्र में इन्हीं संघ शाखाओं के माध्यम से समाज और संगठन का भली भाँति विकास हो रहा है।"[6]

एक सुप्रसिद्ध दैनिक की टिप्पणी यहाँ उद्धरणीय है। पत्र लिखता है "राष्ट्रीय संस्कृति के दर्शन पर आधारित यह विचारधारा केवल आदर्शवादी ही नहीं, प्रत्युत व्यावहारिक भी है। इस विचारधारा में अल्पसंख्यकों को भी पूरा स्थान है, परन्तु शर्त यह है कि राष्ट्र के सर्वोच्च मूल्य के समक्ष वे पूरे ह्रदय से आत्म समर्पण करें। राष्ट्र विश्वव्यापी सत्यों का माध्यम मात्र है, इसलिये उससे अधिक महत्वपूर्ण और कोई सत्ता नहीं हो सकती। वर्ग भेद, भाषा–भेद प्रभृति अनेक भिन्नताओं के रहते हुये भी ऐसा प्रखर राष्ट्रवाद ही राष्ट्र के ऐक्य में सहायक होगा।

समाज, दर्शन, कला, साहित्य तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में भारतीयता की तथा उसके श्रेष्ठ अंश की प्रतिष्ठा ही इस विचार–धारा का लक्ष्य है क्योंकि राष्ट्र ही उसका केन्द्र है।.................राष्ट्र के इस तेजस्वी स्वरूप को पुनः प्राप्त करने के लिये इस विचारधारा के प्रचार के सिवाय अन्य कोई गति दिखाई नहीं देती है। ऐसा नहीं लगता कि यह स्वार्थ प्रेरित या सत्ता लोलुप व्यक्ति की वाणी है, प्रत्युत ऐसा लगता है जैसे स्वयं राष्ट्र–देवता ही अपनी आत्मा को उद्‌घाटित कर रहा है।"[7]

वैसे शाखायें सामान्य सी दृष्टिगोचर होती हैं। नित्य प्रति एक डेढ़ धण्टे संघ–स्थान पर इकट्ठे हुये। कुछ खेल खेले, प्रश्नात्तर हुये, बौद्धिक और सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय गीत दुहराये। समापन के अवसर सभी पँक्तिबद्ध हो ध्वज के समक्ष एकत्र हुये और अन्त में संघ की प्रार्थना की। तत्पश्चात 'विकिर' की आज्ञा से सब एक दूसरेको अभिवादन अथवा 'जय श्री राम' कहते हुये अपने–अपने घर चले गये। इस प्रकार जो व्यक्ति प्रातःकाल प्रातःशाखा

में सम्मिलित नहीं हो पाते, उनके लियें सायं शाखायें स्थापित की गईं। सम्पूर्ण भारत वर्ष, में एक निर्धारित समय पर प्रातः एवं सायं शाखायें लगा करती हैं। इन्हीं शाखाओं में स्वयं सेवक सुसंस्कार सीखता है। सामूहिक रूप से कार्य करने की शैली और स्वावलम्बन का पाठ पढ़ता है। बड़े से बड़े जो संघ शिविर लगा करते हैं, उनमें लक्ष–लक्ष स्वयं सेवक एकत्र होते हैं और पलक झपकते ही उनकी समुचित आवास, भोजन, व्यायाम एवं बौद्धिक की व्यवस्था होती है। इतनी बड़ी संख्या के होते हुये कहीं भी आपको आज्ञावहेलना दृष्टिगोचर नहीं होगी। सभी आत्मानुशासन में आबद्ध प्रदत्त कार्य को करते हुये प्रसन्नमना दिखाई देते हैं। इसमें लघु शंका और दीर्घ शंका जैसी व्यवस्थायें भी सम्मिलित हैं। सभी स्वयंसेवक अपना गणवेश स्वच्छ और पवित्र रखते हैं। समय की पाबन्दी संघ की विश्व–प्रशंसित बात है। दैनन्दिनि शाखाओं द्वारा विकास किस प्रकार सम्भव है, यह तथ्य जानने को मैं द्वितीय सर संघचालक परमपूज्यनीय गुरु जी के कुछ बौद्धिक अंश प्रस्तुत कर रहा हूँ–

"यदि हम स्वार्थ रहित भाव से केवल कर्तव्य के नाते कार्य करते हैं अर्थात् यदि हम अपने कार्यों में आसक्ति नहीं रखते, उनमें से अपने आनन्दोपभोग का प्रयोजन अलग कर देते हैं तो हमारे विविध कर्म एवं उनके फल हम पर प्रभाव नहीं डालते। जब हम बाह्य संसार के धक्कों और प्रभावों से सर्वथा मुक्त हो जाते हैं और अपने सच्चे स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करने की योग्यता प्राप्त करते हैं। इसलिये हमारा दर्शन कहता है कि अपना कर्म, अपना कर्तव्य निष्काम भाव से करो।"[8]

"हमें इस वास्तविक संसार में उसकी बाह्य अभिव्यक्ति देख सकना चाहिये, कोई ऐसी ठोस और सजीव वस्तु जिसे इन्द्रियगोचर करके हम अनुभव कर सकें और जिसके माध्यम से अनुभूति के क्रम को पूर्ण कर सके। हमारे दर्शनिकों ने उस सत्य के बाह्य अभिव्यक्ति के रूप में 'मनुष्य को रक्खा है और उसे पूजा तथा सेवा की वस्तु माना है। उन्होंने घोषणा की है–'हमारे समान ही प्रत्येक मनुष्य उस सत्य की एक स्फुलिंग है। हम

अपने सुख दुखों को अधिकाधिक मनुष्यों के सुख–दुखों के साथ समरस करने का प्रयत्न करें, इस प्रकार अपने व्यक्तित्व का विस्तार करते हुये अन्त में उस महान सत्य को साक्षात् करें जो सम्पूर्ण विश्व में परिख्याप्त हैं। बिना किसी स्वार्थी आकांक्षा अथवा स्वार्थपूर्ण आसक्ति के हम जीवन–दर्शन का विशिष्ट लक्षण रहा है।"[9]

"हृदय की विशालता, मन की शुद्धता एवं चरित्र की उदात्तता सदैव हमारे जीवन–मूल्यों की कसौटी रही है। जहाँ अन्य देशों के सामान्य जन समुदाय ने किसी महान सेना नायक अथवा किसी पराक्रमी राजा की पूजा की है, वहाँ हमारे देश में बड़े–बड़े शूरवीर अथवा सम्राट ने भी ऐसे अर्धनग्न सन्यासियों की चरण–धूलि की पूजा की है जो बनों में निवास करते हैं और जिनके पास अपना कहने के लिये वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता। यही है हमारा जीवन को देखने का नया ढंग। क्योंकि यह हमारा अनुभव है कि अन्तरात्मा का गुण ही स्थायी होता है जो जन्म–जन्मान्तर पर्यन्त अर्थात् तब तक चलता है जब तक वह पूर्णत्व को नहीं प्राप्त कर लेता। यह कुछ, थोड़े से ऐसे आधारभूत तत्व हैं जो हमें वास्तविक एवं असंदिग्ध रूप से हिन्दू बनाते हैं, अपने जीवन में उनको प्रकट करते हैं तथा उन उज्ज्वल कल्पनाओं से सजीव चलते–फिरते वास्तविक प्रतीक के रूप में खड़े हो जाते हैं, तभी उस दिव्य हिन्दू परम्पराओं में हमारा जन्म निरर्थक नहीं होगा।"[10]

"हम आत्म–निरीक्षण करें और धीरे–धीरे उन सभी विशिष्ट हिन्दू–लक्षणों को आत्मसात् करें जिससे कि संसार क समक्ष एक भावात्मक क्रियाशील हिन्दू के रूप में हम खड़े हो सकें। अपने दर्शन अपने धर्म तथा अपने उन महान गुणों के अनुरूप हम जीवन यापन करें जिन्होंने अगणित पीढ़ियों में हमारे जीवन को आकार देने का कार्य किया है। इसलिये यद्यपि हिन्दू–समाज को संगठित करने का विचार साधारण ही क्यों न प्रतीत होता हो, इसका वास्तविक में अर्थ है कि हमें अपने दैनन्दिन जीवन में इस बात का विचार बना रहना चाहिये कि हम हिन्दू हैं और हम अपने जीवन का प्रत्येक छोटे–से–छोटे पहलू उन्हीं महान परम्परागत जीवन मूल्यों के अनुसार ढालेंगे। हम जो कुछ भी करें, हमारा

परिधान हमारा व्यवहार तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में हमारी भावात्मक निष्ठा की छाप स्पष्ट रूप से व्यक्त होना चाहिये। यही है हमारे ऊपर सबसे बड़ा दायित्व।"[11]

"यह मेरा भावात्मक दृढ विश्वास कि यह मेरा हिन्दू राष्ट्र हैं, यह मेरा दर्शन हैं, जिसके अनुरूप मुझे जीना है और जिसका मुझे अन्य राष्ट्रों के अनुसरण के लिये एक प्रति होना चाहिये। हमें अपने राष्ट्रत्व के गहरे एवं भावात्मक संस्कारों को मन से ग्रहण करना होगा जिससे कि राजनैतिक अथवा किन्हीं अन्य विचारों के प्रवाह में हमारे पैर न उखड़ जाँये। हमारे व्यावहारिक दैनन्दिन आचरण में तदनुरूप जीवन प्रतिमान के बिना हिन्दू राष्ट्रत्व तथा हिन्दू–जीवन रचना की महत्ता की बात करना व्यर्थ है। हम अपने जीवन को दिनभर प्रातः से रात्रि तक अनुशासन के भाव से एक आकार प्रदान करें। अनुशासन एवं आत्म संयम के सम्पूर्ण जीवन–क्रम में प्रशिक्षित होने के लिये हिन्दू का जन्म हुआ हैं जो उन्हें जीवन मे श्रेष्ठ लक्ष्य प्राप्त करने के लिये शुद्ध करता हैं और शक्ति प्रदान करता है।"[12]

"हमें यह विस्मरण नहीं होना चाहिये कि श्री राम, कृष्ण, शिवाजी अथवा विवेकानन्द इस प्रकार के 'आधुनिकतावाद' की उत्पत्ति नहीं थे। शिवाजी उन आदर्शों से स्फूर्त थे, जिनकी प्रतिष्ठा रामायण और महाभारत में हुई हैं। वह हिन्दू जीवन के प्रति उनकी महान श्रद्धा ही थी, जिसे उनके संगठन–चातुर्य के साथ मिलकर उन्हें एक ऐसी शक्ति बना दिया जिसने इतिहास की सम्पूर्ण गति को ही बदल दिया। वैदिक काल के सन्तों से लेकर रामकृष्ण, विवेकानन्द, रामतीर्थ तथा इसी प्रकार के अन्य आधुनिक युग के महान आत्माओं तक सभी ने अपने युगों तथा पुरातन आदर्शों के प्रति भावात्मक प्रेम एवं उनकी अनुभूति से युक्त अपने जीवन द्वारा हमारे समाज पर अपने प्रेरणादायी व्यक्तित्व की छाप छोड़ी है। चुनौती देती हुई विरोधी शक्तियों के सामने वे तनकर खड़े रह सके और चुनौती भरे स्वर में विश्व से बात कर सकें। हम उन्हीं की सन्तान किस दयनीय दशा को प्राप्त हो गये हैं। हम उन आदर्शों का क, ख, ग भी नहीं जानते आत्म–विस्तार का प्रथम

पग हैं श्री राम यद्यपि किशोरावस्था में ही थे, पिता की आज्ञा से राक्षसों का वध करने के लिये विश्वामित्र के साथ वन को चले गये तत्पश्चात उन्होंने अपने पिता की प्रतिज्ञा के पावित्र्य की रक्षा के लिये चौदह वर्ष का वनवास प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया। भाई के रूप में लक्ष्मण आदि पर उनका कितना गंभीर प्रेम था। वह थे एक आदर्श पुत्र, एक आदर्श भ्राता, एक आदर्श पति, एक आदर्श हिन्दू पुरुषत्व का सब कुछ समाहित था। ऐसे ही श्री कृष्ण भी थे। यशोदा और नन्द के लिये वह कैसे आनन्द और सान्त्वना के स्रोत थे। किस प्रकार उन्होंने अपने मधुर व्यवहार से सभी पड़ोसियों को मोहित कर लिया था। तत्पश्चात विद्यार्थी जीवन में ज्ञान एवं चरित्र का अर्जन ही हमारी सतत प्रेरणा रही हैं। हिन्दू परम्परा में शिक्षण तथा शिक्षार्थी के सम्बन्ध कोई सम्बिदा के समान नहीं होते। यह एक उदात्त वस्तु है। शिष्य गुरु को ज्ञान एवं दिव्यता की साक्षात् मूर्तिमानता है और उसके प्रति नम्रता और भक्ति की भावना से व्यवहार करता है।"[13]

"अपने संघ संस्थापक डॉ0 हेडगेवार का ही एक उदाहरण है– जब एक बार वह संगठन कार्य से पूना गये थे। तब प्रौढ़ लोगों की बैठक में वहाँ एक सज्जन जो डाक्टर जी के शिक्षक भी रह चुके थे, आमंत्रित थे। डाक्टर जी को वहाँ भाषण देना था। नगर के अनेक गण्यमान लोग उस सभा में एकत्र हुये थे। वह वृद्ध अध्यापक कुछ देर से आये। किन्तु जैसे ही डाक्टर जी ने उन्हें देखा, वे उठ खड़े, हुये और उनके चरण छूकर अपने आसन पर बैठाया। अपने स्थायी जीवन मूल्यों की पृष्ठिभूमि पर ये हैं हमारे वर्तमान जीवन के कुछ वैशिष्ट्य। एक व्यक्ति के ही समान जब तक कोई राष्ट्र अपने स्वधर्म के मूलाधारों पर जमा रहता है तब तक वह चतुर्दिक वृद्धि करता है एवं पूर्ति की उपलब्धि में बढ़ता और फूलता–फलता है। किसी के स्वधर्म की जड़ों को उखाड़ लेना और उनके स्थान पर कुछ और ही आरोपित करनें का परिणामपूर्ण अस्त व्यस्तता एवं पतन ही होगा। संस्कृत ग्रन्थ श्री मद् भगवत् गीता में कहा गया है–"स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावहः।" अर्थात् अपने धर्म का पालन करते हुये मृत्यु भी श्रेयस्कर है। दूसरे के धर्म ग्रहण करन के परिणाम

भयावह होते है। इसलिये हमारे राष्ट्र के स्वधर्म का यह आह्वान है कि हिन्दू–जीवन–पद्धति को पुनरुद्दीप्त करके आत्म–विस्मृति एवं अनुकरण की उस राख को झाड़ दें जो हिन्दू–हृदयों में युगों प्राचीन संस्कारों के हमर अंगारों को ढँके हुये है, जिससे कि इस पवित्र देश की राष्ट्रीय आत्मा की ज्वाला अपने सम्पूर्ण तेज के साथ पुनः प्रज्ज्वलित हो उठे।"[14]

"याद रक्खो कि प्राचीन भावना मरी नहीं हैं। वह जातीय भावना जो शताब्दियों तक होने वाले आक्रमणों के धक्कों में जीवित रही और समय–समय पर जिसने आध्यात्मिक एवं राष्ट्रीय वीरों को बार–बार उत्पन्न किया, निश्चय ही पुनः सक्रिय होगी। उन्हीं प्राचीन आदर्श पुरुषों के, उन्हीं सांस्कृतिक दिव्यात्माओं के अनुरूप हम अपने जीवन का निर्माण करें। हम उसी गौरवशालिनी परम्परा को पुनरुज्जीवित करें जिसने वशिष्ठ, विश्वामित्र, चाणक्य, विद्यारण्य और समर्थ को उत्पन्न किया और जो श्री राम, चन्द्रगुप्त, कृष्णदेव राय तथा शिवाजी के रूप में प्रस्फुटित हुई। सरल एवं लघुमार्ग तथा राजनीतिक प्रलोभ में के सम्मोहनों के बाह्य प्रचार के सम्पूर्ण प्रवेग में हम उसी दृढ़ विश्वास पर अडिग चट्टान के समान खड़े रहें। अपने समाज को एक बार पुनः उसकी राष्ट्रीय प्रतिभा के पथ पर ले जाकर भारत माता को विश्व की सांस्कृतिक मार्गदर्शिका के रूप में पुनः प्रतिष्ठित करने के अपने स्वप्न के प्रति हम सच्चे बने रहें। जब हम इस दृढ़ विश्वास पर हिमालय के समान राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन एवं सांस्कृतिक मूल्यों की पावन धारायें प्रवाहित होगीं। वह उदात्त कल्पना हमारे हृदयों को सदैव प्रेरित करती रहे तथा हम अपने को उस ऐतिहासिक जीवन लक्ष्य–के लिये प्रयास करें फिर चाहें कितना ही समय और शक्ति उसके लिये क्यों न समर्पित करनी पड़ी।"[15]

अन्य संस्थाओं के उपदेष्टा जब किसी को प्रवचन करते हैं तो उसका किंचित भी प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि न तो उनकी वाणी ही सत्यनिष्ठ होती है और न ही आचार–विचार। उनकी करनी कथनी में बहुत अन्तर रहता है। साधना करके उन्हें सिद्ध

करके अपने जीवन में उतारने का शतप्रतिशत प्रयत्न करते है तब कहीं उनकी कथनी और करनी में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता है।

ऐसे महान पुरुष 'आप्तपुरुष' कहलाते हैं और उनकी वाणी ऋषियों जैसी सत्य हो जाती है। यही कारण है कि संघ के जितने भी उच्च पदाधिकारी हैं, वे सत्य के अनन्य उपासक हैं। वे सच्चे राष्ट्र भक्त हैं। उनका जीवन ध्येय एक मात्र सर्वस्व निछावर करके अपनी महीयसी एवं गरीयसी मातृभूमि की– निःस्वार्थ भाव से सेवा करना है। हमारी मातृभूमि साक्षात् माँ है, वह मात्र एक जमीन का टुकड़ा नहीं। यहाँ के निवासियों की सौभाग्यशाली बताते हुये स्वयं देव गण ऐसा कहते हैं–

"गायन्ति देवाः किल् गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।

स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते भवन्तिभूयः पुरुषा सुरत्वात्।"[16]

महर्षि अरविन्द ने इसी मातृभूमि की 'विश्व की दिव्य जननी' कहकर उसे जगन्माता! आदि शक्ति। महामाया एवं महामाया दुर्गा के अभिधान से अभिहित किया है।

विश्वकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर– ने इसी मातृभूमि को 'भुवन मोहिनी' कहकर उसकी अभिवन्दना की है। यथा–"देवि भुवन मोहिनी..............नील सिन्धु जल धौत चरण तल।"[17]

यह वह पवित्र शस्यश्यामला भारत भूमि सदैव वन्द्या रही है। स्वतंत्रता के अमर गायक एवं महान कवि वंकिम चन्द चटर्जी ने अपने 'आनन्द मठ' नामक उपन्यास में 'वन्देमातरम्' के माध्यम से इसकी प्रशस्ति में अपनी पुण्पांजलि प्रदान की है। जिसे बलिदानियों ने 'राष्ट्र गीत'[18] माना था और उसे गाते–गाते हँस–हँसकर फॉसी के फन्दे पर चढ़ जाया करते थे। यथा–

वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्

शस्यश्यामलां मातरम्।

वन्दे मातरम्

शुभ्रज्योत्स्नां पुलकितयामिनीम्

फुल्ल–कुसुमित–द्रुम–दल–शोभिनीम्

सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्

सुखदां वरदां मातरम्।

वन्दे मातरम्।।

कोटि–कोटि कण्ठ–कल–कल निनादकराले

द्विषष्टि कोटि भुजैर्धृत–खर करवाले।

के बोले मां तुमि अबले!

बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीं

रिपुदलवारिणीं मातरम्।

वन्दे मातरम्।।

तुमि विद्या तुमि धर्म

तुमि हृदि तुमि मर्म

त्वं हि प्राणाः शरीरे

बाहु ते तुमि मां शक्ति

हृदये तुमि मां भक्ति

तोमारि प्रतिमा गड़ि मन्दिरे मन्दिरे।

वन्दे मातरम्।।

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी

कमला कमलदलविहारिणी

वाणी विद्यादायिनी नमामि त्वां

नमामि कमलाम् अमलाम् अतुलां

सुजलां सुफलां मातरम्।।

वन्दे मातरम्।।

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां

धरणीं भरणीं मातरम्।।

वन्दे मातरम्।।

।।भारत माता की जय।।[19]

डॉ0 राम स्वरूप खरे के शब्दों में–"इस प्रकार यह हमारी मातृभूमि परम तेजस्विनी, आनन्द दायिनी, देवभूमि एवं मोक्ष प्रदायिनी है। यहाँ इसी दिव्य मातृभूमि के युग्म चरणों की वन्दना करता हुआ हिन्दु महासागर अर्ध्यप्रदान करता है। स्वर्ण खचित हिमांचल इसका किरीट मुकुट है। गंगा–यमुना, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र इसकी केशावालि, उत्तरी एवं दक्षिणी घाट इसकी वरोरू (जंघायें) पूर्व और पश्चिम दिशायें जिसके सशक्त भुजदण्ड हैं और अविजेय विन्ध्य जिसकी मनोरमा कर्धनी है। तपःपूत उषा की अरुणाभा जिसके कपोलों को और अधिक दिव्य सौन्दर्य से अनुरंजित करती है, ऐसी परमतेजस्विनी एवं दिव्य दृष्टि धारिणी तथा सबको प्रश्रय प्रदान करने वाली मेरी मातृभूमि है। इसकी जय हो। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति, संघ का प्रत्येक स्वयंसेवक नित्यप्रति प्रातः सायं इसकी सश्रद्ध अभिवन्दना करता है।" विष्णु पुराण में कहा गया है–

"उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।

वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।[20]

अर्थात् पृथ्वी का वह भू–भाग जो समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में अवस्थित है, 'भारत वर्ष कहलाता है तथा उसकी सन्तानों को भारतीय। 'संस्कृत काव्य के विश्ववन्द्य महाकवि कालिदास ने इस भारत भूमि की इस प्रकार वन्दना की है। यथा–

"अस्त्युत्तर दिशि देवात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।

पूर्वापरौतीय निधीव गाहय स्थितः पृथिव्याः इव मान दण्डः।।"[21]

"हमारे महाकाव्य तथा पुराण भी हमारी मातृ–भू की वैसी ही विशाल मूर्ति

उपस्थित करते हैं। अफगानिस्तान हमारा प्राचीन उप–गण स्थान था। महाभारत का शल्य वहीं का था। वर्तमान काबुल और कन्दहार गान्धार थे तथा कौरवों की माता गान्धारी वहीं की थी। ईरान तक मूलतः आर्य भूमि ही है। इसका अन्तिम राजा रजाशाह पहलवी इस्लाम से अधिक आर्य सिद्धान्तों का अनुसरण करने वाला था। पारसियों का पवित्र ग्रन्थ 'जेन्दावेस्ता' बहुत कुछ ऋग्वेद है। पूर्व दिशा में ब्रह्मा हमारा ब्रह्म देश है। महाभारत में इरावत का उल्लेख आया है, वर्तमान इरावदी घाटी का उस महायुद्ध से सम्बन्ध था। महाभारत में आसाम का उल्लेख प्राग्यज्योतिष के नाम से हुआ है, कारण कि सूर्य का प्रथमोदय वहीं होता है। दक्षिण में लंका भी निकटतम सूत्र में आवद्ध है और उसे कभी भी मुख्य–भूमि से भिन्न नहीं माना गया।

यह था चित्र हमारी मातृ–भूमि का! जिसमें हिमालय पश्चिम में आर्यान (ईरान) तथा पूर्व में शृंगपुर (सिंगापुर) की ओर दो समुद्रों में अपनी दोनों भुजाओं को अवगाहित कर रहा है और साथ ही दक्षिण महासगर में उसके पवित्र चरणों पर चढ़ाई गई कमल की पंखुडी के समान विद्यमान है लंका (सीलोन) मातृभूमि का यह चित्र सहस्त्रों वर्षों से सतत हमारे जन–मानस में देदीप्यमान है। आज भी हिन्दू प्रतिदिन स्नान करते हुये गंगा, यमुना से लेकर गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा और सिन्धु से कावेरी तक पवित्र नदियों का आह्वान करता है।[22] यथा–

"गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन सन्निधिं कुरु।"

अर्थात् गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु तथा कावेरी। तुम्हारा जल हमारे स्नान के जल में सम्मिलित हो।

"संसार में स्वतंत्र, सम्पन्न एवं गौरवशाली राष्ट्र की सत्ता की जीवन प्राण तो मातृभूमि की ऐसी भक्ति है जो तीव्र, क्रियाशील, दृढ़निष्ठ तथा ज्वलन्त हो। हम हिन्दुओं को तो मातृभूमि की अति दिव्य भक्ति उत्तराधिकार में प्राप्त हुई है। भक्ति के वे अंगारे जो

प्रत्येक हिन्दु के हृदय में सुप्त पड़े, हुये हैं, उन्हें प्रज्ज्वलित करो ताकि वे मिलकर और पवित्र ज्वालाओं में परिणत होकर हमारी मातृभूमि पर भूतकाल में समस्त अतिक्रमणों को भस्म करें एवं भारत माता के अतीत की अखण्डित प्रतिमा की पुनः स्थापना का स्वप्न साकार करें।''[23]

वास्तव में प्रकृति की योजना में, जीवन के विकास के इसी प्रतिमान का अनुसरण किया गया है। प्राणी अपनी आदिम अवस्था में आकार हीन दशा में रहता है, जिसे 'अमीना' कहा जाता है। यह एक 'सेल' का एक कोशीय सावयव शरीर होता है, जो अपने में पूर्ण होता है। यह दो समान रूपों में विभक्त किया जा सकता है। जीव पदार्थ की यह प्राथमिक अवस्था होती है जो, विकास के निम्नतम सोपान पर स्थित होती है। जैसे–जैसे विकास में प्रगति होती है, भाँति–भाँति के जीवों की जातियाँ बनने लगती हैं। बढ़ती हुई क्रियाओं को पूर्ण करने के लिये उनके विविध अंग होते हैं। अन्त में मनुष्य शरीर बनता है, जो अनेक अंगों से संघठित एक अत्यन्त संश्लिष्ट यंत्र है, जिसका प्रत्येक अंग अपनी विशिष्ट क्रिया से युक्त है किन्तु फिर भी वे सभी एक सामान्य जीवन–धारा के द्वारा एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। पृथ्वी पर जीव का उच्चतम विकसित आकार यही है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विभिन्न अंग अथवा विविघतायें अपरिपक्वता अथवा विभेद के लक्षण नहीं हैं वरन् अतिविकसित अवस्था के कारण है। सभी अंग यद्यपि प्रत्यक्ष रूपेण विविध आकारों के होते हैं किन्तु सभी शरीर के कल्याण के हेतु कार्य करते हैं और इस प्रकार उसकी वृद्धि तथा शक्ति में योगदान करते हैं। समाज के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की बात होती है। एक विकसित समाज, विभिन्न कर्तव्यों के समुचित व्यापार के लिये अनेक विभिन्न कार्यकारी वर्गों में बँट जाता है। हमारी प्राचीन समाज–व्यवस्था ने प्रत्येक वर्ग के लिये विशिष्ट कर्तव्य निर्दिष्ट किया तथा प्रत्येक व्यक्ति एवं वर्ग का उसकी नैसर्गिक विकास की दिशायें उसी प्रकार मार्ग–दर्शन किया जैसे बुद्धि शरीर के प्रत्येक अंग की क्रियाओं का निर्देशन करती है।''[24]

समष्टि अर्थात् विराट् पुरुष के प्रति श्रेष्ठतम सेवा अर्पण करने की पद्धति में व्यक्ति के विकास के लिये पूर्ण अवसर सुरक्षित था। इस प्रकार की यह अत्यन्त संश्लिष्ट एवं संघठित समाज–रचना है, जिसे हमने व्यावहारिक आदर्शों के रूप में अपने समक्ष रक्खा था और जीवन में ही उसे उपलब्ध करने का उद्योग किया था। दूर से देखने पर यह अवस्था सम्भ्रमकारी असाम्य की अवस्था प्रतीत होती है, किन्तु वास्तव में यह है समाज की अत्युच्च विकसित अवस्था जिसका अस्तित्व सम्पूर्ण संसार में शायद ही अन्यत्र कहीं रहा हो।

'अनेकता में एकता' का हमारा वैशिष्ट्य हमारे सामाजिक जीवन के भौतिक एवं आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में व्यक्त हुआ है। यह उस एक दिव्य दीपक के समान है जो चारों और विविध रंगों के शीशों से ढ़ँका हुआ हो। उसके भीतर का प्रकाश, दर्शक के दृष्टिकोण के अनुसार भाँति–भाँति के वर्णों एवं छायाओं में प्रकट होता है। यही उस अभिव्यक्ति की विचित्र विविधता है, जिससे कुछ लोग कहते हैं कि हमारा एक समाज नहीं है, एक राष्ट्र नहीं है वरन् यह बहुराष्ट्रीय देश है।

यदि हम अपने समाज जीवन के इस सही मूल्यांकन को ग्रहण करें तो उसकी वर्तमान व्याधियों का भी विश्लेषण कर सकेंगे तथा उनके उपचार के लिये उपायों की भी योजना करने में समर्थ होंगे।

अन्तिम निष्कर्ष के रूप में सभी ने उस एक परम सत्य को लक्ष्य के रूप में प्राप्त करने के लिये कहा है, जिसे ब्रह्म, आत्मा, शिव, विष्णु, ईश्वर अथवा शून्य या महाशून्य तक के विविध नामों से पुकारा जाता है। देखिये यह निम्न लिखित श्लोक किस सुन्दरता से हिन्दू दर्शन के विविध ग्रन्थों में स्वरैक्य एवं संकल्प का समावेश करता है–

" यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो

बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्तेति नैय्यायिकाः।

अर्हन्नित्युत जैनशासरताः कर्मेति मीमांसकाः

सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।"

अर्थात् जिसकी उपासना शैव शिव मानकर करते हैं, वेदान्ती जिसे ब्रह्म मानकर उपासते हैं, बौद्ध जिसे बुद्ध और तर्क पटु नैयायिक कर्ता मानकर आराधना करते हैं एवं जैन लोग जिसे अर्हत् मानकर तथा मीमांसक जिसे कर्ता बताकर उपासना करते हैं, वही त्रिलोकी नाथ हरि हमारी इच्छाओं को पूरा करें।

व्यक्ति को उपासना–स्वातंत्र्य का यह अधिकार इसीलिये प्राप्त था कि प्रत्येक के लिये अपनी विशिष्ट आध्यात्मिक प्रकृति ने अनुकूल आध्यात्मिक भोजन चुनने का स्वातंत्र्य हो। पंथ–विभेद के कारण हमारे देश में (भूतकाल में) कभी रक्त–पात अथवा अपवित्र प्रतिस्पर्धा नहीं हुई। यहाँ तक कि जब किसी ने अपने मत का मण्डन अथवा दूसरे के मतों का खण्डन का प्रयास किया तब भी सिर फुटब्बल नहीं हुई। इस आन्तरिक एकत्व की गम्भीर धारा का कैसा सुन्दर निरूपण किया गया है। निम्न लिखित श्लोक में–

"त्रयी सांख्यां योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रूचीनां वैचित्र्या ऋजु कुटिलनाना पथ जुषां
नृणामेको गम्य स्त्वमसि पयसामर्णव इव।।"

अर्थात् जिस प्रकार सभी जलों का मन्तव्य समुद्र ही होता है वैसे ही हे ब्रह्मा! सभी मनुष्यों के तुम एक मात्र लक्ष्य हो। मनुष्य अपनी रूचि के अनुसार तुम्हारी पूजा के लिये भिन्न–भिन्न मार्गों का अनुसरण करते है। चाहे वह रास्ता सीधा हो या टेढ़ा। यह विचार करते हुये कि जिन विभिन्न मार्गों–जैसे वेद, सांख्य, योग, शैव और वैष्णव के विश्वासों में वही मार्ग श्रेष्ठ या पूर्ण है।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि अपने धर्म का सर्व व्यापी स्वरूप पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण के कारण हमारी दृष्टि से ओझल हो गया है। हम सबको जागना होगा और जागकर पुनः धर्म के विराट, चिरन्तन एवं उदात्त स्वरूप को सही ढ़ंग से पहचानना होगा,

इसी में हम सबका कल्याण निहित है।

(ग) उदात्त चरित्र स्वयं सेवकों का निर्माण—डॉ0 हेडगेवार जी कहा करते थे कि हमारे यहाँ पाश्चात्य, जीवन मूल्य नहीं चल सकते क्यों कि उनका मूल आधार भौतिकवाद है। अगर भारतीयों को अपनी सर्वाङ्गीण उन्नति करनी है तो दृढ़ता पूर्वक भारतीय—जीवन मूल्यों को ही अपनाना पडेगा। निःसन्देह हमें सबके अभ्युदय के लिये सांस्कृतिक मूल्यों की सदैव अपेक्षा रहेगी। सद्गुणों का समुच्चय ही संस्कृति कहलाती है। इस प्रकार "जीवन की गुणता संस्कृति का एक मूल प्रश्न है। स्वयं संस्कृति एक ऐसा तत्व है जो जीवन को गुणता प्रदान करती है और साथ ही जीवन की गुणता एक ऐसी आधार शिला है जो संस्कृति के निर्माण में सहायक होती है।

पश्चिम में जहाँ भौतिक उपलब्धि ही सब कुछ है, वहाँ जीवन की गुणता का अर्थ धन—सम्पन्नता मात्र है। उनके बीच उन बातों के लिये कोई स्थान नहीं है। जिनसे कोई धन—लाभ न हो अथवा जिसका मूल्य धन—सम्पति में न मापा जा सके। वह क्रिया—कलाप और आदर्श जो बदले में ऐश्वर्य की उपलब्धि में सहायक न हो, वहाँ कोई अर्थ नहीं रखता। मानव जीवन—मूल्य, सौन्दर्य, व्यक्तिगत, ज्ञान, और उच्चतर आदर्शों का उनके लिये तब तक कोई मूल्य नहीं जब तक वे पैसा बटोरने के साधन नहीं बनते।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भौतिक आवश्यकतायें जीवन में प्राथमिक महत्व रखती हैं किन्तु उन्हीं को सर्वोच्च मानकर चलना बहुत भारी भूल होगी और भौतिक आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति की भी एक सीमा होती है। उससे बाहर उनको तूल देना अवैध और अमानवीय ही कहा जायेगा। सम्पन्न देशों का उदाहरण हमारे सामने है जो भौतिक वस्तुओं को इकट्ठा करने की होड़ मे कूड़े के ढेर खड़े कर रहे है।

यह ठीक है कि जीवन के लिये अन्न, वस्त्र, आवास आदि कई सुविधाये अनिवार्य हैं और उनके बिना जीवन की गुणता की कल्पना करना सम्भव नहीं किन्तु आवश्यकताओं की ही नहीं भोगों की कोई सीमा नहीं होती। एक की पूर्ति के बाद माँगों का दुष्चक्र स्वयं

पैदा हो जाता है और प्राप्ति के लिये जीने लगता है। वह समाज को क्या दे रहा है, इसकी चिन्ता उसे नहीं होती, केवल उपभोक्ता बनकर जीना जीवन की गुणता का आधार कभी नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में जीवन की गुणता को एक नारे की तरह भले ही उछाला जाये, नकारात्मक सामाजिक वार्तावरण में जिसमें औद्योगीकरण और पर्यावरणीय शोषण चरम विन्दु पर पहुँच गया है, इतना दुख–दर्द, निराशा और अवमूल्यन है कि मानव जीवन दो–चार चीजों का नाम है भी नहीं–वह तो अगणित जैविक, भौतिक, रासायनिक और आत्मिक तत्वों पर आधारित एक विलक्षण अहसास है जो अस्तित्व के हर क्षण की याद दिलाता है।

भक्त और सन्त बार–बार काल का स्मरण इसीलिये करवाना चाहते हैं क्योंकि उसके प्रति जागरूक होकर वे जीवन को सार्थक बनाने का सन्देश देते हैं। यह धर्म की बहुत बड़ी देन थी। जब काल ही नियति है तो भोग, संचय और परिग्रह स्वतः अपना महत्व खो बैठते हैं। हमारे पुरातन समाज में त्याग, दान, पुण्य, उपकार और सेवा के साथ–साथ सन्यास और वानप्रस्थ की समृद्ध परम्परा थी। गृहस्थ का आदर्श सहभागिता पर निर्भर था जिसे कबीर के शब्दों में यो कहा जा सकता है–

"साईं इतना दीजिए जामें कुटुम समाय।

मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाय।"

वस्तुतः गृहस्थ अपने लिये ही नहीं दूसरों के लिये भी उपार्जित करता था और चींटी से लेकर पशु पक्षियों तक उसे बाँट कर खाता था। दूसरी ओर सन्त सिर्फ कमण्डल लेकर जीवन की सार्थकता की खोज मे लौकिक जीवन की विपरीत दिशा में चल पड़ता था। यह तभी सम्भव हो पाता था जब व्यक्ति के सामने उसके जीवन का लक्ष्य होता था। कोल्हू के बैल की–सी जिन्दगी जो संसार चक्र में जुती हुई होती थी, वह मात्र देह धर्म का पालन करती है किन्तु उसमें गुणवत्ता का सामवेश तभी होता है जब व्यक्ति जीवन की अर्थवत्ता खोजता है।

'स्व' की चेतना मनुष्य के सांस्कृतिक और आत्मिक बोध को विकसित करती है। आत्मबोध के साथ ही वह जागरूकता आती है जिसमें मनुष्य केवल भौतिक जगत का भोक्ता बनकर ही नहीं रहता बल्कि समाज, धर्म, नैतिकता, बौद्धिक चिन्तन के रचनात्मक संसार का भी सहभागी बनता है। वह यथार्थ और सम्भावना के बीच एक समझ पैदा करता है। जीवन की गुणता इसी समझ पर निर्भर करती है।

जीवन की गुणता शासन, समाज, धर्म, नैतिकता और व्यक्ति की अस्मिता से आती है। अस्तित्व के विभिन्न आयाम तथा भावों और विचारों की संरचना मानव व्यवहार और आचरण को प्रभावित करती है। हमारे जीवन का वैशिट्य हमारी अस्मिता और समाज की शक्तियों पर निर्भर करता है।

भले बुरे सभी भावों का जीवन में महत्व है। भाव–शून्य व्यक्ति सुखी और गुणवान नहीं हो सकता। भाव–जीवन के कार्य का मूल प्रेरक तत्व होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि औचित्य को ध्यान में रखकर भावों का सदुपयोग भी सम्भव है। विकास की लम्बी यात्रा में मानव ने उन पर अंकुश रखना सीखा है और संस्कृति के उन्नयन का आधार ही इनका उदात्तीकरण रहा है। फिर भी महत्वपूर्ण बात यह हैं कि मनुष्य का एक अपना सामाजिक मानसिक और भावात्मक जीवन होता है जो उसकी सहज प्रवृत्तियों, चेतना, अवचेतना, ऐन्द्रिय अनुभवों तथा बौद्धिक तत्वों पर निर्भर करता है। चेतना के निचले स्तर पर मनुष्य प्रकृति भी पशु जैसी है, किन्तु मानस–समाज एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें उसकी अंगभूत व्यष्टि अपने दैनन्दिनि–जीवन में नये गुणों को अर्जित करती जाती है। वस्तुतः संसार रूपी वृक्ष का मूल मन ही कहा गया है। 'अस्य संसार वृक्षस्य मनोमूलमिदं स्थितम्।''[25] इस प्रकार मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है।[26]

सभी प्रणियों को अपने भीतर ओर सब प्राणियों के भीतर अपने को देखना सर्वभूतहित कामना की सबसे बड़ी उपलब्धि है। यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति के सब मित्र हों कोई भी शत्रु न रहे। यथा–''मित्रस्य चक्षुसा समीक्षामहे।''[27] प्रेम के अभाव में न

एकता की कल्पना की जा सकती है और न समता की। सबका एक समान भाव से चालित होने का आदर्श भारत ने बहुत पहले जान लिया था। यथा–"संगच्छध्वं वं सं बदध्वं संके मनांसि जानताम्।"[28]

एकता और समानता के मानव मूल्यों की सर्जना के पीछे भारतीय संस्कृति और चिन्तन–धारा का मानवतावादी पक्ष ही रहा है जिसने मानव के आन्तिरक गुणों को प्रोत्साहन और पल्लवित किया। प्राकृतिक वातावरण, समाज–निर्माण की आवश्कताओं और एक उत्तम कोटि के जीवन की परिकल्पनाओं ने आदिम समाज तक को इन गुणों को अर्जित करने के लिये प्रेरित किया। इस प्रकार परीक्षित आदर्शों के पीछे नीति और धर्म की चेतनायें जीवन से जुड़ती रहीं तो वह संस्कृति की सार्थक उपलब्धि कहलायेगी। वेदों में जीवन की गुणता पर विशेष बल दिया गया। उपनिषदों में भी सामान्य से विशेष की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति मिलती है। सामान्य में विशेष की अवस्थिति "सामान्ये हिविशेषोंऽर्भवति।"[29] और इसका अहसास "सर्व खलु इदं ब्रह्म" के अनुभव से होता है।

जीवन की समृद्धि के लिये मनुष्य का मनुष्य से जुड़ना पर्याप्त नहीं है। एक–एक फूल, एक एक पत्ती, एक एक जीव से जुड़ना जब उसकी सम्वेदना का अंग बनता है तब सच्ची मानवता जागती है। अपनी भूमि, जल, वन–सम्पदा और पर्यावरण के प्रति अनुराग देश प्रेम का गुण पैदा करता है। इस गुण के कारण देश के इतिहास और भूगोल के प्रति जो राग उपजता है, वही संस्कार का निर्माण करता है और संस्कारों की राशि ही देश–भक्ति अथवा राष्ट्रीयता का स्थायी भाव बनता है, उसी से संस्कृति का निर्माण होता है। इस सन्दर्भ में एक विशिष्ट दार्शनिक एवं विद्वान की विचारधारा का मनन करना अत्यन्त समीचीन है। यथा–

"तुम इस जगत का पूरा आनन्द तब तक नहीं ले सकते जब तक कि समुद्र स्वयं तुम्हारी नसों में न बहने लगे, जब तक कि आकाश तुम्हारी पोशाक और सितारे तुम्हारे मुकुट न बन जायें और तुम अपने आपको इस सम्पूर्ण जगत का उत्तराधिकारी न मानने

लगे।"[30] अतएव आवश्यकता इस बात की है कि देश और धरती तथा उस पर वास करने वाले मनुष्यों, जीवों और वनस्पति–जगत को प्रत्येक व्यक्ति से स्नेह मिले। लोग सत्य, ज्ञान, प्रेम–और कर्म के लिये अपना बलिदान करने को सन्नद्ध रहें। प्रेम और त्याग ही ऐसे भाव हैं जो देश को उसकी गुणता और सार्थकता प्रदान करते हैं। जीवन की गुणता जीवन जीने की पद्धति से आती है।

प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। 'सुख मन की एक स्थिति है जो आन्तरिक गुणता से आती है। सुख केवल इन्द्रियों का स्वाद नहीं है। हिसाब लगाकर सुख उपलब्ध नहीं किया जा सकता। जो अधिक पाना चाहते हैं, कई बार कुछ नहीं पाते और जो उसकी खोज नहीं करते वे उसमें डूबे रहते हैं। जो सुख की कामना करते हैं, उन्हें चाहियें कि वे जीवन को मानवीय गुणों के साथ जियें। सुख की वासना भोग है। जीवन की गुणता भोग पर नहीं, जीवन दृष्टि और सम्यक् कर्म पर निर्भर करती है। बुद्ध ने आष्टांगिक मार्ग में सम्यक् दृष्टि, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि को इसी अर्थ में स्थान दिया है। सच्चा सुख समग्रता में और समग्र के साथ जीने में है। वह सबके हित चिन्तन, परोपकार, पुरुषार्थ जैसे आदर्शों के पालन से ही सिद्ध हो सकता है।"[31]

"सुख से भी बड़ी उपलब्धि आनन्द की है। आनन्दावस्था योगियों के लिये ही सम्भव है, पर सामान्य जन यदि सुख की साधना को भी लक्ष्य मानकर चले तो भी ह्रास के इस युग में भी उस सबकी रक्षा करनी होगी जो कुछ आत्मा के उत्थान के लिये जरुरी है। यह मानी हुई बात है कि मनोविकारों का उदात्तीकरण उत्तम जीवन का पहला सोपान है। ऊँचाईयों पर पहुँचकर जीना सबके लिये सम्भव नहीं, किन्तु सामान्य जन में भी कुछ–न–कुछ ऐसा होता है जो उससे बेहतर जिन्दगी की तलाश करवाता है। यदि वह भावात्मक रूप से प्रतिबद्ध हो तो वह जीवन को एक उत्सव के रूप में निभा सकता है जिसमें उमंग, उत्साह, सहनशक्ति एवं सक्रियता का योग हो। जीवन पर विश्वास हो, भूमि से जुड़ाव हो और जन–जन के प्रति आत्मीयता का भाव हो तो उसके परिमार्जन की

प्रक्रिया कभी रुकती नहीं। जीवन रस–स्रोत बने और 'चरैवेति' का मूल मंत्र कानों में गूँजता रहे तो जीवन की गुणता कोई खोट नहीं पैदा होने देगी।"[32]

यदि उपर्युक्त सभी बातों का ध्यान रक्खा गया हो निश्चित है कि जो भी व्यक्ति (बाल, तरुण अथवा प्रौढ़) इन विचारों के सम्पर्क में आकर देश–भक्ति एवं राष्ट्र प्रेम का अनुयायी बनेगा वह निःसन्देह डाक्टर हेडगेवार की भावनाओं के अनुरूप एक श्रेष्ठ स्वयं सेवक ही सिद्ध होगा। ऐसे ही धीर, वीर, व्रती, ध्येय निष्ठ और साहसी तथा शील–सम्पन्न तरुण (स्वयं सेवक) अपने राष्ट्र को परम वैभव के शिखर पर बिठला सकेंगे।

स्वयं सेवकों के समक्ष डॉ0 हेडगेवार का पूर्ण समर्पित जीवन एक आदर्श (मॉडल) के रूप में विद्यमान है। बस, एक मात्र हम उन्हीं जैसे बन सकें, यही पर्याप्त है। पद–हस्तान्तरण के लिये आज कैसी–कैसी लड़ाइयाँ और तिकड़में भिड़ाई जाती हैं कि शर्म के मारे हमारा शिर झुक जाता है। पर 'तज बाप' को राज बटाऊ की नाई।' जैसा श्रेष्ठ उदाहरण रखकर डाक्टर हेडगेवार जीवन–मुक्त हो गये। 'आजीवन सतत जागरूक और संघ कार्य की वृद्धि में ही प्रत्येक श्वास नियोजित करने वाले इस महान दृष्टा को अपनी अन्तिम श्वास की गुरुता विदित थी। जीवन भर सँजोयी थाती को सुयोग्य हाथों में सौपने का समय आ चुका है, यह उसे विदित था। यज्ञ की पूर्णाहुति का मंत्रोच्चारण, आरती के दीप–निर्वाण के समय मंत्र पुष्पांजलि अथवा साधना की सफलता पर उपास्यदेव के चरणों में सिद्धि समर्पण की आतुरता में जितना मांगल्य जितनी पवित्रता, जितना उत्साह और कृतकार्य होने की तत्परता रहती है, वैसी ही आतुरता से उन्होंने श्री गुरु जी से कहा–"अब लम्बर–पंक्चर करने का समय आ गया है। मैं बच गया तो ठीक है अन्यथा संघ का सम्पूर्ण कार्य आप सँभालिये।"

माता का स्नेह, गुरु का मार्गदर्शन, पिता का दायित्व, जहाँ एक साथ एकत्रित हो गया था, वहीं अपनी समस्त पूँजी हस्तान्तरित कर रहा था। संघ का सरसंघ चालक शरीर बदलता है, आत्मा नहीं। बड़े महत्वपूर्ण कार्य का आह्वान था। अन्तिम वाक्य और सम्पूर्ण

भविष्य की व्यवस्था इन सरल शब्दों मं निहित थी।"[33]

वास्तव में डाक्टर साहब ने जैसा श्रेष्ठ और अनुकरणीय जीवन जिया उसी प्रकार श्रेष्ठ एवं वरेण्य मृत्यु भी प्राप्त की। "जिस को आहुति स्वरूप अर्पित करने में पूर्णता का अनुभव करता है, उसी प्रकार डाक्टर जी ने अपने शरीर को यंत्रणा तथा त्याग की अग्नि में समर्पित कर दिया था। यही हमारी गौरवमयी परम्परा रही है। परन्तु आजकल हम सुनते हैं कि हमें अपने तारुण्य में बहुत अधिक श्रम नहीं करना चाहिये जिससे कि हमारा जीवन—काल छोटा न हो जाये। वृद्धावस्था में कुछ और अधिक वर्ष घसीटने मात्र के हेतु यौवन के मूल्यवान क्षणों को व्यर्थ नष्ट करने के परामर्श का डॉक्टर जी उपहास करते थे। हमें वस्तुतः स्वयं को माता की बेदी पर उसी समय अर्पित करना चाहिये जबकि यौवन विकीर्ण रहा हो। आभा तथा सुगन्ध से रहित मुरझाये हुये पुष्प को अपने राष्ट्र देव की पूजा में अर्पित करना एक अपवित्र व्यवहार होगा। यही थी मानव—जीवन की उपयोगिता के सम्बन्ध में उनकी श्रेष्ठ कल्पना। वे इसी प्रकार जिये और इसी प्रकार उनकी मृत्यु हुई।"34 काश ऐसी मृत्यु हम सबको मिल पाती।

अभूतपूर्व संगठन व्यवस्था के कारण संघ विभिन्न विषम परिस्थितियों में घबड़ाया नहीं। यथा 1949 ई0 में संघ के ऊपर प्रतिबन्ध लगा। उसके विरोध में भारी सत्याग्रह हुआ था। इसके पश्चात प्रतिबन्ध उठा लिया गया। इसी प्रकार सन् 1975 ई0 में भी प्रतिबन्ध लगा, सत्याग्रह हुआ, संघर्ष हुआ तब शासन को प्रतिबन्ध हटाने के लिये वाध्य होना पड़ा। हमारा कार्य पूर्ववत फिर प्रारम्भ हो गया।

हमारी कार्य पद्धति ऐसी है कि जब कुछ बन्धु एकत्र आते हैं तो कार्यक्रम की शुरूआत परिचय से होती हैं हर एक स्वयंसेवक खड़ा होता है। अपना नाम बताता है, अपना काम बताता है, अपना गाँव बताता है और संघ में उसके ऊपर कौन सा दायित्व है, यह बताता है किन्तु संघ का स्वयं सेवक परिचय कराते समय यह कभी नहीं कहता कि में 'मीसा' के अन्दर ऐसे ऐसे कारागृह में इतने महीने बन्द था। यह हमारा स्वभाव विशेष

है।

22 मार्च को प्रतिबन्ध हटा। हमारा काम उसी दिन से ठीक से शुरू हो गया। सरकार समझती थी कि प्रतिबन्ध के कारण संघ का काम हमने समाप्त कर दिया लेकिन यह काम प्रतिबन्ध के कारण समाप्त होने वाला नहीं था। हमारा सम्पर्क कायम था। हमारी 'फेम वर्क' कायम था। हमारा साँचा–ढाँचा सब कामय था। मैं 21 मार्च को नागपुर जाने को निकला बड़े प्रसिद्ध कारागृह यरवदा से। इसी में गाँधी जी भी थे, तिलक जी भी थे, पटेल भी थे और नेहरू जी भी थे। पूना से बम्बई जाते समय कल्याण स्टेशन पर हजारों स्वयंसेवक मेरा स्वागत करने के लिये आ गये और उन्होंने कहा–''अभी अभी रेडियो पर खबर आई है कि संघ पर से प्रतिबन्ध हट गया।'' बम्बई पहुँचने पर भी इसी प्रकार बहुत से स्वयं सेवकों ने स्वागत किया। वहाँ पर स्वयं सेवकों ने बताया–''आज संघ की शाखायें बम्बई में सर्वत्र लग गईं, सर्वत्र संघ प्रार्थना हुई। इसी प्रकार प्रतिबन्ध हटने के पश्चात तत्काल दूसरे दिन से ही सम्पूर्ण भारत वर्ष में पूर्ववत् शाखायें लग उठी।''[35]

डॉ0 हेडगेवार साहब ने हिन्दुओं को संगठित करना' संघ का कार्य बतलाया। दूसरे सर संघ चालक 'गुरु जी' ने भी यही कहा–''हमें शक्तिशाली बनकर अपने हिन्दु समाज का संगठन करना है और तृतीय सर संघ चालक माननीय मधुकर दत्तात्रेय देवरस उपाख्य श्री 'बाला साहब देवरस' ने भी यही कहा–'डाक्टर जी कोरे चिन्तक नहीं थे। उन्होंने व्यक्ति निर्माण अर्थात व्यक्ति की मनोरचना सँवारने के लिये ''दैनिक शाखा'' की अनोखी पद्धति का विकास किया और निज के उदाहरण से हजारों अन्तःकरणों में हिन्दु–संगठन के स्वप्न को साकार कर दिखाने के संकल्प को जगाया।''[36]

लोग प्रायः पूछा करते हैं जिन हिन्दुओं के संगठन की बात आप प्रायः किया करते हैं, उसकी परिभाषा क्या है। आपने कहा–''ऐसे व्यापक शब्दों की व्याख्या नहीं की जा सकती क्योंकि उसमें अव्याप्ति या अतिव्याप्ति आ जाया करती है और जिससे अर्थ का अनर्थ हो जाता है।'' सावरकर के अनुसार हिन्दु शब्द की व्याख्या इस प्रकार दी गई है–

आ सिन्धु सिन्धु पर्यन्ता यस्य भारत भूमिका।

पितृ भू पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः।।[37]

"हजारों वर्ष के संघर्ष के बाद भी आज इस देश मे 85 प्रतिशत–90 प्रतिशत हिन्दु समाज रहता है। यह बात स्पष्ट है कि जब तक यह हिन्दु समाज जाति–पाँति, पंथ–संप्रदाय, प्रान्त–भाषा आदि के भेदों के ऊपर नहीं आता तब तक यह देश सबल इकाई के रूप में समर्थ नहीं हो सकता। इस लिये जब हम कहते हैं कि हम हिन्दु राष्ट्र के इस चलते अर्थ के अनुरूप ही समाज को संगठित करने के लिये निकले हैं, तो यह विचार राष्ट्रीय हो अच्छा है। इस देश के भविष्य के लिये हिन्दु समाज संगठित करना अत्यन्त आवश्यक है। यह बात मैं स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूँ।"[38]

हर समाज का दायित्व होता है अपने को स्वस्थ रखना और वहीं समाज स्वस्थ रहता है जो संगठित रहता है। समाज का अर्थ ही ऐसा है कि उसे संगठित रहता है, स्वस्थ रहता है तो उसमें दोष निर्माण नहीं होते, स्वाभाविक कर्तव्य है कि वह स्वस्थ रहे यानि संगठित रहे। इसलिये हम हिन्दु समाज को संगठित रखना चाहते हैं। हम किसी के खिलाफ नहीं है।"[39]

संघ की कार्य–पद्धति को समझे बिना संघ को नहीं समझा जा सकता। संध की कार्य–पद्धति अन्य संस्थाओं की तुलना में कुछ अलग है। सन् 1925 ई0 में संघ कार्य शुरू हुआ। और सन् 1940 तक कार्य–पद्धति बनी। सन् 1940 में क्यों कहता हूँ क्योंकि जो हम संस्कृत में प्रार्थना करते है, वह 15 वर्ष बाद बदली गई। इसके पूर्व हिन्दी मराठी भाषा युक्त प्रार्थना ही प्रचलित थी। अब आप लोग ध्यान में रखिये जो 15 साल के उपरान्त अपनी प्रार्थना में बदल कर सकते हैं वह कितना काल सुसंगत विचार करते हैं संघ के बारे में जब लोग यह कहते हैं कि संघ पुरातनवादी है। पोंगापंथी है, रूढ़िवादी है, रिवाईप्लिस्ट' है। तो कितनी विरोधी बाते करते हैं। यह हमारी विशेषता अपनी कार्य पद्धति है।"[40]

संघ की दैनिक शाखा से उदात्त चरित्र स्वयं सेवकों का निर्माण कैसे होता है। इस

सन्दर्भ में परमपूज्य बालासाहब देवरस का आभार में दिया हुआ बौद्धिक मननीय है—

"हमारे स्वयं सेवकों का सम्पूर्ण देश में एक गणवेश निर्धारित है, घोष के कार्यक्रम भी होते हैं। इतना होने पर कोई 'पैरा मिलेट्री'' संगठन नहीं बन जाता।"[41]

डाक्टर हेडगेवार के पूर्व 'हिन्दु समाज' के संस्थापक थे डॉ0 हर्डीकर उनके स्वयं सेवक भी गणवेश पहनकर पथ संचलन करते थे और घोष बजाते थे। स्कूली बच्चे भी गणवेश पहनते है, घोष भी बजाते हैं और पथ—संचलन भी करते हैं तो यह सब कैसे 'पैरा मिलेट्री' कहे जा सकते हैं। पं0 नेहरू के फोटो का एक अलबम है उसमें एक फोटो है जिसमें पण्डित नहेरू 'कॉंग्रेस सेवा दल' का गणवेश पहने खड़े हैं। इसलिये गणवेश पहनने से पथ संचलन करने से कोई 'पैरा मिलेट्री' नहीं होता। यह तो अनुशासन का भाव निर्माण करने के लिये है।

संघ की कार्य पद्धति की एक और अनूठी विशेषता है और वह है चन्दा न माँगकर स्वेच्छा पूर्वक धन संग्रह करने की। संध का कोई भी स्वयंसेवक स्वयं अपना व्यय—भार वहन करता है और अपना अमूल्य समय भी देता है तथा बसों से आने पर स्वयं उसका किराया भी देता है। हमारे यहाँ कुछ शिविर तो 25 दिन तक के लगते हैं और उनका खर्च 100—150 रूपये प्रति स्वयं सेवक आता है। यह सारा व्यय स्वयं सेवक स्वयं करता है। इस अनूठी पद्धति का सारा श्रेय पूजनीय डाक्टर हेडगेवार जी को जाता है।

संघ का स्वयं सेवक अन्य दलों के 'वालिण्टियर' की तरह नहीं हैं अन्य स्थानों पर 'चन्दा' प्रचलित है जब कि संघ में स्वेच्छा से दिया हुआ विनम्र और सश्रद्ध समर्पण का पवित्र माव।

ऐसे ही श्रमी, व्रती, अनुशासित, परोपकारी, त्यागी और राष्ट्रभक्त स्वयं सेवकों का निर्माण अपनी दैनिक शाखा में करता है। वही उसकी प्रेरणा—स्थली है। इसी में से तपकर—भारत—भू को अपनी माता मानते हुये उसकी रक्षा के निमित्त अपने प्राणों तक की बलि देने हेतु के सुसंस्कार स्वयं सेवकों को दैनिक शाखा द्वारा ही प्राप्त होते है।

इस सन्दर्भ में परमपूज्य गुरुजी का मन्तव्य ध्यातव्य है–

"पिछले हजार वर्षों में किसी को यह सूझा नहीं और यदि सूझा भी हो तो परिस्थिति विपरीत होने के फलस्वरूप अथवा समय का अभाव होने के कारण कोई कर नहीं सका। राष्ट्र कैसे चिरकाल तक सुदृढ बनाने की योजना करने का कर्म ईश्वर की कृपा से अपने लिये सुरक्षित रहा। इस प्रकार पीढ़ी के बाद पीढ़ी राष्ट्र जीवन को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न चलता है और चलता रहेगा। पूर्वकाल में संस्कार दृढ़ रखने के लिये उपासना पद्धति बनाई गई थी वैसे ही राष्ट्र–भावना के संस्कार विशुद्धदृढ़ता एवं समाज व्यापी करने के लिये यह दिन प्रतिदिन के कार्य की शाखा पद्धति है।"[42]

निःसन्देह सुसंस्कार शैली अनुशासन के व्यवहार पक्ष की प्रक्रिया है जो अदृश्य रहकर सुसंस्कार प्रदान करती है ठीक उसी प्रकार जैस मरूभूमि में कोई मरु–उद्यान (नखलिस्तान) उस क्षेत्र को शीतलता और हरीतिमा से सम्पन्न करने में समर्थ हुआ करता है। वस्तुतः चरित्र ही मानव जीवन का मुकुट है। सच्चरित्र व्यक्ति के माध्यम से सब कुछ संभव है। संघ का स्वयं सेवक यह संस्कार डॉक्टर हेडगेवार के व्यक्तित्व और कृतित्व से सीखता है। भगवान राम ने त्रेता युग में जैसा एक श्रेष्ठ आदर्शवान व्यक्ति बनकर अपना व्यक्तित्व कृतित्व अनुकरणीय बनाया उसी प्रकार डॉक्टर हेडगेवार ने अपना सर्वस्व समर्पण करके आधुनिक युग में भी एक विशिष्ट 'मॉडल' तैयार किया जिसका अनुकरण करना प्रत्येक स्वयं सेवक अपना धर्म समझता है।

(घ) तृतीय सर संघ चालक– द्वितीय संघ चालक परम पूजनीय गुरु जी के पश्चात् जिन्होंने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की बागडोर सँभाली वे थे सुप्रसिद्ध समाज सेवी, त्यागी, व्रती और परम ध्येय निष्ठ माननीय मधुकर दत्तात्रेय देवरस उपाख्य श्री बाला साहब देवरस। यही तृतीय सर संघ चालक चुने गये जिन्होंने हम सभी स्वयं सेवकों का सफल मार्गदर्शन किया।

संघ शिक्षा वर्ग की दिनचर्या में प्रतिदिन होने वाले बौद्धिक वर्ग का बहुत महत्व

होता है। प्रतिदिन कोई एक वरिष्ठ कार्य कर्ता किसी निर्धारित विषय पर 40–50 मिनट में अपने विचार शिक्षार्थी स्वयंसेवकों के सम्मुख रखता है। प्रायः वर्ग के सर्वाधिकारी उनका परिचय कराते हैं परन्तु 1943 में पूना के वर्ग में जब एक दिन वक्ता का परिचय कराने के लिए तत्कालीन सरसंघचालक श्री गुरु जी स्वयं खड़े हुए तो स्वयंसेवक चकित रह गए। और जब श्री गुरुजी ने कहा–"आप में से अनेक ने पूज्य डा0 हेडगेवार को नहीं देखा होगा, पर आज इन वक्ता को देखिये और सुनिये। आपको लगेगा कि स्वयं डाक्टर साहब जी आपके सम्मुख खड़े है।" ऐसा कह कर उन्होंने श्री बालासाहब देवरस को आमंत्रित किया। यह केवल एक बार की ही बात नहीं तो श्री गुरुजी प्रायः उनका परिचय 'असली सरसंघचालक' तथा "जिनके कारण मुझे सरसंघ चालक के नाम से पहचाना जाता है– ऐसे श्री बाला साहब –इसी प्रकार कराते थे।

प्रारम्भिक जीवन– श्री मधुकर दत्तात्रेय (बाला साहब) देवरस का जन्म 1 दिसम्बर 1915 को नागपुर के एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री दत्तात्रेय देवरस एक सामान्य सरकारी कर्मचारी थे तथा नागपुर के इतवारी मोहल्ले में रहते थे, बालासाहब के चार अन्य भाई तथा चार बहनें भी थीं। वैसे तो यह परिवार मूलतः नागपुर का ही था परन्तु मध्य प्रदेश के बालाघाट जिले में स्थित ग्राम कारंजा (आम गाँव) में इनकी खेती बाड़ी भी थी। बालासाहब के तीनों बड़े भाई समयानुसार नौकरी व्यवसाय आदि में लग गये परन्तु वे स्वयं तथा उनके छोटे भाई श्री मुरलीधर दत्तात्रेय (भाऊराव) देवरस ने संघ कार्य को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया।

कुशाग्र बुद्धि होने के कारण बालासाहब ने सभी परीक्षाएँ सदैव प्रथम श्रेणी में ही उत्तीर्ण की, घर के लोग सोचते थे कि अब उन्हें विदेश जाकर आई.सी.एस. की तैयारी करनी चाहिए, बालासाहब उसमें समर्थ भी थे, परन्तु उन्होंने सुख–सुविधाओं वाले जीवन को ठोकर मारकर डा. हेडगेवार द्वारा निर्देशित कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलने का निश्चय कर लिया था।

बाला साहब शुरू से ही बहुत क्रान्तिकारी तथा खुले विचारों के थे। उस समय छुआछूत, जातिभेद, खानपान में विभिन्न प्रकार के बंधन आदि का सामान्य रूप से प्रचलन था पर बालासाहब इन कुरीतियों एवं रूढ़ियों के घोर विरोधी थे। अतः सर्वप्रथम उन्होंने अपने घर का वातावरण ठीक किया। उनके सभी जाति के मित्र, स्वयंसेवक तथा बाहर से आए कार्यकर्ता उनके साथ घर जाते थे, भोजन का समय होने पर सब साथ–साथ रसोई में बैठकर भोजन भी करते थें सामजिक समानता और समरसता के वे विचार जो आज संघ मे प्रचलित हैं उनकी शुरूआत बालासाहब ने अपने घर से की।

बी.ए. तथा फिर एल.एल.बी. करने के बाद उन्होंने डाक्टर जी के परामर्श पर नागपुर के 'अनाथ विद्यार्थी वसतीगृह' में दो वर्ष तक अध्यापन कार्य भी किया, इसी समय आपको नागपुर के नगर कार्यवाह का दायित्व भी दिया गया 1939 में आपने प्रचारक बनने का निश्चय किया तथा डाक्टर जी ने आपको कलकत्ता भेजा, परन्तु 1940 में डाक्टर जी के स्वर्गवास के कारण आपको पुनः नागपुर बुला लिया गया, तब से नागपुर ही आपकी गतिविधियों का केन्द्र रहा।

नगर कार्यवाह– नगर कार्यवाह के नाते नागपुर के कार्य को पूरे देश में आदर्श बनाने का महत्वपूर्ण दायित्व उन पर आया। संघ का केन्द्र होने के कारण बाहर से आने वाले सब लोग नागपुर से प्रेरणा ले कर जाएँ इस कल्पना के साथ श्री बाला साहब ने काम सँभाला और अगले 3–4 वर्षों में ही नागपुर नगर की शाखाओं की संख्या बढ़ गयी। शीत–शिविर, सहभोज, वन–विहार, नैपुण्य वर्ग आदि कार्यक्रमों की ओर उनका बहुत ध्यान रहता था। उन दिनों सभी व्यवस्था स्वयंसेवक अपने हाथों से ही करते थे, शिविर में बाँस बल्ली गाड़ना, डेरे तम्बू लगाना, शौचालय के लिए गढ्ढे करना तथा बाद में उन्हें भरना भी, भोजनालय में रोटी सब्जी बनाना, बर्तन साफ करना............आदि। कहना न होगा कि श्री बालासाहब भी इनमें बढ़–चढ़ कर भाग लेते थे।

एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य जिसका बहुत कुछ श्रेय श्री बालासाहब को है–वह है

नागपुर नगर से प्रचारकों की एक बड़ी टोली तैयार करके पूरे देश में भेजना, इतना ही नहीं तो संघ कार्य के प्रारम्भिक 20–25 वर्ष तक विभिन्न प्रान्तों के ग्रीष्मकालीन संघ शिक्षा वर्गों में नागपुर में 3–4 प्रमुख शिक्षक भेजे जाते थे। ऐसे कार्यकर्ताओं के घर परिवार की वे सारे वर्ष चिंता करते थे। आज तो देश के सभी प्रान्तों में शारीरिक एवं बौद्धिक कार्यक्रमों को कुशलता से कराने वाले अनेक योग्य कार्यकर्ता तैयार हो गए हैं। पर जब ये नहीं थे तब भी पूरे देश के संघ शिक्षा वर्ग नागपुर के शिक्षकों के बल पर ही चलते थे। स्वयं बालासाहब भी अनेक वर्षों तक नागपुर तथा पुणे के वर्गों में शिक्षक एवं मुख्य शिक्षक के नाते जाते रहे हैं।

आज तो संघ का कार्य पर्याप्त पुराना होने के कारण व्यापक आधार ले चुका है। स्थान–स्थान पर कार्यालय भी बन गए हैं। सम्पर्क का क्षेत्र भी काफी बढ़ गया है। पर शुरू में ऐसा नहीं था, फिर भी बालासाहब ने नागपुर तथा आसपास के स्वयंसेवकों को कभी ऐसा आभास नहीं होने दिया। नागपुर मे बाहर से प्रतिदिन अनेक कार्यकर्ता अपने निजी कार्य से या अपनी विभिन्न समास्याएँ लेकर आते थे, बहुत से स्वयंसेवक अपनी या अपने किसी सम्बन्धी की चिकित्सा हेतु वहाँ आते थे। ऐसे सभी स्वयंसेवकों को बालासाहब के स्नेहपूर्ण व्यवहार का बड़ा सहारा था, वे सबकी बात ध्यान से सुनते थे तथा उचित व्यक्ति के पास भेजकर उसका निदान करते थे। बीमार स्व्यंसेवकों को अपने निष्ठावान कार्यकर्ताओं के घरों पर ठहराने की व्यवस्था की जाती थी। जो कार्यकर्ता प्रचारक बनकर बाहर जाते थे उनके घर परिवार में कोई कष्ट–कठिनाई न हो तथा प्रचारक जीवन से वापिस लौटने के बाद वह कार्यकर्ता ठीक से नौकरी व्यवसाय आदि में लग जाए, इन सब बातों पर बालासाहब का विशेष ध्यान रहता था। क्रमशः बड़े दायित्व मिलने के बाद उनका कार्यक्षेत्र तथा व्यस्तताएँ काफी बढ़ गयी फिर भी इस महत्वपूर्ण कार्य की ओर उन्होंने कभी दुर्लक्ष्य नहीं किया।

1948 का प्रतिबन्ध– 1948 में महात्मा गाँधी की हत्या का झूठा आरोप लगाकर

तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने संघ को प्रतिबंधित कर दिया तथा श्री गुरु जी को गिरफ्तार कर लिया। इसके विरोध में हुए सत्याग्रह के कारण सरकार को संघ की शक्ति तथा अपनी गलती का एहसास हो गया था तथा वह अपना कदम वापिस लेना चाहती थी, परन्तु इससे सरकार की प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती। अतः संघ मे कोई संविधान नहीं है, शाखा में छोटे बच्चों को प्रवेश दिया जाता है, वहाँ सैनिक शिक्षा दी जाती है– आदि बहाने बनाकर प्रतिबन्ध को अनावश्यक खींचने का प्रयत्न सरकार द्वारा होता रहा। ऐसे में संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ताओं तथा श्री व्यंकटराम शास्त्री, श्री मौलिचन्द्र शर्मा, पं0 द्वारिका प्रसाद मिश्र जैसे प्रतिष्ठित महानुभावों के प्रयासों से भ्रांतियाँ दूर हुई तथा सरकार को बिना शर्त प्रतिबंध हटाना पड़ा। इस सारी प्रक्रिया में श्री बालासाहब की अति महत्वपूर्ण भूमिका रही।

कार्य एवं कार्य पद्धति के जानकार– बिल्कुल प्रारम्भ से ही संघ तथा डाक्टर जी से जुड़े रहने के कारण श्री बालासाहब का संघ की कार्यपद्धति तथा कार्यक्रमों के क्रमिक विकास में बहुत योगदान रहा है। संघ का गणवेश, शाखाओं तथा संघ शिक्षा वर्गों के शारीरिक/ बौद्धिक कार्यक्रम तथा उनमें समय–समय पर हुए आवश्यक परिवर्तनों के वे प्रत्यक्ष साक्षी हैं। गणगीत तथा समूहगान की पद्धति बालासाहब ने ही शुरू की। 1937 में नगर कार्यवाह का दायित्व सँभालने के बाद उन्होंने बहुत सरल एवं भावपूर्ण पाँच गीतों का चयन किया तथा सब स्वयंसेवकों को क्रमशः उन्हें याद कराया। विजयादशमी के उत्सव में दो हजार स्वयंसेवकों द्वारा उन गीतों के सामूहिक गायन से एक अद्‌भुत वातावरण बन गया।' खड़ा हिमालय बता रहा है, डरों न आँधी पानी से" इस गीत को सुनकर तो दर्शक एवं श्रोता भी रोमांचित हो उठे।

इसी प्रकार शिविरों तथा प्रबुद्ध नागरिकों के कार्यक्रम में स्वयंसेवक एवं जनता से सीधा संवाद स्थापित करने के लिए श्री बालासाहब ने प्रश्नोत्तर कार्यक्रम शुरू किए, कार्यकर्ता अपने प्रश्नों के उत्तर सरसंघचालक के मुख से सुनकर अतीव आनन्द तथा संतुष्टि का अनुभव करते थे। आज तो यह कार्यक्रम सभी स्तर के शिविरों को अनिवार्य

अंग बन गया है। संघ के अखिल भारतीय स्तर के सब कार्यकर्ताओं के प्रत्यक्ष शाखा कार्य के साथ–साथ विविध क्षेत्र के दो–तीन कामों की देखभाल भी करनी होती है, अब यह पद्धति भी क्रमशः नीचे तक पहुँच रही है। बालासाहब की ओर समाचारपत्रों तथा राजनैतिक क्षेत्र में काम करने वाले कार्यकर्ताओं को उचित दिशा एवं सहयोग देने का कार्य था। 1973 के बाद तो प्रायः सभी संगठनों के वरिष्ठ कार्यकर्ता उनके पास मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद लेने आते थे, विभिन्न सामाजिक समस्याओं का उनका गहरा अध्ययन तथा उनके प्रति व्यावहारिक एवं दूरगामी दृष्टिकोण इसके कारण सब कार्यकर्ता वहाँ से संतुष्टि एंव प्रेरणा लेकर जाते थे।

सरसंघचालक– 1965 में बालासाहब को सरकार्यवाह का दायित्व मिला तथा 1973 में पू० श्री गुरुजी के स्वर्गवास के बाद वे तृतीय सरसंघचालक बने। नागपुर केन्द्र की गतिविधियों में अत्यधिक संलग्नता के कारण उनका नाम देश भर में अल्पज्ञात ही था। अतः अनेक लोग इस चिन्ता से ग्रस्त हो गये कि अब संघ का कार्य कैसे चलेगा? श्री गुरुजी जो बहुत विद्वान एवं महान आध्यात्मिक पुरुष थे परन्तु श्री बालासाहब तो साधारण कार्यकर्ता हैं, ये इतने बड़े संगठन को कैसे सँभाल पायेंगे? अनेक लोगों ने सुझाव दिया कि अगर संघ बाले चाहें तो हम इसके संचालन का भार उठा सकते हैं..........। परन्तु जैसै–जैसे श्री बालासाहब का सघन प्रवास शुरू हुआ, उसकी धारणायें बदल गईं।

आपात काल एवं जनता पार्टी– 25–26 जून की वह कालरात्रि जब इंदिरा गाँधी की घृणित राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं ने भारत में लोकतंत्र की हत्या करनी चाही तथा सभी प्रमुख विरोधी पक्ष के नेताओं को बन्दी बना कर देश में आपातकाल घोषित कर दिया तो उनकी उस द्वेष पूर्ण मनोभावना से संघ तथा उसके सरसंघचालक भी कैसे बच सकते थे, 4 जुलाई को संघ पर प्रतिबंध की घोषणा हो गयी, श्री बालासाहब संघ शिक्षा वर्गों के प्रवास समाप्त कर नागपुर लौटे ही थे कि उन्हें बन्दी बनाकर यरवदा (पूणे) कारागृह में ठूँस दिया। शेष सभी प्रमुख कार्यकर्ता एवं प्रचारक भूमिगत हो गये तथा एक दो अपवाद

छोड़कर अंत तक पकड़े नहीं गये। जेल से ही श्री बालासाहब ने इंदिरा गांधी को पत्र लिखकर समझाने तथा ठीक मार्ग पर आने का सुझाव दिया, पर वे सत्ता मद में अंधी हो रही थीं। अन्ततः संघ के स्वयंसेवकों ने प्रतिबन्ध तथा आपातकाल के विरोध में इतना जबर्दस्त सत्याग्रह तथा आन्दोलन चलाया कि सारे देश का वातावरण इंदिरा जी के विरुद्ध हो गया और 1977 के चुनाव में उन्हें मुँहकी खानी पड़ी वे स्वयं तथा उनके कुख्यात पुत्र संजय गाँधी भी चुनाव हार गये।

1977 से 1979 तक केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार सत्तारूढ़ रही। संघ के स्वयंसवकों के त्याग, बलिदान तथा परिश्रम से ही यह संभव हुआ था। परन्तु फिर भी संघ ने अपने को राजनैतिक गतिविधियों से दूर करके पुनश्चः दैनिक शाखा के कार्य की ओर उन्मुख कर लिया। उस समय के श्री बालासाहब के बौद्धिक वर्गों तथा कार्यकर्ता बैठकों में दैनिक शाखा, उसकी उपस्थिति, उसके संस्कारप्रद कार्यक्रम........यही विषय रहा करता था। मोरारजी भाई, जगजीवन राम, चन्द्रशेखर–तथा अन्य सभी बड़े–बड़े राजनेता जानते थे कि संघ की शक्ति के कारण ही हमें सत्ता प्राप्त हुई है। अतः श्री बालासाहब के प्रवास के दौरान वे कृतज्ञता प्रकट करने तथा आशीर्वाद लेने प्रायः उनके पास आते रहते थे। उन दिनों होने वाले सार्वजनिक कार्यक्रमों में बड़े–बड़े मुसलमान नेता भी उनसे मिलने को उत्सुक रहत थे, दिल्ली की जामा मस्जिद का इमाम बुखारी भी एक बार संघ कार्यालय में उनके दर्शन करने आया था।

कुशल संगठन एवं दूरदृष्टा– 1975 से 1977 तक आपातकालीन रात्रि बीतने के बाद संघके स्वयंसेवकों द्वारा सामाजिक–जीवन के विविध क्षेत्रों में चलाए जाने वाले संगठनो को जो अखिल भारतीय स्वरूप, ख्याति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उसके पीछे श्री बालासाहब का सुयोग्य मार्गदर्शन तथा योजनाबद्ध रीति से अनेक नये एवं युवा प्रचारक/ कार्यकर्ताओं को इन क्षेत्रों में भेजना–यही प्रमुख कारण है।

देश को पुनः खंडित करने का स्वप्न देखने वाली मुस्लिम मनोवृत्ति को टक्कर देने

के लिए विश्व हिन्दु परिषद– धर्मान्तरण के माध्यम से भारत के कुछ भागों में अलगाववाद की भावना पैदा करने में सफल ईसाई संगठनों पर रोक लगाने के लिए वनवासी कल्याण आश्रम, सदैव रूस और चीन के गुणगान गाने वाले धर्म को अफीम बताकर धर्मप्राण भारत के आधार को चोट पहुँचाने वाले तथा सारी दुनिया के मजदूरों को लाल झण्ड़े ने नीचे लाने का स्वप्न देखने वाले कम्युनिस्टों को श्रमिक क्षेत्र में ही मात देने के लिए भारतीय मजदूर संघ, राजनीति में काँग्रेस का एकाधिकार तोड़ने के लिए भारतीय जनता पार्टी हिन्दु समाज के दलित एवं पिछड़े वर्गों को आपसी गलतफहमियाँ दूर करके शेष हिन्दु समाज से जोड़ने, छुआछूत, तथा जातिभेद जैसी कुरीतियों को दूर कर सबको एकरस करने के लिए सेवा भारती, विद्यार्थी क्षेत्र में व्याप्त अनुशासनहीनता को समाप्त करने के लिए अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, हिन्दु शिक्षा प्रणाली को आधुनिक, सर्वव्यापी एव सर्वस्पर्शी बनाने के लिए विद्या भारती, जैसे अनेक संगठन आज अपने–अपने क्षेत्र में पूरे भारत में शीर्ष स्थान पर खड़े हैं। इन सबकी सार्थक गतिविधियों के कारण आज सम्पूर्ण देश में हिन्दुत्व का प्रबल वातावरण बना है। यह सब श्री बालासाहब एवं उनके कुशल नेतृत्व में काम करने वाले कार्यकर्ताओं की देव–दुर्लभ टोली की तपस्या का ही सुपरिणाम है।

प्रसिद्धि से दूर–ईश्वर में अत्यधिक आस्था होने के बावजूद भी बालपन से ही बालासाहब पूजा–पाठ–ध्यान जैसी औपचारिकताओं से दूर रहते थे, परन्तु जो कार्यकर्ता ऐसा करते थे उनकी श्रद्धा तथा आस्था को कभी उन्होंने ठेस नहीं पहुँचाई। सरसंघचालक बनने के बाद वे स्नान के बाद कुछ समय इस कार्य में भी लगाने लगे, उनके निकट मित्रों को यह अच्छा लगा। संघ में सरसंघचालक को प्रायः परमपूजनीय कहकर संबोधित करते हैं लेकिन श्री बालासाहब इससे बहुत नाराज होते थे, बाद में अनेक वरिष्ठ कार्यकर्ताओं ने उनसे निवेदन किया यह तो सरसंघचालक के लिए स्वयंसेवकों की श्रद्धा का प्रतीक है तो उनकी इच्छा का आदर करते हुए उन्होंने कुछ कहना छोड़ दिया। सरसंघचालक होने के

नाते उनका चित्र भी कार्यक्रमों में डाक्टर जी तथा गुरु जी के चित्रों के साथ लगने लगा, जब उन्हें इसकी जानकारी हुई तो उन्होंने सख्ती से इसे बन्द करा दिया।

प्रेरक विचार एवं चुनौतियाँ— 1973 से 1993 तक 22 वर्षों में सरसंघचालक के रूप में आपने संघ को अनेक नये विचार दिये तथा हिन्दुत्व पर आने वाली किसी भी चुनौती को उन्होंने अस्वीकार नहीं किया। 1983 में तमिलनाडू में मीनाक्षीपरुम् ग्राम में जब दलित वर्ग के कुछ हिन्दुओं ने सामूहिक रूप से मुस्लिम पंथ स्वीकार कर लिया तो सारे देश में इसकी आलोचना हुई तत्कालीन प्रधामंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने भी इस पर चिन्ता व्यक्त की। पर श्री बालासाहब ने इस चुनौती को स्वीकार किया तथा धर्मान्तरण के इस कुचक्र को तोड़ने के लिए सार्थक पहल की। विश्व हिन्दु परिषद के नेतृत्व में एकात्मता यात्रा के माध्यम से इस विषय को लेकर जन जागृति की गई, संस्कृति रक्षा निधि के रूप में एक बड़ा कोष बनाकर पूरे देश में पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं की एक श्रृंखला खड़ी कर दी गई। इसके बाद से फिर कभी मुसलमानों को इस तरह खुले आम धर्मान्तरण कराने का साहस नहीं हुआ। इसी प्रकार 1988–89 में जब रोम के पोप भारत–यात्रा पर आए तो श्री बालासाहब ने सम्पूर्ण देश मे सघन प्रवास करके पोप के कुटिल षड्यन्त्रों से भारत वासियों को सचेत किया। परिणामतः धर्मान्तरण की उनकी मुहिम ठंडी हो गई, राँची जिसे ईसाई मिशनरियों का गढ़ माना जाता था, वहाँ की हिन्दु जनता तो इतनी उद्वेलित हो उठी कि उनके भय से पोप महोदय शहर में नहीं घुसे, हवाई अड्डे से ही उन्हें वापिस लौटना पड़ा।

1988–89 में संघ संस्थापक डा. हेडगेवार की जन्मशती वर्ष में हुए अभिनव कार्यक्रमों ने पूरे देश में धूम मचा दी। "हिन्दू जगे तो विश्व जगेगा, नर सेवा नारायण सेवा"– आदि प्रेरक उद्‌घोष सारे देश में गूँज उठे थे। सेवा–निधि के माध्यम से हिन्दू समाज के पिछड़े एवं निर्धन वर्गों के उत्थान हेतु हजारों सेवा प्रकल्प प्रारम्भ किय गये, श्री रामजन्म भूमि आन्दोलन की सफलता तथा उससे हुआ व्यापक हिन्दु जागरण तो अभी

हाल की ही घटना है।

विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर व्यस्त किये गये श्री बालासाहब के क्रान्तिकारी विचारों ने सदैव हिन्दू समाज को एक उचित दिशा दी है–"यदि अस्पृश्यता पाप नहीं तो कुछ भी पाप नहीं है, जातिभेद तथा पुरानी कालवाह्य रूढ़ियों को छोड़ देना ही उचित है, भारत के जिस भाग में हिन्दु अल्पसंख्यक हुआ वहाँ पर ही अलगाव, राष्ट्रद्रोह एवं अलगाववाद सिर उठा लेता है, हिन्दु संगठन इस देश की राष्ट्रीय आवयश्कता है.................."आदि विषयों पर जब श्री बालासाहब बोलते थे तो श्रोताओं के हृदय की गहराइयों तक वे विचार उतर जाते थे तथा उनकी गूँज भारत भर में सुनाई देती थी। आरक्षण के समर्थन में जब अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक में प्रस्ताव आया तो उसके पक्ष एवं विपक्ष में तेज बहस हुई, परन्तु श्री बालासाहब ने बीच में ही हस्तक्षेप करते हुए कहा–"थोडी देर के लिए यह विचार मन में लायें कि आप स्वयं एक उपेक्षित, अनुसूचित जाति, जनजाति वाले परिवार में जन्में हैं, फिर उस दृष्टि से सोच कर निर्णय लें" आत्मावलोकन की इस अपील का जादू भरा असर हुआ तथा थोड़ी देर में ही सर्वसहमति से वातवरण बन गया।

उज्ज्वल उत्तराधिकार–श्री बाला साहब प्रारम्भ से ही मधुमेह रोग से पीड़ित रहे, सर्दी तथा गर्मी की अधिकता में भी उन्हें कष्ट होता था। प्रवास में ये सब कठिनाइयाँ स्वाभाविक रूप से बढ़ जाती थीं। फिर भी 22 वर्ष तक वे एक मौन तपस्वी की भाँति पूरे देश में भ्रमण करके सब कार्यकताओं को उचित मार्गदर्शन देते रहे। परन्तु जब उन्हें यह अनुभव होने लगा कि स्वास्थ्य तथा आयु सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण नियमित प्रवास करना अब कठिन है तो सब वरिष्ठ कार्यकर्ताओं से परामर्श करके, नई परम्परा स्थापित करते हुए 11 मार्च 1994 को अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के सम्मुख प्रो0 राजेन्द्र सिंह "रज्जू भैया" को नूतन सरसंघचालक घोषित कर दिया।

परमपिता परमेश्वर के श्री चरणों में विनम्र प्रार्थना है कि वह श्री बालासाहब को

शान्ति पूर्ण दीर्घ जीवन प्रदान करें जिससे उनके आशीर्वाद की छत्रछाया हम सब स्वयंसेवक, कार्यकर्ताओं तथा संघ प्रेमी हिन्दू समाज पर बनी रहे।

1948 में संघ के ऊपर प्रतिबन्ध आया था तब बड़ा भारी सत्याग्रह हुआ था। इसके पश्चात हमारा कार्य सार्वजनिक कार्य है, सभी बन्धुओं को यह हक है कि वह हमारे विषय में चर्चा करें, कोई टीका टिप्पणी करें, कोई प्रशंसा करें, और संघ के विषय में यदि यह ज्यादा होता है तो स्वाभाविक ही है। रास्ते में हजारों लोग चलते हैं तो कुछ ही लोग ऐसे रहते हैं कि जिनकी तरफ सभी का ध्यान जाता है। दीखने में अच्छे रहते हैं हट्टे कट्टे होते हैं स्वस्थ होते हैं, ऐसे चलते है कि सभी का ध्यान उनकी ओर जाता है जिसकी गति का वर्णन संस्कृत में ऐसा किया गया है।

''न भर्विन गतिं धैत्ती'

ऐसी ही संघ की गति–प्रगति होने के कारण यदि संघ की ओर सभी का ध्यान जाता है और संघ सार्वजनिक चर्चा का विषय बना है तो यह स्वाभाविक ही है। असंदिध भाषा में निःसंकोच रीति से यह कहा कि संघ का हेतु हिन्दुओं को संगठित करना है। उन्होंने भी स्पष्ट रीति से कहा कि हमारा कार्य क्या है– हिन्दू संगठन का कार्य है। हिन्दुओं को संगठित करने का दायित्व हमने उठाया है यह हमारे कार्य का स्वरूप है। सावरकर जी ने व्याख्या की है:–

आसिन्धु सिन्धु पर्यन्ता यस्य भारत भूमिका
पितृ भू पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरितस्मृतः।।

इसकी वहाँ जो परिभाषा की है वह ऐसी की है कि मुसलमान, ईसाई, पारसी और यहूदी इनको छोड़कर, इस देश में सनातनी, आर्यसमाजी, सिक्ख, जैन इत्यादि लोगों की सूची दी है और कहा है–ये सभी हिन्दु इसके अन्तर्गत आयेंगे और आगे कहा है कि यदि इनमें से भी कोई छूट गये होंगे तो उन पर भी हिन्दूकोड लगेगा और नहीं लगता है यह सिद्ध करने का दायित्व उनका होगा, ऐसी बड़ी अच्छी हिन्दु की परिभाषा उसमें की गई

है, यह ऐतिहासिक परिस्थिति इस देश में हजारों वर्षों से चलती आयी है इसीलिये पण्डित जी को मानना पड़ा और यह परिभाषा करनी पड़ी। अर्थात् सनातनी, आर्यसमाजी,सिक्ख, जैन, बौद्ध आदि सभी हिन्दु समाज के अंग है और इस हिन्दू समाज को संगठित करने को हम निकले है ऐसा स्पष्ट शब्दों में डाक्टर जी ने कहा, गुरुजी न कहा मैंने कहा।

हजारों वर्ष के संघर्ष के बाद भी इस आज देश में 85 प्रतिशत–90 प्रतिशत हिन्दु समाज रहता है। यह बात स्पष्ट है कि जब तक यह हिन्दु समाज जाति–पाँति, पंथ–सम्प्रदायें, प्रान्त–भाषा आदि के भेदों से ऊपर नहीं उठता तब तक यह देश सबल इकाई के रूप मं समर्थ नहीं हो सकता। इसलिये जब हम कहते हैं कि हम हिन्दू राष्ट्र के इस चलते अर्थ के अनुरूप ही समाज को संगठित करने के लिये निकले हैं, तो यह विचार राष्ट्रीय है, अच्छा है। इस देश के भविष्य के लिये हिन्दू समाज संगठित करना अत्यन्त आवश्यक है। यह बात मैं स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूँ। हर समाज का स्वाभाविक कर्तव्य है कि वह स्वस्थ रहे यानि संगठित रहे। इसलिये हम हिन्दु समाज को स्वस्थ रखने के लिये संगठित रखना चाहते है। हम किसी के खिलाफ नहीं है।

डॉ हेडगेवार जी ने जब संघ प्रारम्भ किया तो लोग उनसे पूछते थे Are you anti muslims? डाक्टर साहब कहते थे no लोग पूछते Are you Anti chistios? डाक्टर साहब कहते नो । लोग पूछते थे Who Are you? वह कहते थे We Are pro Hindu। हम हिन्दुओं का विचार करते हैं। हम किसी के विरोध में हैं यह कल्पना भी गलत है। हमारा संगठन किसी के विरोध में नहीं हैं। बस्ती में एकाध तरुण यदि सुबिह अखाड़े में जाता है, दण्ड वैठक लगाता है, योगासन करता है, दूध पीता है और अच्छा स्वास्थकर सुपाच्य भोजन करता है, उससे यदि किसी ने पूछा कि तू अपने स्वास्थ की चिन्ता क्यों करता है? तो वह क्या जबाब देता? वह अपने स्वास्थ्य की चिन्ता किसी को मारने के लिये थोड़े ही करता है। यह तो उसका कर्तव्य हैं। इसी प्रकार हिन्दू समाज का संगठन किसी के विरोध में करते हैं यह धारणा गलत है। इस देश में हिन्दू समाज को स्वस्थ बनाना

अत्यंत आवश्यक है, ऐसा हम मानते हैं।

अन्य उपासना पद्धतियों के लोगों के विषय में भी तुम्हारा क्या दृष्टिकोण है ऐसा अनेक बन्धु पूछते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा यह कहना है कि यहाँ के मुसलमान बन्धु क्या अरब से आये, ईरान से आये, ईसाई बन्धु क्या इग्लैण्ड से आये, फ्रांस से आये जर्मनी से आये? नहीं वह तो इसी देश के रहने वाले हैं और इतने पुराने रहने वाले हैं जितने पुराने हम। तुम्हारा हमारा खून एक है, तुम्हारे हमारे बाप–दादा एक है। कुछ पीढ़ियों पहले किसी न किसी कारण से आपने धर्म–परिवर्तन किया है। अब उस उपासना पद्धति पर आपकी श्रद्धा है, आपकी निष्ठा है। इमें इसमें कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन उपासना–पद्धति बदली, तो इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिये कि आपकी सांस्कृतिक धारा बदली आपकी राष्ट्रीय जीवन धारा बदली। हिन्दुस्थान में उपासना पद्धतियों के बारे में सदा ही पूरा स्वातन्त्र्य रहा है। पश्चिम में उपासना पद्धतियों के विषय में टौलरैन्स की बात बोलते हैं They simply tolerate। अर्थ यह है कि आप अपनी उपासना पद्धति से चल सकते हैं आपको चलने का हक है। I tolerate it फिर कहते हैं मेरी पद्धति तुमसे अच्छी है। यह tolerance का अर्थ होता है। हिन्दू तत्व ज्ञान इससे बहुत आगे गया है। हिन्दू तत्व ज्ञान में कहा गया है–

"एकः सद् विप्राः बहुधा वदन्ति"

सत्य एक होता है विद्वान लोग उसको विभिन्न प्रकार से कहते है। लक्ष्य एक होता है उस तक जाने के अनेक मार्ग होते हैं। सभी मार्ग अच्छे हैं, श्रेष्ठ हैं। अपने अपने मार्ग से आओ उसी में आपको मुक्ति मिलेगी, मोक्ष मिलेगा। हमने कभी तुलनात्मक दृष्टि से कि यह मार्ग श्रेष्ठ है, ऐसा कभी नहीं कहा! उपासना पद्धतियों के कारण हमने विरोध नहीं माना ऐसा हमारा हजारों वर्षों का इतिहास है। हिन्दु का मन कितना विशाल, कितना व्यापक होता है, उपासना पद्धति में कितना स्वातन्त्र रहता है, यह हम जानते है। इसलिये इम उनके कार्यक्रम में अवश्य जायेंगे और मेरे स्वागत कार्यक्रम की अध्यक्षता उन्होंने की।

यह अपनी परम्परा है। उपासना–पद्धति के अन्तर को हम नहीं मानते हैं। लेकिन उपासना–पद्धति बदलने से सांस्कृतिक जीवन धारा नहीं बदलनी चाहिये। सबसे अच्छा उदाहरण है इन्डोनेशिया का बाली द्वीप ऐसा है जहाँ हिन्दु अधिक संख्या में है लेकिन जावा, सुमात्रा आदि में मुसलमान ही अधिक है। कुल मिलाकर इन्डोनेशिया बहुसंख्यक मुसलमानों का ही देश है। वहाँ क्या होता है। अभी कुछ दिन पूर्व जिनका देहान्त हुआ जो वहाँ के अध्यक्ष रहे उनका नाम सुकर्णो जो संस्कृत के सुकर्ण का अपभ्रंश है। उनकी पत्नी जो अभी भी जीवित है, का नाम है रत्ना देवी! हमारे हवाई जहाज जो उड़ते हैं वह तो एयर इण्डिया और इण्डियन एयर लाइन्स के नाम से चलते हैं, इन्डोनेशिया की जो हवाई सर्विस है उसका नाम है 'गरुड़ एअरवेज', और अभी भी वहाँ जो कार्यक्रम होते हैं, प्रमुख नृत्य और नाट्य कार्यक्रम रामायण और महाभारत पर ही आधारित होते हैं।

कुछ सदियों के पहले हमने अपनी उपासना पद्धति बदली होगी हमने अपने बाप–दादे नही बदले। वैसे देखा जावे तो हमारी तो हिन्दुत्व की व्यापक कल्पना है। हिन्दु शब्द का नाता हमने कभी उपासना पद्धति से जोड़ा नहीं है। हिन्दु शब्द का नाता सदा–सर्वदा से सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जीवनधारा को अपनी जीवन धारा मानते है वह सारे हिन्दु की व्यापक कल्पना में आते है। कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दु शब्द का इतना आग्रह क्यों, भारतीय शब्द का प्रयोग क्यों नहीं? हमारा कहना है कि हम रोज प्रार्थना में प्रार्थना के आखिर में कहते हैं " भारत माता की जय' कहते हैं इसका स्पष्ट अर्थ ही है, इसलिये हिन्दुत्व–भारतीयत्व, हिन्दु राष्ट्र–भारतीय राष्ट्र, हिन्दु संस्कृति–भारतीय संस्कृति, हिन्दु परम्परा–भारतीय परम्परा यह सारे समानार्थक शब्द हैं यह हम मानते हैं। हिन्दु शब्द के साथ भारतीय शब्द का प्रयोग किया भी तो हमें कोई आपत्ति नहीं, वह समानर्थक शब्द है। फिर भी हिन्दु शब्द का प्रयोग करते हैं इसका कारण ऐसा है कि लोगों के मन में अपप्रचार के कारण यह धारणा बन गई है कि यह संकुचित शब्द है छोटा है, हेय है। इसीलिये हम आग्रहपूर्वक हिन्दु शब्द का प्रयोग करते हैं। हमारे लिये हिन्दु और भारतीय

शब्द के समानार्थक प्रयोग में कोई आपत्ति नहीं।

भारतीय शब्द क्या भौगालिक शब्द है, हिन्दु शब्द तो अर्वाचीन है। भारतीय शब्द तो बहुत प्राचीन है। जो–जो अपने को भारतीय कहेंगे उन्हें भरत राजा से अपना नाता मानना यह तो हिन्दुत्व से ही नाता मानना है इसलिये हिन्दु या भारतीय शब्द का महत्व नहीं है, महत्व है मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का। कुछ समय पूर्व जब मैं पटना गया था तो श्री जय प्रकाश नारायण से मेरी मुलाकात हुई और उन्होंने अत्यन्त आग्रह से यह विषय रखा–मुसलमानों का संघ में प्रवेश। मैने उनसे कहा कि हमारे एक मित्र हैं काका कालेलकर जो नागपुर में रहते है 80 वर्ष की आयु है, गाँधीवादी है, सर्वोदयी हैं। उन्होंने संघ में मुसलमानों का प्रवेश विषय पर मुझे एक पत्र लिखा और उस पत्र को समाचार पत्रों में भी छापा। उसमें उन्होंने कहा कि यह जो बात चली है कि संघ में मुसलमानों का प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिये और जमायत में हिन्दुओं को इसकी मैं आवश्यकता नही समझता। आपस में सब प्रकार से बात करें, चर्चा करें, मतभिन्नता दूर करें इसकी आवश्यकता तो मैं मानता हूँ लेकिन इसकी क्या आवश्यकता है कि संघ में मुसलमानों को प्रवेश दिया जाये। छोटी–छोटी बातों पर झगड़े शुरू हो जायेंगे क्यों? इन बातों पर विरोध होगा ऐसा उन्होंने लिखा। मैंने श्री जय प्रकाश नारायण को यह कहा कि आपके सहयोगी तो इस प्रकार लिखते हैं तो उन्होंने इस बात से सहमति प्रकट की। एक बात निश्चित है कि हमारा उनका सम्पर्क दिनादिन बढ़ रहा है। उसकी शुरूआत हुई कारागृह से। और जिस कारण यह सब हुआ उसका नाम है–आपात स्थिति।

संघ की कार्य पद्धति को समझे बिना संघ को नहीं समझा जा सकता। संघ की कार्य–पद्धति अन्य संस्थाओं की तुलना में कुछ अलग है। यह जो कार्य–पद्धति आप देखते है यह धीरे–धीरे बनी । 1925 में काम शुरू हुआ और 1940 तक कार्य–पद्धति बनी। 1940 मैं क्यों कहता हूँ कि आज जो हम संस्कृत में प्रार्थना कहते हैं यह प्रार्थना प्रारम्भ हुई। 1925 से 40 वर्ष तक हमारी प्रार्थना थी कुछ हिन्दी में और कुछ मराठी में थी।

संघ की कार्य पद्धति का आधार दैनिक शाखा, रोज की शाखा। यह हिन्दुस्तान में कोई नहीं करता, दुनिया में शायद कोई नहीं करता होगा। डाक्टर जी के दिमाग में था कि दैनिक शाखा अति आवश्यक है। अन्य लोग इसको अनावश्यक और असम्भव मानते थे। क्योंकि सभी का विचार था कि मास में या सप्ताह में एक दिन लोग बुलाओगे तो ज्यादा लोग आयेंगे। डाक्टर जी का विचार था कि रोज बुलाओंगे तो ज्यादा लोग आयेंगे और सप्ताह में, महीने में एक दिन बुलाओंगे तो कम आयेंगे। आपने देखा होगा कि कुछ संस्थायें महीने में एक दिन मासिक झण्डाभिवादन का कार्यक्रम करती हैं। उनके झण्डा भिवादन में बहुत कम लोग रहते है। इतने कम लोग रहते हैं कि खुले मैदान में झण्डा भिवादन होता ही नहीं उन्हें मासिक झण्डाभिवादन कार्यालय में करना पड़ता है। हमारी उपस्थिति कैसे रहती है क्योंकि दैनिक शाखा में आना अपना आग्रह है।

नागपुर के लोगों ने तो मान लिया परन्तु पूना के लोग मानते ही नहीं थे कि दैनिक शाखा चल सकती है। मुझे याद है जब डाक्टर साहब पूना गये थे तो वहाँ के लोगों ने कहा कि डाक्टर साहब, यह दैनिक शाखा नागपुर में तो चल सकती है पूना में नहीं चलेगी, नागपुर का संतरा नागपूर में ही बिकेगा, पूना बम्बई में नहीं बिक सकेगा। डाक्टर साहब ने कहा देखेंगे। और आज पूना तो क्या सारे देश में दैनिक शाखायें चलती हैं।

और जब कुछ तरुण एकत्र होते हैं तो उनमें अनुशासन, मन, बुद्धि के संस्कार के लिये कुछ कार्यक्रम होते हैं। 1 धण्टा एकत्र हुये तो क्या करें? इसलिये चर्चा चली कि तरुणों के लिये अच्छा कार्यक्रम कौन सा? रोज–रोज भाषण चर्चा तो नहीं कर सकते। तरुणों के लिए अच्छा कार्यक्रम फिजीकल ट्रैनिंग है पहले सारे देश में अखाड़े चलते थे। महाराष्ट्र में तो प्रत्येक मोहल्ले में अखाड़े चलते जहाँ दण्ड, बैठक, लाठी, तलवार, गदधा, फरी आदि की शिक्षा दी जाती थी। यह महाराष्ट्र की बहुत पुरानी हजारों वर्ष की परम्परा है। शिवाजी के काल का अध्ययन करेंगे तो पता चलेगा कि इस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। जो महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री हैं श्री पाटिल, वह भी बचपन में अखाड़े में गये हैं।

संघ–स्थान पर जो दण्ड, भूल खड्ग आदि सिखांया जाता है यह किसी को मारने के लिये सिखाया जाता है, यह धारण–गलत है। यह शरीरिक शिक्षा तो शरीर को पुष्ट बनाने के लिये है।

जब संघ के ऊपर प्रतिबन्ध आया तो सारे कार्यालयों पर सरकार ने कब्जा कर लिया, कार्यालयों के भण्डार में दण्ड भी रहते हैं और हमारी जो तलवारें रहती है, टीन की रहती है उनसे तो मक्खन भी नहीं काटा जा सकता है, तो उस समय सारे देश के अखबारों में खबर निकली, फोटो भी छपे मुख्य पृष्ठ पर, कि संघ के कार्यालयों से भारी मात्रा मे हथियार बरामद। ब्लिट्ज ने तो खबर छापी यरवदा कारागृह में मैंने पढ़ा संघ कार्यालय से 40 कारतूस बरामद। जब प्रतिबन्ध हटा और हमारा सब सामान बापिस हुआ तो हमने अधिकारियों से कहा कि हमारी 40 गोलियाँ और वापिस दो जो आपने खबर छापी थी। अधिकारी लोगों ने कहा आप तो सब जानते ही हैं। इस प्रकार हमारे जो शारीरिक कार्यक्रम हैं उनके बारे में अन्यथ सोचना गलत है।

संघ पैरा मिलिट्री (अर्ध सैनिक) संगठन नहीं– इसी प्रकार संघ के बारे में दूसरा आक्षेप पैरा मिलटरी संगठन होने का हैं यह पैरा मिलिटरी क्या बला है। मिलिटरी के समान हम गणवेश पहनते है। तो क्या गणवेश पहनने मात्र से ही हम पैरा मिलेट्री हो गये। आल कल तो स्कूल में पढ़ने वाली लड़कियाँ भी गणवेश पहनती हैं। कुछ लोग संघ में यह संचलन, यह घोष देखकर इसे पैरा मिलैट्री संगठन कहते हैं। हमसे पहले एक हिन्दुस्थानी सेवादल नाम का समाज था उसके संस्थापक डा0 हर्डीकर थे। उनका देहान्त एक वर्ष पूर्व ही हुआ है। उसके वालिन्टीयर भी गणवेश पहन कर घोष के साथ संचलन करते थे और कोई भी राजनैतिक नेता आवे, राजनैतिक कार्यक्रम हो उसके स्वयं सेवकों को बुलाया जाता था। उसी से हमको यह प्रेरणा मिली। अपने देश में कदम मिलाकर चलना यह हजारों वर्षों से मालूम ही नहीं। 15 अगस्त, 26 जनवरी को सारे देश में कार्यक्रम होते हैं कोई मंत्री या नेता सलामी लेता है। सलामी के पश्चात् उस सैनिक

आफीसर के साथ मंत्री को निरीक्षण करना पड़ता है। देखा होगा मंत्री या राजनैतिक नेता इसके कदम कभी मिलते नहीं। इन्होंने कदम मिलाकर चलना सीखा ही नहीं। इसलिये हिन्दुस्तान की आम जनता को कदम मिलाकर चलना, यह सिखाना आवश्यक है। पं० नेहरू के फोटो का एक अल्बम है उसमें पंडित नेहरू का एक फोटो है जिसमें वह कांग्रेस सेवादल का गणवेश पहने खड़े। इसलिये गणवेश पहनने से संचलन करने से कोई पैरामिलेट्री नहीं होता, यह तो अनुशासन का भाव निर्माण करने के लिये है।

संघ के फण्ड के सम्बन्ध में भ्रन्तियाँ—एक अन्य आक्षेप संघ के फण्ड के बारे में किया जाता है। मार्च चुनावों के उपरान्त एक राजनैतिक दल के चुनाव फण्ड के हिसाब के बारे में प्रश्न उठा तो उस दल के सदस्यों ने कहा कि संघ के फण्ड का हिसाब क्या है। यह जो आज हजारों स्वयंसेवकों ने गणवेश पहना यह सब इन्होंने अपने खर्चे से बनवाया। यहाँ कोई भी स्वयंसेवक ऐसा नही है जिसको गणवेश मुफ्त मे मिला हो। बाकी संस्थायें चन्दा एकत्र करती हैं, दुकानदारों से कपड़ा लेती हैं गणवेश सिलाती हैं और फिर उसको बाँटती है। संघ में ऐसा नहीं होता। यह हजारों स्वयंसेवक आज यहाँ भिन्न ग्रामों से बस से आये हैं। इस बस का किराया इन्होंने अपनी जेब से दिया है। हमारे यहाँ शिविर तो 25 दिन के लगते हैं और उनका खर्चा 100 रु तक आता है। यह सारा खर्चा स्वयंसेवक स्वयं करता है। इस पद्धति का सारा श्रेय डा० हेडगेवार जी को जाता है।

स्वयं सेवक का वास्तविक अर्थ'— इसका अन्तर कैसे आया। हम स्वयंसेवक है। हम वालिन्टीयर नहीं। स्वयंसेवक शब्द का अर्थ क्या? देश—भक्त, जागरूक, चारित्र्यवान, स्वयं की प्रेरणा से, त्याग से, बलिदान से काम करने वाला। इस प्रकार का अर्थ स्वयंसेवक शब्द में निहित हैं। इनको क्या बताया कि घर में लड़की का विवाह हो तो उसमें खर्चा करना पड़ता है तो हम चन्दा माँगते हैं क्या किसी से बीमारी का खर्चा हो तो क्या चन्दा माँगते है उसके लिये दूसरे से चन्दा माँगेंगे क्या? हम अपना समय देगे गणवेश भी अपना बनायेगे और उस कार्य के लिये गुरु दक्षिणा के रूप में धन भी हमी देगें। जिससे संघ कार्य

का खर्चा चल सके। हम भगवा ध्वज को गुरु मानते हैं। एक विशिष्ट दिन अपने गुरु के सामने आते हैं, पूजन करते हैं और दिल खोलकर, मन खोलकर दक्षिणा करते हैं, उससे संघ का सारा खर्चा चलता है। हमको किसी के पास जाना नहीं पड़ता। शुरू शुरू मे नागपर में हमारी शाखा का गुरु दक्षिणा उत्सव था। अध्यक्ष थे दादा साहब आपेड। प्रत्येक स्वयं सेवक ध्वज के समक्ष आता था, प्रणाम करता था और गुरु दक्षिणा करता था। बाद में जब हम बोलने के लिए खड़े हुए तो मेरे घर में भी त्याग की परम्परा है। मैं भी देश के लिए सब प्रकार का त्याग और बलिदान करने के लिए तैयार हूँ। सामने जहरीले नाग का बिल है यदि मुझे आज्ञा करोगे कि हाथ डालकर जहरीले साप को खींचो तो मैं करूँगा। शेर है उसके मुँह में हाथ डालकर दाँत गिनों, तो मैं गिनूँगा आदि। मैं सब कुछ करने के लिए तैयार हूँ। लेकिन यदि आप मुझे कहेंगे कि जेब में हाथ डालकर अपना बटुआ निकालो तो मैं यह नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त मुझसे चाहों जो काम करा लो। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि डाक्टर हेडगेवार जी ने क्या किया है। कि आप लोग आ रहे हो पूजन कर रहे हो और बहुत बड़ी मात्रा में दक्षिणा दे रहे हो। यह है हमारी कार्य पद्धति की विशेषता जब तक कार्य पद्धति का वैशिष्टय समझ नहीं आयेगा। संघ कार्य समझ में नहीं आयेगा।

आंध्र का तूफान और संघ का सेवा कार्य– अभी कुछ दिन पूर्व आंध्र में बहुत भारी तूफान आया। कुछ दिन पहले मैं वहाँ होकर आया। बहुत भंयकर विनाश हुआ है। आपने अखवार में पढ़ा होगा कि कुछ दिन पहले इन्दिरा जी वहाँ गयी थी। उन्होंने वहाँ संघ के स्वयं सेवकों को पहले से काम करते हुए देखा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने कांग्रेस के नेताओं से पूछा कि कांग्रेस बाले कहाँ हैं तो उन्हें उत्तर मिला (दे आर वर्किग वट ओन ए सार्फ व्लैस) सुरक्षित स्थानों पर काम कर रहे हैं। उनको आश्चर्य लगा होगा परन्तु हमको नहीं हुआ। क्योंकि यही हमारा संस्कार है, हम यहाँ सिखाते हैं, यहाँ शिक्षा देते है कि हम समाज के हैं और सारा समाज हमारा है। समाज हमको देता है और

हमें समाज को वापस देना चाहिए। समाज में यदि कंहीं संकट आता है तो दौड़कर हमें जाना चाहिए। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह तो स्वाभाविक बात है। इस प्रकार के संघ के संस्कार है और इन संस्कारों का सब जगह प्रभाव निर्माण हो ऐसा हमारा प्रयास है।

देश के विकास के लिए सब जगह अच्छी योजनाएं बनेंगी और उन योजनाओं को सफलता तभी मिल सकती है जब समाज का सहकार्य उनको प्राप्त होता है। समाज से सहकार्य मिलने से फिर एक हवा खड़ी होती है। ऐसी हवा खड़ी होने से समाज उन्नति करता है। मैं सभी बन्धुओं से अनुरोध करूँगा कि वह संघ के साथ आयें, सम्बन्ध स्थापित करें और संघ की कार्य पद्धति को समझें संघ के स्वयं सेवको से कहूँगा कि हम विचार करें कि अपना कार्य कितना कितना उसे आगे बढ़ाना है। जो स्वयं सेवक रहे है उनसे मिलना, जो मित्र हैं उनसे भी मिलना जिनकी सहानभूति है उनसे भी मिलना, जो तटस्थ हैं उनसे मिलना, जो विरोधी है उनसे भी सम्पर्क स्थापित करना है क्योंकि वह कल भी अपने होने वाले हैं। संघ का कार्य सारे देश में फैल कर प्रभावी हो जायेगा। इसके प्रभावी होने के कारण समाज की दुरवस्था दूर हो सकेगी। अनुशासित समाज खड़ा हो सकेगा।

हजारों वर्ष पहले हमारे विधि के महर्षि, मनु ने कहा है कि जिस राज्य में न्याय की व्यवस्था सुरक्षित नहीं रहती, वहाँ कोई भी वस्तु सुरक्षित नहीं रहती। हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं कि शासक कोई भी क्यों न हो, उसे न्याय का उलंघन करने का अधिकार नहीं है। धर्मशास्त्र कहते है कि जो राजा अन्यायी हो जाए, उसको प्रजा हटा सकती है।

चतुर्थ सरसंघ चालक– ''सिन्धु से गम्भीर हिमालय सी उच्चता प्राप्त आकाश से असीम विचारों के प्रस्तोतता एवं धरती–से क्षमावान कुशल एवं निष्णात अध्येता, विश्वविद्यालयीन प्राध्यापकीय गरिमा से युक्त, हँसमुख व्यक्तित्व वाले ऊपर से कठोर तथा अन्तर में गंगा सी पावनता और शीतलता विकीर्ण करने वाले, अनुशासन प्रिय एवं उत्कट राष्ट्र–भक्त महा मनीषी प्रोफेसर (प्राध्यापक) माननीय राजेन्द्र सिंह उपाख्य ''रज्जू भैया'

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के चतुर्थ सरसंघचालक नियुक्त किये गये।

आपके मुख मण्डल पर दिव्य आभा विकीर्ण होती रहती थी। गौरवर्ण, उन्नतललाट, ललाट पर चिन्तन गम्भीर्य की त्रिरेखा आँखों में सुनहरी फ्रेम का मोटा चश्मा, सिर पर छोट–छोटे बाल, श्वेत धोती, श्वेत कुर्ता एवं गले में एक श्वेत उत्तरीय और पैरों में शोलापुरी काली चप्पल। संघ शिविरों एवं विशेष कार्यक्रमों के अवसरों पर संघ का पूर्ण गणवेश धारण करना वे कभी भी विस्मरण नहीं करते थे। शिशु जैसा सारल्य, मिलनसारिता एवं उदात्त चिन्तन उनकी अन्य विशेषतायें थीं। उन्होंने संघ को सर्वस्व मान 'संघं शरणं गच्छामि' की अनुकरणीय परिपाटी का प्रारम्भ किया। वे मितव्यता की साक्षात मूर्ति थे। संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं पर उनका पर्याप्त अधिकार था।'' (डॉ0 राम स्वरूप खरे)

यदि मैं भूल नहीं रहा हूँ तो वह मार्च 94 की ग्यारह तारीख थी और विश्व के सबसे बड़े स्वयंसेवी संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के मुख्यालय नागपुर में रेशिम बाम स्थित डा0 हेडगेवार–भवन के विशाल सभा मण्डप में संघ की अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की वार्षिक बैठक का उद्घाटन सत्र, दिन के दस बजे थे। सम्पूर्ण भारत से आये एक हजार से भी अधिक प्रतिनिधियों के बीच संध के सरकार्यवाह (महामंत्री) श्री हे. वे शेषाद्रि ने सभी का स्वागत किया, जो गत वर्ष हमें छोड़ कर चले गये उन्हें श्रद्धांजलि दी तथा गत वर्ष के कार्य का एक समीक्षात्मक वृत्त सबके सम्मुख रखा............तभी बायीं ओर कुछ हलचल और सबने देखा कि चार–छह स्वयंसेवक एक पहिए वाली कुर्सी पर सरसंघचालक श्री बाला साहब देवरस को मण्डप में लाए। तीन–चार अन्य के सहयोग से वे मंच पर पहुँचे, ध्वनिवर्धक उनके सामने रखा गया और धीरे–धीरे उन्होंने बोलना प्रारम्भ किया–''पूजनीय श्री गुरुजी ने 1973 में मुझे यह भार सौपा, आप सभी के सहयोग से मैंने इसे अब तक निभाया है, पर स्वास्थ्य की खराबी के कारण अब मेरे लिए प्रवास करना सम्भव नहीं है। अतः मैंने सभी वरिष्ठ कार्यकर्ताओं से परामर्श के बाद यह निर्णय लिया है कि आज से हम

सबके सुपरिचिति प्रो0 राजेन्द्र सिंह सरसंघचालक का दायित्व वहन करेंगे। जिस प्रकार आप सभी ने अब तक मुझे सहयोग देकर संघ कार्य को बढ़ाया है, उसी प्रकार रज्जू भैया को भी आपका पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा—यह मुझे विश्वास है, मैं भी एक स्वयंसेवक के नाते जो बन पड़ेगा करूँगा।"

मैंने अपनी घड़ी देखी, दिन के 10.40 हुये थे संघ के इतिहास का एक महत्वपूर्ण पृष्ठ इस प्रकार अचानक मेरी आँखों के सामने लिखा जायेगा—इसकी तो कल्पना ही नहीं थी। मैने आसपास देखा, वातावरण में एक अजीव सी शून्यता थी। सबकी आँखें नम थी परन्तु सब मंच की ओर अपलक, एकटक देख रहे थे। मानों इस अविस्मरणीय क्षणों को अपनी आखों में कैद कर लेना चाहते हों। एक पुष्प गुच्छ और श्रीफल पूज्य बालासाहब ने रज्जू भैया को भेंट किया, रज्जू भैया ने भी श्रद्धापूर्वक नतमस्तक होकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया और अपने संक्षिप्त उद्बोधन में सभी से सहयोग तथा शुभाशीष की कामना की।

प्रो0 राजेन्द्र सिंह का जन्म 29 जनवरी 1922 को उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद में स्थित ग्राम बनैल में हुआ। आपके पिता कुंवर बलवीर सिंह अंग्रेज शासन में बने पहले भारतीय मुख्य अभिन्यता (चीफ इन्जीनियर) थे। सम्पूर्ण क्षेत्र में इस परिवार की योग्यता की धाक थी, रज्जू भैया के अन्य दो भाई—यतीन्द्र सिंह राजस्थान पब्लिक सर्विस कमीशन के अध्यक्ष रहे तथा दूसरे श्री विजेन्द्र सिंह भारतीय प्रशासनिक सेवा में रहते हुए सेन्ट्रल वाटर पॉवर कमीशन सी0पी0 डब्लू0 सी0 के अध्यक्ष पद से सेवा मुक्त हुए। कुंवर बलबीर सिंह बड़े स्वाभिमानी, कर्मठ, प्रामाणिक कर्तव्यपरायण तथा सादगी पसन्द व्यक्ति थे—सरकार की ओर से उनके लिए निर्धारित वेतन उनकी आवश्यकता से काफी अधिक था, अतः वे पूरा वेतन लेते ही नहीं थे। उनकी धर्मपत्नी श्री मती अनंदा देवी का जीवन भी साधारण भारतीय गृहिणी की तरह अपने बच्चों की शिक्षा—दीक्षा एवं विकास को समर्पित था। रज्जू भैय्या पर अपने माता—पिता के संस्कारों तथा व्यवहार का पूरा प्रभाव पड़ा। दिल्ली तथा

नैनीताल के पब्लिक स्कूलों में प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण करने के बाद उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रवेश लेकर भौतिक विज्ञान में एम.एस.सी. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और फिर प्रयाग विश्वविद्यालय में ही अध्यापन कार्य करना स्वीकार किया।

प्रतिभाशाली छात्र—उनके छात्र जीवन के यों तो अनेक संस्मरण हैं पर सर्वाधिक चर्चित हुई वह घटना, जब नोबुल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक डा0 सी0 वी0 रमन एम. एससी0 अन्तिम वर्ष की परीक्षा लेने प्रयाग आए। उन्होंने जो प्रश्न सबके समाने रखा उसे छात्र तो क्या विश्वविद्यालय के प्राध्यापक भी हल नहीं कर पाए, अपवाद रहा राजेन्द्र सिंह नाम का एक छात्र। डा. रमन उस छात्र की प्रतिभा से इतने प्रभावित हुए कि उसे बंगलौर चलकर अपने साथ शोध कार्य में सहायक बनने का निमंत्रण दे डाला। परन्तु युवा राजेन्द्र ने तो अपने जीवन का लक्ष्य माँ भारती की आराधना करना ही बना लिया था, अतः विनम्रता से उन्होंने उस निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। डा0 रमन के निकट सहयोगी डा0 कृष्णन् ने प्रयाग में संघ प्रचारक बापूराव मोघे को बहुत समझाया—तुम देश के एक महान वैज्ञानिक की हत्या कर रहे हो, बापूराव का उत्तर था राजेन्द्र अपने जीवन की दिशा निर्धारित करने में स्वयं समर्थ है, वह अपनी इच्छानुसार कोई भी मार्ग चुन सकता है परन्तु बड़ी से बड़ी वैज्ञानिक उपलब्धि भी उसे वह आत्मसंतोष नहीं दे पाएगी जो संघ कार्य से उसे प्राप्त होगा।

प्रिय प्राध्यापक— रज्जू भैय्या के इस निर्णय ने उनके माता—पिता को भी स्तंभित कर दिया जो उनका विवाह करके घर में पुत्रबधू लाने का सपना संजो रहे थे, परन्तु उन्होंने तो आजीवन अविवाहित रहकर समाज और राष्ट्र की सेवा करने का व्रत मन में पाल लिया था। उन्होंने प्रयाग का अपना मकान संघ कार्यालय के उपयोग के लिए दे दिया। प्रयाग विश्वविद्यालय ने छात्र, अध्यापक, कर्मचारी तथा अन्य सभी वर्गों में लोकप्रिय ऐसा व्यक्तित्व शायद अभी तक नहीं देखा था। वे भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक तथा विभागाध्यक्ष रहे पर इतिहास, भूगोल, साहित्य आदि विषयों में उनके भाषण लोग

तन्मयता से सुनते थे। घर से विश्वविद्यालय प्रायः पैदल आना–जाना, साधारण वस्त्र पहनना, स्वयं भोजन बनाना, कपड़े धोना आदि देखकर लोग आश्चर्य करते थे। इतना पैसा बचाकर क्या करोगे प्रोफेसर? साथी मित्र पूछते थे, अरे दो चार आने बच जायेंगे तो किसी के काम ही आएंगे–सीधा सरल उत्तर होता था रज्जू भैय्या का।

अतिसाधारण जीवन– विश्वविद्यालय की प्राध्यापकी के साथ–साथ संघ कार्य हेतु पूरे उत्तर प्रदेश में प्रवास भी चलता रहता था। रेल बस, साइकिल, मोटर साइकिल, पैदल............जो जहाँ जैसा मिला, पर समय से निर्धारित कार्यक्रम में पहुँचना ही है। प्रेमनगर (देहरादून) के श्री रोशनलाल जी बताते हैं–1955 में देहरादून के विद्यार्थी स्वयंसेवकों का वन विहार कार्यक्रम मानस सिद्ध मन्दिर पर हुआ। रज्जू भैय्या उसमें आने वाल थे, मुझे देहरादून बस अड्डे पर उन्हें लेने जाना था। निर्धारित समय पर बस से वे उतरे। नमस्कार के बाद मेरी दुबली–पतली काया और साइकिल को देखकर बोले मुझे बैठाकर चला लोगे? जी नहीं, तो फिर आगे बैठो–और मानक सिद्ध मन्दिर तक (लगभग 15 कि मी0) रज्जू भैय्या मुझे साइकिल पर बैठाकर ले गए। रास्ते भर संघगीत, कहानी, संस्मरण भी साइकिल के साथ–साथ चलते रहे।

दीन दयाल शोध संस्थान के श्री देवेन्द्र स्वरूप बताते हैं। 1949 में उनका बलिया प्रवास हुआ। रेलगाड़ी आने पर हमने उन्हें प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, और फिर इन्टर श्रेणी के डिब्बे में तलाश किया पर वे नहीं मिले। निराश होकर हम लौट ही रहे थे कि देखा कंधे पर अपना बिस्तर और झोला टाँगे रज्जू भैय्या तृतीय श्रेणी के डिब्बे से उतर रहे थे। उनकी वापसी यात्रा के लिए हमने द्वितीय श्रेणी में आरक्षण कराया था पर उन्होंने तुरन्त वापिस कराया और अपनी जेब से पैसे देकर तृतीय श्रेणी के टिकट की व्यवस्था कराई। प्रवास का सारा खर्च वे अपने वेतन से ही वहन करते थे। यात्रा के बीच पड़ने वाले स्टेशन पर स्वयंसेवक उनके लिए भोजन–जलपान लेकर आएँ, इसकी अपेक्षा वे एक दो रूपये में मिलने वाला पूड़ी सब्जी का पैकेट लेकर खाना अधिक पसन्द करत थे। रेलवे स्टेशन और

बस अड्डे के पास कौन से ढाबे में सस्ता और अच्छा खाना मिलता है, इसकी जानकारी उन्हें खूब रहती थी। इतनी मितव्ययता के बाद जो कुछ बचता था वे सब परम पवित्र भगवा ध्वज के सम्मुख श्री गुरु–दक्षिणा के रूप में अर्पण कर देते थे। उनका यह स्वभाव आज भी बना है, दो वर्ष पूर्व जब उनकी पौरुष ग्रन्थि का आपरेशन हुआ तो सारा खर्च उन्होंने स्वयं वहन किया। संघ का एक भी पैसा इस हेतु स्वीकार नहीं किया।

संघ हेतु पूर्ण समर्पण–1966 में उन्होंने विश्वविद्यालय की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया तथा सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में संघ कार्य को गतिमान करने में जुट गए। श्री बापूराव मोघे, श्री भाऊराव देवरस और तत्कालीन सरसंघचालक श्री मा0 स0 गोलवलकर (गुरुजी) का स्नेहपूर्ण आशीर्वाद और मार्गदर्शन उनके साथ था ही धीरे–धीरे कार्यक्षेत्र बढ़ता गया। 1979 में उत्तर प्रदेश के साथ–साथ बिहार का कार्य भी उनकी ओर आ गया। 1975–76 में संघ पर प्रतिबन्ध और आपातकाल के दौर में रज्जू भैय्या प्रो0 गौरव कुमार के नाम से सतत् प्रवास करत रहे तथा इन्दिरा गाँधी द्वारा की गई लोकतंत्र की हत्या के विरुद्ध संघ के स्वयंसेवकों द्वारा किए गए देशव्यापी अभूतपूर्व सत्याग्रह तथा भूमिगत गतिविधियों को ठीक दिशा प्रदान करते रहे। जेल में बंद स्वयं सेवकों के परिवार जनों को कोई कष्ट न हो, इस ओर उनका विशेष आग्रह रहता था।

लोकतंत्र के रक्षक– 1977 में चुनाव की घोषणा हो जाने के बाद तो रज्जू भैय्या ने आगामी परिवर्तन में बड़ी प्रमुख भूमिका निभाई जेलों मं गुप्त रूप से जाकर बड़े–बड़े नेताओं से भेंट की। चौ0 चरण सिंह, मोरारजी देसाई, जार्ज फर्नाडीस जैसे नेता बहुत निराश थे–क्या होगा? चुनाव से कौन हमारे लिए काम करेगा? इन्दिरा गाँधी का तो दिमाग खराब है, हमें हमारे हाल पर छोड़ दो............हमारा बुढ़ापा खराब मत करो...... ....आदि निराशाजनक टिप्पणियाँ रज्जू भैय्या को उन दिनों बहुत सुननी पड़ती थीं, पर वे निरन्तर प्रयास में लगे रहे और फिर देश ने देखा कि जनता पार्टी के बैनर तले सभी विपक्षी दलों ने सामूहिक रूप से चुनाव लड़ा और इन्दिरा गाँधी जैसी निरंकुश तानाशाह

को गद्दी छोड़ने पर मजबूर कर दिया। इस सारे एकता प्रयास के पीछे यदि किसी व्यक्ति के अनथक परिश्रम को श्रेय देना हो तो वह निःसन्देह रज्जू भैय्या ही हैं।

सरकार्यवाह—रज्जू भैय्या की इस असामान्य प्रतिभा और कुशल संगठन क्षमता को संघ के केन्द्रीय नेतृत्व ने पहचाना और उन्हें 1977 में सहसरकार्यवाह तथा 1978 में सरकार्यवाह (महामंत्री) जैसा महत्वपूर्ण दायित्व सौंप दिया गया, और फिर शुरू हुआ—देश विदेश के प्रवास का अंतहीन सिलसिला जो आज तक अनवरत जारी है। नौ वर्ष तक इस महत्वपूर्ण दायित्व को सँभालने के बाद नए और युवा कार्यकर्ता को आगे आने का अवसर प्रदान करने की संघ पद्धति का अनुसरण करते हुए रज्जू भैय्या ने दक्षिण भारत के क्षेत्रीय प्रचारक श्री हो० वे० शेषाद्रि को सरकार्यवाह बनाने का आग्रह किया और स्वयं सरकार्यवाह (महामंत्री) रहते हुए उनका सहयोग करते रहने का काम सँभाला। नौ वर्ष तक जिस व्यक्ति ने संघ के सर्वोच्च अधिकार प्राप्त अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की गतिविधियों का संचालन किया, आज वही व्यक्ति दूसरे कार्यकर्ता को यह काम सौंप कर निरहंकार भाव से स्वयंसेवक प्रतिनिधियों के बीच जा बैठा। संघ का इस निराली रीति—नीति को वे लोग कैसे समझ सकते हैं— जो संघ को केवल पत्र—पत्रिकाओं के माध्यम से ही समझने का प्रयास करते हैं।

चतुर्थ सरसंघचालक— और 11 मार्च 1994 को यह इतिहास फिर दोहराया गया, जब पूजनीय बाला साहब देवरस ने पुरानी परम्परा तोड़ते हुए अपने सामने ही प्रो० राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैय्या) को संघ का सर्वोच्च अधिकारी—सरसंघचालक बना दिया और स्वयं शामिल हो गए स्वयसेवकों की उस असीम और अटूट श्रृंखला के मध्य जहाँ एक ही स्वर सदैव गूँजता रहता है—

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे

भारत माता की जय।

नवीन सोच के धनी, उत्कृष्ट चिन्तक, प्रबुद्ध प्रशासक, व्यावहारिक जीवन के

प्रतिष्ठापक, हिन्दुत्व की प्रबल भावना के पोषक एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को प्राप्त इस देव–दुर्लभ नेतृत्व की नूतन कड़ी के नायक हम सबके परम पूजनीय पाँचवें सरसंघ चालक माननीय कुप्पली सीतारामय्या सुदर्शन ने यह गुरुतर दायित्व 10 मार्च 2000 ई0 में सँभाला।

10 मार्च की एक और घटना भी भुलाये नहीं भूलती। सायं शाखा मे प्रार्थना का समय हुआ। माननीय रज्जू भैय्या एवं नूतन सरसंघ चालक माननीय सुदर्शन जी एक ही कार से संघ स्थान पर पहुँचे। मुख्य शिक्षक ने दो लम्बी सीटी बजाकर संकेत दिया। सब स्वयसेवक दक्ष में आ गये। माननीय सुदर्शन जी ध्वज स्थान की ओर बढ़े। सबने देखा माननीय रज्जू भैय्या भी कार के पास ही छड़ी के सहारे 'दक्ष' में खड़े थे। माननीय सुदर्शन जी द्वारा अपना स्थान ग्रहणकर लेने के बाद वे आगे बढ़े, ध्वज प्रणाम और सरसंघ चालक को प्रणाम किया और फिर धीरे–धीरे चलते हुये सबसे निकट की पँक्ति में 'अग्रेसर' के पीछे खड़े हो गये। ....सात आठ धण्टे पूर्व के सर संघ चालक एकदम सामान्य स्वयंसेवक बन गये थे, फिर भी मन में कोई खेद या विषाद नहीं। शाखा 'विकिर' होने के बाद वे सबसे हँसते–बोलते हुये कार में बैठ कर अपने आवास पर चले गये।''43

दायित्व से स्वैच्छिक मुक्ति के बाद भी वे प्रायः सभी प्रमुख बैठकों तथा कार्यक्रमों में उपस्थित रहकर विचार–विमर्श हेतु सदैव उपलब्ध रहते थे।

10 मार्च, सन् 2000 ई. को नागपुर में हुई अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के उद्घाटन सत्र में माननीय रज्जू भैय्या ने अस्वस्थता के कारण यह दायित्व माननीय सुदर्शन जी को सौंपा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की संगठनात्मक सरंचना में सरसंघ चालक का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। उन्हें मित्र, चिन्तक तथा मार्ग दर्शक (फ्रैण्ड, फिलासफर तथा गाइड) माना जाता है। यद्यपि सम्पूर्ण देश के प्रतिनिधियों द्वारा प्रति तीन वर्ष बाद निर्वाचित होने के कारण सरकार्यवाह का स्थान संवैधानिक रूप से संघ में सर्वोच्च हैं तथा सभी

प्रशासनिक निर्णय सरसंघ चालक जी के परामर्श से वे ही लेते हैं।

आज संघ तथा उसके समविचारी संगठनों का प्रचार–प्रसार तथा प्रभाव भारत के शहरों में ही नहीं तो सुदूर वन–पर्वत तथा बीहड़ के रेगिस्तान के साथ–साथ विश्व के उन सभी देशों तक पहुँच चुका है, जहाँ–जहाँ हिन्दू रहते हैं। संघ कार्य के इस सर्वव्यापी, सर्वस्पर्शी, सर्वसिद्ध तथा सर्वप्रिय स्वरूप का बहुत बड़ा श्रेय परमपूज्य सरसंघ चालकों के रूप में संघ को प्राप्त देव दुर्लभ नेतृत्व को ही है।"[44]

सम्प्रति हम सब स्वयं सेवक माननीय सुदर्शन जी के कुशल नेतृत्व में भारत माता की सेवा में अग्रसर हो रहे हैं।

संघ में व्यक्ति का वैयक्तिक परिचय उतना महत्व नहीं रखता जितना कि उसका कृतित्व श्रेयस्कर होता है। फिर भी सामान्य जानकारी के निमित्त माननीय सुदर्शन जी का संक्षिप्त परिचय कुछ इस प्रकार है :–

श्री सुदर्शन जी मूलतः तमिलनाडु और कर्नाटक की सीमा पर बसे कुप्पहल्ली (मैसूर) ग्राम के निवासी हैं। यद्यपि पिता श्री सीता रामय्या अपनी वन विभाग की नौकरी के कारण ज्यादातर मध्य प्रदेश में ही रहे और वहीं रायपुर में 18 जून सन् 1931 को श्री सुदर्शन जी का जन्म हुआ। रायपुर, दमोह, मण्डला तथा चन्द्रपुर में प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करने के बाद उन्होंने जबलपुर (सागर विश्वविद्यालय) से सन् 1954 ई0 में दूर संचार विषय में बी0 ई0 की उपाधि ली तथा तब से ही संघ प्रचारक के नाते राष्ट्र–हित में जीवन समर्पित कर दिया। सन् 1964 ई0 में उन्हें मध्यभारत का प्रान्त प्रचारक का दायित्व मिला। श्री सुदर्शन जी ज्ञान के भण्डार, अनेक विषयों के ज्ञाता तथा अद्भुद वक्तृत्व कला के घनी हैं। किसी भी समस्या की गहराई तक जाकर उसके वारे में मूलगामी चिन्तन कर उसका वास्तविक समाधान ढूँढ निकालना उनकी विशेषता है। चाहे पंजाब की खालिस्तान समस्या हो या असम का घुसपैठ विरोधी आन्दोलन, अपने गहन अध्ययन तथा चिन्तन की स्पष्ट दिशा के कारण आपने इसके निदान हेतु ठोस सुझाव ही नहीं दिये अपितु संघ

के कार्यकर्ताओं को उस दिशा में सक्रिय कर आन्दोलन को गलत दिशा में जाने से रोका। पंजाब के बारे में उनकी यह सोच कि प्रत्येक केशधारी हिन्दू है तथा प्रत्येक हिन्दू दसों गुरुओं व उनकी पवित्र वाणी के प्रति आस्था रखने के कारण सिख है।

इसी प्रकार बंगला देश से असम में आनेवाला मुसलमान षड्यन्त्रकारी आनेवाला हिन्दू शरणार्थी है, अतः उसको सहानुभूति पूर्वक शरण देनी चाहिये। ऐसे ही पूरे देश से नौकरी अथवा व्यवसाय के नाते पूर्वांचल में गये हिन्दुओं को घुसपैठिया कहकर उनका तिरष्कार नहीं किया जा सकता। यह कहना गलत नहीं होगा कि माननीय सुदर्शन जी के चिन्तन एवं अध्ययन के इन निष्कर्षों को जब संघ के स्वयंसेवकों, वरिष्ठ अधिकारियों तथा देश भक्त नागरिकों ने बोलना शुरू किया तो पंजाब और असम आन्दोलन की दिशा की बदल गई, आज ये दोनों प्रान्त लोकतांत्रिक भारत में अपनी प्रभावी भूमिका निभा रहे हैं।

खालिस्तान आन्दोलन के दिनों में राष्ट्रीय सिरव संगत नामक संगठन की नींव रक्खी गई जो आज भारत में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व में बसे केशधारी हिन्दू बन्धुओं का एक सशक्त मंच बन चुका है।

माननीय सुदर्शन जी को संघ–क्षेत्र में जो भी दायित्व दिया गया, उसमें अपनी नवीन सोच के आधार पर उन्होंने नये नये प्रयोग किये। सन् 1969 ई0 से 1971 ई0 तक उन पर अखिल भारतीय शारीरिक प्रमुख का दायित्व था। इस दौरान ही खंग, शूल, क्षुरिका आदि प्राचीन शस्त्रों के स्थान पर नियुद्ध, आसन, खेल...............आदि को संघ शिक्षा वर्गों के पाठयक्रम में स्थान मिला। आज तो प्रातः कालीन शाखाओं पर आसन तथा विद्यार्थी शाखाओं पर नियुद्ध एवं खेल का अभ्यास होना एक सामान्य बात हो गई हैं। आपातकाल के अपने बन्दीवास में उन्होंने योगचाप (लेजम) पर नये प्रयोग किये तथा उसके स्वरूप को बिल्कुल बदल डाला। योग चाप की लय और ताल के साथ होने वाले संगीतमय व्यायाम से 15 मिनट में ही शरीर का प्रत्येक जोड़ आनन्द एवं नव स्फूर्ति का

अनुभव करता है। सन 1977 ई0 में उनका केन्द्र कोलकाता बनाया गया तथा शारीरिक प्रमुख के साथ–साथ बंग्ला और असममिया भाषा पर भी उन्होंने अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया।

सन् 1979 ई0 में उन्हें अखिल भारतीय बौद्धिक प्रमुख का दायित्व मिला। आज शाखाओं पर बौद्धिक विभाग की ओर से होने वाले दैनिक कार्यक्रम (गीत, सुभाषित, अमृत वचन) साप्ताहिक कार्यक्रम (चर्चा, कथा–कथन, प्रार्थना, अभ्यास) मासिक कार्यक्रम (बौद्धिक वर्ग, समाचार, समीक्षा, जिज्ञासा–समाधान, गीत, सुभाषित, एकात्मता स्तोत्र.........आदि की व्याख्या) तथा सुव्यवस्थित रचनाक्रम सन 1979 ई0 से 1990 ई0 के काल–खण्ड में ही मिला। इतना ही नहीं तो शाखाओं पर होनेवाले प्रातः स्मरण के स्थान पर नये एकात्मता स्तोत्र तथा एकात्मता–मंत्र की रचना करवाकर उसे उत्साह पूर्वक प्रचलित भी कराया।

देश का बुद्धिजीवी, समाज, जो कम्युनिष्ट आन्दोलन की विफलता के कारण वैचारिक संग्राम में डूबता उतराता दिखता है, उसकी सोच एवं प्रतिभा को राष्ट्रवाद के प्रवाह की ओर जोड़ने हेतु 'प्रज्ञा–प्रवाह' नामक वैचारिक संगठन भी आज देश के बुद्धिजीवियों में लोकप्रिय हो रहा है। संघ कार्य तथा वैश्विक हिन्दू एकता के प्रयासों की दृष्टि से आपने ब्रिटेन, हालैण्डद्व केन्या, सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैण्ड, हांगकांग, अमेरिका, कनाडा, त्रिनिडाड, टुबेगो, गुयाना आदि देशों का प्रवास भी किया है।

पर ये तो कुछ नमूने मात्र हैं। सरसंघ चालक जैसे महत्वपूर्ण दायित्व को सँभालने के बाद उनके जीवन–दृश्य के अनेक आयाम अभी खुलना बाकी हैं। इक्कीसवीं शदी का विश्व स्वयं में विचारधारा और सभ्यताओं के संघर्ष की असीम सम्भावनायें समेटे है, निश्चित रूप से उसमें घृणा, हिंसा और असहिष्णुता पर आधारित विचारों की पराजय तथा प्रेम, सहिष्णुता एवं सबके हित की कामना करने वाली हिन्दू विचारधारा की ही विजय होनी है। विश्व प्रसिद्ध फ्रांसीसी ज्योतिषी नास्त्रेदेमय ने चार–पाँच सौ वर्षों पूर्व ही हिन्दुत्व

और भारत की जय जयकार तथा इसके माध्यम से विश्व में होने वाले सुखद परिवर्तनों का संकेत कर दिया था। यह कहना शायद् अतिशयोक्ति न होगी कि इस वैचारिक संघर्ष में निर्णायक भूमिका राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को ही निभानी है।''[45]

(च) आनुषांगिक अन्य संगठन– राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ निश्चित रूप से अब एक विशाल वट–वृक्ष के सदृश्य है जिसकी अर्ध्वगामी अनेक शाखायें निम्नगामी बनकर जड़ों का काम करके पुनः एक वृक्ष को स्वतंत्ररूप से खड़ा करने की अभ्यस्त हो जाती हैं। वे पृथक पृथक रहते हुये उस प्रधान मूल से जुड़ी रहती हैं जिससे वे अपना सारग्राही प्राण तत्व प्राप्त करती हैं। संघ के अन्य आनुषांगिक संगठन भी कुछ इसी प्रकार के हैं।

1975 ई0 से 1977 ई0 तक की आपातकालीन रात्रि बीतने के बाद संघ के स्वयं सेवकों द्वारा समाज–जीवन के विविध क्षेत्रों में चलाये जाने वाले संगठनों को जो अखिल भारतीय स्वरूप, ख्याति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उसके पीछे परमपूज्य सरसंघचालक बालासाहब देवरस जी का सुयोग्य मार्ग–दर्शन तथा योजनाबद्ध रीति से अनेक नये एवं युवा प्रचारक कार्यकर्ताओं को इन क्षेत्रों में भेजना, यही प्रमुख कारण है।

''देश को पुनः खण्डित करने का स्वप्न देखने वाली मुसलिम मनोवृत्ति को टक्कर देने के लिये 'विश्व हिन्दू परिषद' धर्मान्तरण के माध्यम से भारत के कुछ भागों में अलगाववाद की भावना पैदा करने में सफल ईसाई संगठनों पर रोक लगाने के लिये 'वनवासी कल्याण आश्रम' सदैव रूस और चीन के गुण गाने वाले,धर्म को अफीम बताकर धर्म प्राण भारत के आधार को चोट पहुँचाने वाले तथा सारे दुनियाँ के मजदूरों को लाल झण्डे के नीचे लाने का स्वप्न देखने वाले कम्युनिष्टों का श्रमिक क्षेत्र में ही मात देने के लिये 'भारतीय मजदूर संघ', राजनीति में काँगेस का एकाधिकार तोड़ने के लिए 'भारतीय जनता पार्टी', हिन्दू समाज के उपेक्षित एवं पिछड़े वर्गों को आपसी गलत फहमियाँ दूर करके शेष हिन्दू समाज से जोड़ने, छुआछूत तथा जातिवाद जैसी कुरीतियों को दूरकर सबको एक रस करने के लिये 'सेवा भारती,' विद्यार्थी क्षेत्र में व्याप्त अनुशासन हीनता को

समाप्त करने के लिए 'अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्' हिन्दू शिक्षा–प्रणाली को आधुनिक सर्वव्यायी एवं सर्व स्पर्शी बनाने के लिये 'विद्या भारती–..........जैसे अनेक संगठन आज अपने–अपने क्षेत्र में पूरे भारत में शीर्ष पर खड़े हैं। इन सबकी सार्थक गतिविधियों के कारण आज सम्पूर्ण देश में हिन्दुत्व का प्रबल वातावरण बना है............यह सब बालासाहब एवं उनके कुशल नेतृत्व में काम करने वाले कार्यकर्ताओं की देव–दुर्लभ टोली की तपस्या का ही सुपरिणाम है।"[46]

आज पूरे देश की निर्धन–निर्बल तथा पिछड़ी उपेक्षित वस्तियों एवं गाँवों में स्वयंसेवक विविध नामों से लगभग 50,000 सेवा कार्य चला रहे हैं। इस सब संगठनों या आनुषांगिक संगठनों को सविस्तार समझाने के लिये पृथक–पृथक शोध ग्रन्थों की आवश्यकता होगी। यहाँ तो मात्र उनकी थोड़ी सी झलक ही दिखाई है। सन् 1951 ई0 में संस्थापित भारतीय जन संघ ने राजनीतिक क्षेत्र में अच्छी धाक जमा ली थी। श्री बलराम मधोक एवं श्री दीन दयाल उपाध्याय के मार्गदर्शन में अच्छी खासी प्रगति की। डॉ0 हेडगेवार का यह प्रयत्न रहा है कि इन आनुषांगिक संगठनों का संस्थापक या प्रमुख राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कोई कार्यकर्ता या अधिकारी होता था जो पूर्णरूपेण राष्ट्र के प्रति समर्पित और सच्चे राष्ट्र भक्त होते हैं। यही कारण है कि जिन–जिन संगठनों में त्यागी तपस्वी और प्रायः अविवाहित कार्यकर्ता गये उन–उन क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता मिली।

भारतीय कृषक समाज भी अछूता नहीं रहा उसके लिये संघ ने 'भारतीय मजदूर संघ' की संस्थापना की। इसने भी अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की।

इसी प्रकार 'संस्कार भारती' के माध्यम से सांस्कृतिक क्षेत्र में अनूठे कार्य सम्पादित किये। जितनी भी अन्याय इस क्षेत्र में संस्थायें कार्य कर रही हैं– जैसे रोटरी क्लब आदि उन सबसे संस्कार भारती आगे है। इसने सम्पूर्ण भारत के प्रत्येक जिला में अपनी इकाइयाँ गठित की। अनेक जिलाशः और प्रान्तशः पत्रिकायें निकाली। इनकी एक केन्द्रीय पत्रिका

भी प्रकाशित होती है।

भारतीय शिक्षा–मण्डल' ने शिक्षा विशेष कर अध्यापको के बीच ताल मेल बिठलाने का अच्छा प्रयास किया। इनके इस संघ में अन्यान्य शिक्षक–संघों की भाँति गुटबाजी अथवा खेमेबाजी नहीं है। इसमें राष्ट्रीय विचारधारा से ओत–प्रोत शिक्षकों का अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय योगदान है।

'भारतीय अधिवक्ता संघ' ने अधिवक्ताओं के बीच राष्ट्रीय विचारधारा का प्रचार प्रसार करके ऐसे अधिवक्ताओं का संगठन खड़ा किया जो भारत को एक सम्पूर्ण राष्ट्र मानकर उसकी आन–बान की रक्षा के लिये कटिबद्ध हैं।

केन्द्रीय शासन ने प्रारम्भ से लेकर आज तक न जाने कितने शिक्षा आयोग गठित किये और उन पर करोड़ों रूपये पानी की भाँति व्यय किये किन्तु वे सब आज तक राष्ट्र की कोई श्रेष्ठ शिक्षा–नीति निर्धारित नहीं कर सके। सब पुराने पैटर्न पर आज भी प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा–क्षेत्र में अंग्रेजो द्वारा दी गई मैकाले की मानस पुत्री की अभिवृद्धि करने में ही से सब जुटे रहे। संघ ने अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान 'विद्या भारती' का गठन करके समूचे राष्ट्र में 'पंचवदी शिक्षा' का विस्तार किया और व्यावहारिक रूप देने के लिये गाँव–गाँव तक में 'सरस्वती शिशु मन्दिर', विद्या मन्दिर', संस्थापित करके शिक्षा जगत में आमूल चूल परिवर्तन का बीड़ा उठाया। आज इस प्रकार के सहस्त्रों नहीं वरन् लाखों शिशु एवं विद्या मन्दिर तथा महाविद्यालय बिना किसी शासन की सहायता के मात्र जन सहयोग से संचालित किये जा रहे हैं जिनके अपने भव्य भवन और योग्य तथा सुशिक्षित एवं प्रशिक्षित आचार्य इसमें समपर्ण भाव से अध्यापन कार्य कर रहे हैं।

इनके वार्षिक परिणाम उल्लेखनीय रहते हैं तथा यहाँ बालक सुस्कारों में दीक्षित होकर भावी जगत के सुयोग्य नागरिक बनते हैं। सामज में इनकी अच्छी खासी प्रतिष्ठा और सम्मान है।

इसी प्रकार शोध के क्षेत्र मं 'दीन दयाल शोध संस्थान' दिल्ली एवं अखिल भारतीय

साहित्य परिषद् दिल्ली, साहित्य के क्षेत्र में राष्ट्र को समुचित सम्यक् एवं विशुद्ध राष्ट्रीय दिशा देने में पूर्व रूपेण सिद्ध हो रही है। इसकी प्रत्येक प्रान्त में इकाइयाँ गठित की जा चुकी हैं। इसकी एक वार्षिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है। प्रत्येक वर्ष इसका अखिल भारतीय स्तर पर एक अधिवेशन भी भिन्न–भिन्न प्रान्तों की राजधानियों में सम्पन्न हो रहा है।

सिखों को राष्ट्रीय विचारधारा से जोड़ने के लिये 'राष्ट्रीय सिख संगत' का विशिष्ट महत्व है।

'स्वदेशी जागरण मंच' और 'भारत विकास परिषद्' भी अपने–अपने क्षेत्र में अनूठा योगदान देकर समाज में स्वदेशी के प्रति आत्मीय भाव जाग्रत करने में पूर्ण रूपेण सक्षम है। इसी प्रकार पूरे समाज में 'रोटरी क्लब' आदि की भाँति 'भारत विकास परिषद्' अच्छे अच्छे कार्य करके यशस्विनी बन रही है।

इतिहास संकलन समिति' के माध्यम से राष्ट्र के सच्चे और प्रामाणिक इतिहास लेखन की तैयारी चल रही है। इसमें विश्व ख्याति प्राप्त इतिहासज्ञ इससे जुड़कर गलत धारणाओं की छान–बीन करके उनके स्थान पर सच्ची प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक जानकारी प्रस्तुत कर रहे हैं। जिलाशः इतिहास लेखन का कार्य भी सम्पादित किया जा रहा है। इसके भी अखिल भारतीय स्तर के विशाल–विशाल अधिवेशन सम्पन्न कराये जा रहे हैं।

'राष्ट्र सेविका समिति' के माध्यम से स्त्री–समाज को सुसंगठित करते हुये उनके प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा प्राप्ति की ललक जगाने के साथ–साथ उनमें स्वावलम्बन, मितव्ययता एवं राष्ट्र के प्रति सच्ची जागरूकता उत्पन्न की जा रही है। इन सब बातों से आज की नारी निर्भीकमना बनकर अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा का साहसिक परिचय दे रही हैं।

'पूर्व सैनिक परिषद्' के माध्यम में सेवानिवृत्त सैनिकों को इकट्ठा करके आपत्तिकाल में उनकी अनूठी सेवा का लाभ उठाया जा रहा है। वे अपने को अलग न समझते हुये

राष्ट्रीय विकास की गंगा में अपना अनूठा योगदान देने को कृत संकल्पित हैं।

इनके अतिरिक्त लगभग साठ–पैंसठ ऐसे ही अन्यान्य संगठन सम्पूर्ण राष्ट्र में चलाये जा रहे हैं जिसके द्वारा राष्ट्र की सच्ची सेवा का भाव सम्पूर्ण समाज में जाग्रत हो सके। हिन्दू जागरण मंच, धर्मजागरण, दुर्गा वाहिनी, बजरंग दल, सहकार भारती, भारती जनता पक्ष, वनवासी कल्याण परिषद्, सहकार भारती, लघु उद्योग भारती, भारतीय विचार मंच, नेशनल मेडिको आर्गनाइजेशन, डॉ0 हेडगेवार स्मारक समिति, राष्ट्र संवर्धन मण्डल प्रभृति उल्लेखनीय हैं।

इन सब संगठनों का एकमात्र यही उद्देश्य है कि सम्पूर्ण भारत में निर्भीक और अजेय हिन्दू चेतना समाज में जाग्रत करते हुये सभी भारतवासी चरित्रवान, आत्म संयमी, दृढ़ संकल्पी और सच्चे राष्ट्र भक्त बन सकें। निःसन्देह इन आनुषांगिक अन्यान्य संगठनों से समाज में एक नवीन क्रान्ति की लहर उत्पन्न हुई है। ये सब संस्थायें परम पूज्य डॉक्टर केशव बलीराम हेडगेवार के 'अखण्ड भारत' के सुखद और स्वर्णिम स्वप्न को साकार करने में प्राण–पण से संलग्न हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1–श्री गुरु जी सम्पा0 पद्माकर भाटे,बाला साहब आप्टे स्मारक समिति, रुइकर पथ नागपुर 5 जून 1980 'अपनी बात' से उद्धृत पृ0 4

2–श्री मद् भगवत गीता अध्याय 2, श्लोक सं 27

3–अग्नि शिखा, सम्पादक, रवीन्द्र अनुबेन, अरविन्द सोसायटी पण्डिचेरी वर्ष, 21 अंक 11, पूर्णाक 251 जून 1991 पृ0 21

4–श्री गुरु जी सम्पा0 पद्माकर भाटे,बाला साहब आप्टे स्मारक समिति, रुइकर पथ नागपुर 5 जून 1980 'अपनी बात' से उद्धृत पृ0 1, 2, 3,

5 परम पूजनीय गुरु जी सम्पा0 डॉ0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर 'प्रज्ञा भारती' हिन्दी संस्करण सम्पा0 सत्यपाल पाटईत संस्करण 1991 ई0 प्रका0 भारत–भारती बाल पुस्तक माला आप्टे स्मारक भवन, महाल नागपुर, पृ0 24 से 40

6–संघ संस्थापक हेडगेवार–युग कवि डॉ0 राम स्वरूप खरे पृ0 3

7–दैनिक हिन्दुस्तान, 1 अक्टूबर 1967 ई0

8–विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0 48

9–विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0 49

10–विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0 50

11–विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0 51

12–विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0 53

13–विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0 56

14–विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0 58

15–विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0 72, 73

16–विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0

17—विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0

18—विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0

19—विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0

20—विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0

21—विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0

22—विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0 80, 81,

23—विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0 94

24—विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर, पृ0 97, 98

25—मुक्तिकोपनिषद्, 37, 38

26—बन्धश्च मोक्षो मनसेव पुंसा अर्थोऽध्यानर्थोऽयमुनेव सिध्यते। शंकराचार्य

27—यजुर्वेद 37, 18

28—ऋग्वेद 10, 191, 2

29—छान्धोग उपनिषद्, 7, 40, 1,

30—उपनिषद् की भूमिका, डॉ0 सर्व पल्ली राधा कृष्णन 133

31—संस्कृतिः समस्या और सम्भावना, डॉ गोविन्द चातक, पृ0 218

32—संस्कृतिः समस्या और सम्भावना, डॉ गोविन्द चातक, पृ0 218

33—हमारे डाक्टर जी, लोक हित प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, वि0 सं0 2026, पृ0 88, 89

34—हमारे डाक्टर जी, लोक हित प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, वि0 सं0 2026, पृ0 88, 89

35—अनुशासित समाज की ओर, आगरा विभाग सम्मेलन के अवसर पर प्रमाशित पुस्तिका से देवरस के बौद्धिक का अंश, पृ0 7

36—डॉ0 हेडगेवार एक चमत्कार, मुख पृष्ठ का दूसरा पृष्ठ

37–अनुशासित समाज की ओर, आगरा विभाग सम्मेलन के अवसर पर प्रमाशित पुस्तिका से देवरस के बौद्धिक का अंश, पृ0 5

38–अनुशासित समाज की ओर, आगरा विभाग सम्मेलन के अवसर पर प्रमाशित पुस्तिका से देवरस के बौद्धिक का अंश, पृ0 7

39–अनुशासित समाज की ओर, आगरा विभाग सम्मेलन के अवसर पर प्रमाशित पुस्तिका से देवरस के बौद्धिक का अंश, पृ0 11

40–अनुशासित समाज की ओर, आगरा विभाग सम्मेलन के अवसर पर प्रमाशित पुस्तिका से देवरस के बौद्धिक का अंश, पृ0 18

41–अनुशासित समाज की ओर, आगरा विभाग सम्मेलन के अवसर पर प्रमाशित पुस्तिका से देवरस के बौद्धिक का अंश, पृ0 19

42–डॉ, हेडगेवार एक चमत्कार, पं0 रामशंकर अग्निहोत्री, पृ0 26

43–अपने परम पूजनीय सर संघ चालक, विजय कुमार, तृतीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण विक्रम संवत 2058, पृ 52

44–अपने परम पूजनीय सर संघ चालक, विजय कुमार, तृतीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण विक्रम संवत 2058, पृ 3

45–अपने परम पूजनीय सर संघ चालक, विजय कुमार, तृतीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण विक्रम संवत 2058, पृ 56

46–अपने परम पूजनीय सर संघ चालक, विजय कुमार, तृतीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण विक्रम संवत 2058, पृ 35

47–अपने परम पूजनीय सर संघ चालक, विजय कुमार, तृतीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण विक्रम संवत 2058, पृ 36

अष्टम अध्याय

संघ की प्रार्थना

संघ का एकात्मता स्तोत्र

एवं

प्रातः स्मरण

अष्टम अध्याय

"सन् 1925 ई0 में आद्य सरसंघ चालक परम पूज्य डॉक्टर हेडगेवार ने भारतीय भूमि में जो उत्कट राष्ट्रभक्ति का बीजारोपण किया, वह आज अंकुरित होकर न केवल अभिवर्धित हुआ वरन् पल्लवित पुष्पित होकर भली भाँति फल–फूल भी रहा है एक विशाल वट–वृक्ष की भाँति जिसकी अगणित शाखायें इतस्ततः फैलकर शीतल छाया प्रदान करती हैं और अनेक पंक्षियों का सुखद आश्रय बनती हैं।"–डॉ0 राम स्वरूप खरे

विचार में अनन्त शक्ति सन्निहित रहा करती है। विचारों से ही समाज और राष्ट्र में अनेक परिवर्तन सम्भव होते हैं। संसार में अनेक देशों की क्रान्तियाँ इसका प्रमुख उदाहरण हैं। "यदि जीवन में गन्तव्य का बोध न हो तो भला गति सही कैसे हो सकती है और यदि वहाँ पहुँचना ही न हो तो सम्तुष्टि कैसे पाई जा सकती है। जिसके पास सम्पूर्ण जीवन के अर्थ का विचार नहीं हैं, उसकी दशा उस माली की तरह है, जिसके पास फूल तो हैं और वह उनकी माला भी बनाना चाहता है, लेकिन उसके पास ऐसा धागा नहीं है जो उन्हें जोड़ सके। आखिर कार वह कभी भी अपने फूलों की माला नहीं बना पायेगा।

जो जीवन की कला से वंचित हैं, समझना चाहिए कि न उनके जीवन में दिशा है और न कोई एकता है। उनके समस्त अनुभव नि आणविक रह जाते हैं। उनसे कभी भी उस ऊर्जा का जन्म नहीं हो पाता जो कि ज्ञान बनकर प्रकट होती है। जीने की कला से वंचित व्यक्ति जीवन कि उस समग्र अनुभव से सदा के लिये वंचित रह जाता है, जिसके अभाव में जीना और न जीना बराबर ही हो जाता है।

ऐसा व्यक्ति का जीवन उस वृक्ष की भाँति है जिसमें न तो कभी फूल लग सकते हैं और न कभी फल। ऐसा व्यक्ति सुख–दुख तो जानता है, पर उसे कभी भी आनन्द की अनुभूति नहीं होती क्योंकि आनन्द की अनुभूति तो जीवन को कलात्मक ढंग से जीने पर उसे समग्रता में अनुभव कराने पर होता है। जीवन में यदि आनन्द पाना है तो जीवन को

फूलों की माला बनाना होगा। जीवन के समस्त अनुभवों को एकलक्ष्य के धागे में कलात्मक रीति से गूँथना होगा। जो जीने की इस कला को नहीं जानते, वे सदा के लिये जिन्दगी की सार्थकता एवं कृतार्थता से वंचित रह जाते है।"[1] वस्तुतः डॉ0 हेडगेवार इस जीवन को जीने की कला से सम्यकरूप से परिचित थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने प्रखर और प्रेरक व्यक्तित्व से अनेकानेक लोगों को प्रभावित किया। उन्हें संगठित करके सुयोग नागरिक बनाने का एक सफल प्रयास किया।

(क) संघ की प्रार्थना– प्रार्थना में भी उत्कट विचार होते हैं। एक व्यक्तिगत प्रार्थना होती है और दूसरी सामूहिक प्रार्थना। सामूहिक प्रार्थना का अपना विशिष्ट महत्व होता है। संघ की भी अपनी प्रार्थना है। प्रारम्भ में प्रार्थना का दूसरा रूप था किन्तु अब जो प्रार्थना प्रचलित है और नित्यप्रति प्रातः सायं जो प्रत्येक शाखा में गायी जाती है वह इस प्रकार है–

"नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे
त्वया हिन्दुभूमे सुखं वर्धितोऽहम्।
महामङ्गले पुण्य भूमे त्वदर्थे
पतत्वेष कायो नमस्ते नमस्ते।।1।।
प्रभोशक्तिमन् हिन्दुराष्ट्रङ्ग भूता
इमे सादरं त्वां नमामो वयं
त्वदीयाय कार्याय वद्धा कटीयं
शुभामाशिषं देहि तत्पूर्तये
अजय्यां च विश्वस्य देहीश शक्तिं
सुशीलं जगद्येन नम्रं भवेत्
श्रुतं चैव यत् कण्टकाकीर्णमार्गं
स्वयं स्वीकृतं नः सुगं कारयेत्।।2।।

समुत्कर्ष निःश्रेयस सस्यैक मुग्रं

परं साधनं नाम वीर व्रतं

तदन्तः प्रजागर्तु तीव्राऽनिशम्

विजेत्री च नः संहता कार्य शक्तिर्

विधायास्य धर्मस्य संरक्षणं

परं वैभवं नेतुमेतत स्वराष्ट्रं

समर्था भवत्वाशिषा ते मृशम।।3।।

भारत माता की जय।

इस प्रकार सम्पूर्ण प्रार्थना में 13 पँक्तियाँ एवं तीन छन्द हैं। प्रथम छन्द 'भुजंगप्रयात' हैं। दूसरे और तीसरे छन्द में 'मेघ निर्घोष' छन्द है। इसमें प्रार्थनाकर्ता ने परम पिता परमेश्वर से अजेय शक्ति, सुशील, ज्ञान, वीरता एवं अक्षय ध्येय निष्ठा ये पाँच गुण माँगे है। यह दैनिक प्रार्थना प्रत्येक शाखा में प्रातः–सायं निर्धारित समय पर शाखा में गायी जाती है। इसके पश्चात ही कार्यक्रम की समाप्ति मानी जाती है।

संघ में गुरु का महत्व–प्रार्थना की भाँति ही संघ का अपना गुरु है किन्तु अन्य सम्प्रदायों में व्यक्ति ही गुरु की पदवी पर प्रतिष्ठित होता है। व्यक्ति में कभी भी स्खलन हो सकता है जैसे विश्वामित्र आदि। इसीलिये संघ ने किसी व्यक्ति को गुरु न मानकर 'ध्वज' को ही अपना गुरु माना है। इस सन्दर्भ में दीनदयाल उपाध्याय का विचार यहाँ अवलोकनीय है। यथा– विश्वामित्र से ....श्रेष्ठ बना सकते हैं।"[2]

इस सन्दर्भ में द्वितीय सर संघचालक परमपूज्य गुरु जी का बौद्धिक अत्यन्त समीचीन एंव मननीय है। यथा–अनेक कार्य में गुरु पूर्णिमा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और पवित्र अवसर है। इसे व्यास पूर्णिमा भी कहते हैं। व्यास महर्षि ने हमारे राष्ट्र–जीवन के श्रेष्ठतम गुणों को निर्धारित करते हुए उनके महान आदर्शों को चित्रित करते हुए, विचार तथा आचारों का समन्वय करते हुए, न केवल भारतवर्ष का अपितु सम्पूर्ण मानव जाति का

मार्ग–दर्शन किया। इसलिए भगवान वेद व्यास जगत के गुरु हैं। इसी दृष्टि से गुरु–पूजा को व्यास पूजा भी कहा जाता है। जिसे हमने श्रद्धापूर्वक मार्गदर्शक या गुरु माना है, उसकी हम इस दिन पूजा करते हैं, उसके सामने अपनी भेंट चढ़ाते हैं, उसे आत्म निवेदन करते है, और आगामी वर्ष के लिए आशीर्वाद माँगते हुए, हम अपनी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इस प्रकार यह महान पूजा का आत्म निवेदन का अवसर है।

हम सब लोग जानते हैं कि हमारे संघ–कार्य में हमने किसी व्यक्ति विशेष को गुरु नहीं माना है। शास्त्रों में गुरु की बड़ी महती गरिमा कहीं गयी है। गुरु को ईश्वर से भी श्रेष्ठ माना गया है। हमारे ऋषियों ने गुरु के गुण, विस्तार के साथ बखाने हैं। अब इतने गुण किसी एक व्यक्ति में पाना कठिन है। किसी व्यक्ति में हम कुछ श्रेष्ठ बातें देख लेते हैं, तो हम उसका आदर करने लगते हैं, परन्तु थोड़े ही दिनों में जब उसके दोष ध्यान में आ जाते हैं, तब हमारे मन में अनादर उत्पन्न होता है। कदाचित् हम उसका तिरस्कार भी करने लगते हैं। यह सब घोर अनुचित हैं क्योंकि गुरु का त्याग अपने यहाँ बड़ा पाप माना गया है। परन्तु यह सब हो सकता है, क्योंकि मनुष्य मात्र स्खलनशील है।

गायत्री मन्त्र के निर्माता विश्वामित्र ऋषि बड़े उग्र तपस्वी और महान दृष्टा थे। परन्तु उनका भी तो पतन हुआ। अतः किसी भी मनुष्य को ऐसा अहंकार नहीं करना चाहिए कि मैं निर्दोष हूँ और परिपूर्ण हूँ।

मनुष्य जीवन की कली खिलकर बड़ा सुन्दर और सुगन्धित पुष्प विकसित हो जाता है। परन्तु पता नहीं कैसे और कहाँ से उसमें कीड़ा लग जाता है। अतः जब तक जीवन पूर्ण नहीं हो जाता तब तक उसका मूल्यांकन नहीं हो पाता।

इस संघ कार्य में उचित समझा गया कि हम भावना चिह्न लक्षण या प्रतीक गुरु को माने। हमने संघ कार्य के द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्र–के पुनर्निर्माण का संकल्प किया है। समाज के सब व्यक्तियों के गुणों तथा शक्तियों को हमें एकत्र करना है। इस ध्येय की सतत प्रेरणा देने वाले गुरु की हमें आवश्यकता थी।

संघ का ध्वज–हमारे समाज की सांस्कृतिक जीवन धारा में यज्ञ का बड़ा महत्व रहा है। 'यज्ञ' शब्द के अनेक अर्थ हैं। व्यक्तिगत जीवन को समर्पित करते हुए समष्टि जीवन को परिपुष्ट करने के प्रयास को ही यज्ञ कहा गया है। सद्गुण रूप अग्नि में अयोग्य, अनिष्ट अहितकर बातों का होम करना ही यज्ञ है। श्रद्धामय, त्यागमय, सेवामय, तपस्यामय जीवन व्यतीत करना ही यज्ञ है। यज्ञ की अधिष्ठात्री देवता अग्नि है। अग्नि का प्रतीक है ज्वाला और ज्वालाओं का प्रतिरूप है– हमारा परम पवित्र 'भगवाध्वज'।

हम श्रद्धा के उपासक हैं, अंधविश्वास के नहीं। हम ज्ञान के उपासक हैं अज्ञान के नहीं। जीवन के हर क्षेत्र में बिल्कुल विशुद्ध रूप में ज्ञान की प्रतिष्ठापना करना ही हमारी संस्कृति की विशेषता रही हैं। अज्ञान के नाश के लिए हमारे ऋषि मुनियों ने उग्र तपस्चर्या की है। अज्ञान का प्रतीक है अंधकार, और ज्ञान का प्रतीक है सूर्य। पुराणों में कहा गया है कि सूर्य नारायण रथ में बैठकर आते हैं। उनके रथ में सात घोड़े लगे हैं और उनके आगमन के बहुत पहले उनके रथ की सुनहरी गैरिक ध्वजा फहरती हुई दिखाई देती है। इस ध्वजा को हमने हमारे समाज का परम आदरणीय प्रतीक माना है। वह भगवान का ध्वज है। इसलिए हम उसे 'भगवाध्वज' कहते हैं। उसी से आगे चलकर शब्द बना है 'भगवाध्वज' वही हमारा गुरु है।

सूर्य भगवान का जो अग्निमय चिह्न है। अग्नि शिखाओं की जो प्रति कृति है, ऐसा हमारा भगवाध्वज हमारा प्रेरणा स्थान है उसी के द्वारा हमारे राष्ट्र की आत्मा प्रकट होती है। हमारे देश का इतिहास इसी तथ्य को सिद्ध करता है। इन्हीं सब कारणों से हम इस महान ध्वज की पूजा करते हैं, किसी व्यक्ति की नहीं।

अतः श्रद्धा के श्रेष्ठतम केन्द्र और सब शक्तियों का आह्वान देने वाले इस ध्वज को ही हम अपने हृदय में उच्चतम स्थान देंगे, इसी के सामने नत मस्तक होंगे और इसी को जीवन समर्पित करेंगे। यह धारणा लेकर हम लोगों ने इस पवित्र पताका को अपने समक्ष गुरु के रूप में रखा है। इससे अति प्राचीन काल से आज तक के अपने राष्ट्र के सभी भव्य

कार्य, उसके द्वारा सम्पादित समस्त पराक्रम और तेजस्विता आँखों के समक्ष प्रकट हो जाती है।

जगदगुरु का स्थान प्राप्त करने के लिए आवश्यक सभी गुणों का समुच्चय इस एक पताका के दर्शन मात्र से अपने अन्तःकरण में जागृत हो जाता है। यह तो हमारे जीवन परम्परा की अखण्ड ज्योति के रूप में, हमारे राष्ट्र–पुरुष अर्थात् प्रकट परमात्मा के नाते हमारे सामने है। इसकी सेवा के लिए हमें सब कुछ निछावर करने की आवश्यकता है। जीवन को यज्ञ रूप मानकर उसी यज्ञ की ज्वाला में स्वयं को होम करने के लिए वह हमें प्रोत्साहित करता है, मार्ग दर्शन करता है, प्रेरणा देता है। इस प्रकार यह यज्ञ ज्वाला का प्रतीक आत्म समर्पण का द्योतक, पवित्र ध्वज ही अपना आदर्श है इसीलिए हम उसके सामने आकर इसकी पूजा करने, अपने सर्वस्व की भेट चढ़ाने के लिए बद्ध परिकर हो खड़े होते है।

ध्वज–दैनिक शाखा पर सामान्यतः 2.50. मीटर ऊँचा ध्वज दण्ड (पोल) तथा 75 से. मी. चौड़ा ध्वज प्रयुक्त होता हैं बड़े कार्यक्रम, उत्सव, शिविर आदि में इनका आकार बढ़ाया जा सकता है, पर ध्वज के माप का अनुपात यही रहेगा। यथा–
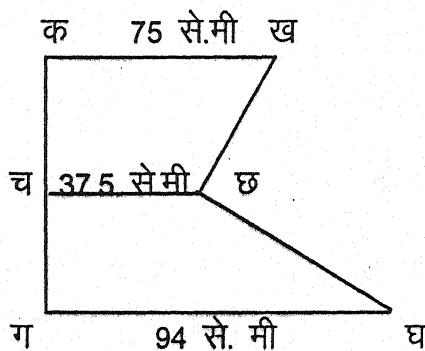
क ख = क ग

क च = क ग/2

ग घ = क ख |X 1.25

च छ = क च = क ख/2

गुरु दक्षिणा–हमारे यहाँ तो ऐसा कहा गया है कि पूजा करते–करते स्वयं ईश्वर स्वयं शिव बनना चाहिए। जिस आदर्श की पूजा करने के लिए हम एकत्र हुए हैं उसका निर्देशित जीवन अपने अन्दर उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए सर्व प्रथम हमें अपने इस सर्वश्रेष्ठ गुरु की इतना श्रेष्ठ कि जिसकी तुलना में तमाम विश्व छोटा मालूम पड़ता है–श्रेष्ठता अपने अन्दर उत्पन्न करना चाहिए। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे जहाँ कहीं भी हम रहें, अन्तःकरण में तीव्र ज्वाला लेकर ऐसा आदर्श जीवन प्रकट करें कि प्रत्येक मुँह में हमारा ही नाम रहे। हम चाहे जहाँ काम करें, परन्तु हमारे बारे में चारों ओर एक ही वाक्य बोला जाय कि यह व्यक्ति अत्यन्त सच्चाई से काम करता है।

पूजा का अर्थ केवल गंधफूल चढ़ाना नहीं है। पूजा का अर्थ है समर्पण की भावना को प्रकट करना। इसका दृश्य स्वरूप क्या होगा? अपने स्वार्थ के लिए जो बहुत उपयोगी वस्तु हो उसे देना ही समर्पण का दृश्य रूप होगा। व्यावहारिक जगत में हमारे स्वार्थों की पूर्ति के लिये धन की आवश्यकता रहा करती है। सुख साधन, ऐश्वर्य, अन्यान्य प्रकार की उपभोग की सामग्री सब कुछ धन से प्राप्त होता है। उस धन को पर्याप्त प्रमाण में हमारे आराध्य देवता के समाने रखना ही सच्चा समर्पण है। वही वास्तव में पूजा है।

श्रद्धा के साथ कुछ कष्ट उठाते हुए कुछ स्वार्थों की तिलांजलि देते हुए जो दिया जाता है वह सच्चा समर्पण है। इसी दृष्टि से गुरु पूर्णिमा के बाद दस पन्द्रह दिनों में सुविधा के अनुसार हम कोई न कोई दिन निश्चित करते हैं और उस दिन ध्वज का पूजन करते हुए जितना हो सके उतना अधिक धन समर्पित करते हैं। गुरु–दक्षिणा कितनी देनी चाहिए इसका कुछ निश्चित आँकड़ा नहीं रहता। चन्दा, सहायता, दान जैसा इसक स्वरूप नहीं रहता है। न यहाँ किसी भी प्रकार की सख्ती है, कौन कितना देगा यह हर किसी के श्रद्धा, स्वेच्छा और क्षमता पर निर्भर है। एक पैसा भी चल सकता है।

सच्ची भावना से अधिक से अधिक समर्पण करना, हमारा कर्तव्य है। साथ–साथ यह भी ध्यान में रहे कि यह केवल प्रतीक रूप है, इतिकर्तव्यता नहीं। पाँच–पचास सौ रुपया, पंडा जी को दे दिये और उन्होंने कह दिया 'तेरा पितर सरग गये', ऐसा यहाँ नहीं है। राष्ट्र के लिए हमें जो कुछ करना है, हमारी शक्ति का जिस प्रकार विनियोग करना है, उसका यह उपलक्षण मात्र है। इस कार्य के लिए किस प्रकार अपनी शक्ति और बुद्धि लगाते हैं उसका महत्व हैं राष्ट्र की सर्व–उत्कृष्ट उन्नति करने के लिए मैं इस संगठन का सदस्य बना हूँ मुझे अपने जीवन का कुछ भाग नित्य नियम से राष्ट्र–देवता के चरणों में समर्पित करना चाहिए। जिस प्रकार मैं प्रतिदिन सोता हूँ, भोजन करता हूँ और हर क्षणश्वासोछ्वास करता हूँ ठीक उसी प्रकार मुझे प्रतिदिन समर्पण एवं पूजन भी करना चाहिए।

भावना, विचार, परम्परा, ध्येय, सुख दुखों की समरता और आन्तरिक एकता यह जिसके पास हो ऐसा समाज ही हमारे स्वार्थ के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। हमारे लिए इन सब लक्षणों से युक्त हमारा हिन्दु समाज है। हमारा उसके साथ पूर्ण तादात्म्य है। उसकी ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परम्परा पूर्णतः हमारी है। अतः हिन्दुसमाज की सुस्थिति में हमारी सुस्थिति निहित है। हिन्दु समाज का स्वार्थ हमारा सच्चा स्वार्थ है। किसी समय हमारा राष्ट्र वैभव ऐश्वर्य एवं पराक्रम से युक्त था। हमारे देश की सारी दुनियाँ में मान्यता थी। परन्तु धीरे–धीरे वह सब समाप्त हुआ और पराभव, अपमान, दारिद्रय तथा पारतन्त्र्य, ये सब बातें हमें प्राप्त हुई। यह कैसे और क्यों हुआ? वीरता में जिनका कोई सानी नहीं था, उनका पराभव थोड़े से परदेशियों ने क्यों किया? उसकी ऐसी दयनीय अवस्था क्यों हुई? उत्तर सरल है–जब तक हमारे अन्दर एकता थी, जब तक हम एक विचार से तथा समान भावनाएं लेकर काम करते रहे, तब तक हम वैभव भोगते रहे। हमारे पूर्वजों को आदेश था 'सुसंगठित रहो'। उसे जब तक हमने माना तब तक हम वैभव भोगते रहे, जब हमने उसे छोड़ दिया जब हम संकुचित बने, जब हम अनेक सम्प्रदाय, पंथ, जाति

और छोटे–छोटे राज्यों में बँट गये, जब हम आपस में झगड़ने लगे तब हमारा समाज शतखण्ड हो गया और हमारा पराभव होने लगा।

अतः निशंक होकर हमें अपने ध्येय–मार्ग पर प्रसन्न चित्त से आगे बढ़ना है। कोई कहेगा भला आज की स्थिति में हमारा मन प्रसन्न कैसे रहेगा? इसके लिए पातंजलि योग के एक छोटे से सूत्र का मुझे स्मरण आता है। उसमें मन को प्रसन्न रखने के लिए चार मार्ग बताये हैं। मानव जीवन के चार रूप हम देखते हैं। (1) वैभव युक्त अर्थात् सुखी, (2) निर्धन अर्थात् दुखी, (3) पुण्यवान अर्थात् सद्‌गुणों से युक्त, (4) पाप अर्थात् दुर्गुणों से भरा हुआ। साधारणतः किसी सुखी और धनी मनुष्य को देखकर हमारे मन में द्वेष और मत्सर जाग्रत होता है। यही बात सद्‌गुणी और प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति को देखकर होती है। यह सब मुझे क्यों नहीं मिला। इसे क्यों मिला? जिसके मन में ध्येयनिष्ठा नहीं है, उसी के मन में ये द्वेष मूलक भावनाएं उत्पन्न होती हैं। इसके लिए उपाय यह है कि हम अपना दिल बड़ा करें। सोचें कि उसका सुख मेरा ही सुख है। मैं स्वयं कितने कष्टों में क्यों न होऊँ, परन्तु यदि मेरा पड़ोसी सुख में है तो उसे सुखी देखकर मैं सन्तुष्ट रहूँ। यह श्रेष्ठ भाव उत्पन्न करना चाहिए।

योग शास्त्र में बताए गये नियमों के अनुसार, चारों ओर की परिस्थिति से प्रभावित न होते हुए अपने ह्रदय की ध्येयनिष्ठा को सदैव जागृत रखना चाहिए। अपने आदर्श के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखकर उत्साह के साथ कार्योन्मुख रहना चाहिए।

इस पवित्र अवसर पर हम अपने आदर्श के समक्ष अपने जीवन का एक–एक पर्दा खोलकर अपनी सब विकृतियों को उसके सामने रखते हुए उन्हें पुनः न दुहराने का निश्चय करने के लिए उपस्थित हुए हैं। हम यह प्रण करें कि, यह परम पवित्र भगवाध्वज ही हमारा आदर्श, हमारा गुरु तथा हमारा ध्येय बना रहे इस गुरु की पूजा करने के लिए साधन रूप संघ कार्य पर पूर्ण निष्ठा रखते हुए, अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के साथ प्रसन्न चित्त से कार्य करूँगा। मैं अपने को सदा कार्य मग्न रखूँगा और इस महान कार्य की पूर्ति

के लिए अपने जीवन की सारी शक्तियाँ लगाता रहूँगा।

अपने इस कार्य की इतनी प्रगति हो कि कभी जगद्गुरु कहलाने वाले इस पवित्र ध्वज के सामने एक बार पुनः संसार नतमस्तक हो जाय, इसके चरणों में अपने जीवन की भेंट चढ़ाकर इसकी पूजा करने के लिए वाध्य हो जाय। यही आकांक्षा, यही आवेश अपने अन्तःकरण में उत्पन्न हो।"[3]

गणवेश– वेश–भूषा का अपना विशिष्ठ महत्व है। पुलिस वाले, सैनिक, डाक्टर, नर्स, वकील, गार्ड, साधु सन्त, सिक्ख आदि इसी कारण पहचान लिये जाते हैं। प्रत्येक जाति की अपनी पृथक–पृथक वेश–भूषा उसकी सभ्यता और संस्कृति की ओर इंगित करती है। विद्यालयी छात्र–छात्रायें जब किसी विशिष्ट प्रकार की वेश–भूषा में निकलते हैं तब उसकी निराली छाप मन पर अवश्यमेव पड़ती है। खेल–कूद के मैदान में उसके अनुरूप वेश–भूषा उपयुक्त और समीचीन प्रतीत होती है।

इसी प्रकार राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने भी अपनी विशिष्ट पहचान बनाये रखने के लिए एक विशिष्ट प्रकार का गणवेश निर्धारित किया है जो सभी स्वयं सेवकों को धारण करना पड़ता है। यह गणवेश स्वयं सेवक स्वयं अपने पैसों से तैयार कराता है। निर्धारित और निश्चित गणवेश के अन्तर्गत काली टोपी, पूरी सफेद कमीज की शर्ट, खाकी नेकर काली बैल्ट, खाकी मोजा और काले फीतेदार जूता। देश–विदेश कहीं भी चले जाइये, इस वेशभूषा को धारण किंये हुये जो व्यक्ति मिलेगा, निःसन्देह वह राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का ही स्वयं सेवक होगा। पारस्परिक समानता के लिये एक गणवेश होना आवश्यक है। इसके पूर्व संघ में टोपी के स्थान पर साफा था। इसीलिये संघ ने ऐसा निर्णय लिया और यह बात आज तक चली आ रही है। इसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया है। संघ की जो दैनन्दिनि शाखायें प्रत्येक शहर, नगर, जिला, तहसील, खण्ड और ग्रामों में लगती हैं, वहाँ भी गैरिक ध्वज के संरक्षण में स्वयंसेवक इसी गणवेश में कार्य सम्पन्न करते हुये दृष्टिगोचर होंगे। जब कोई विशिष्ट शिविर अथवा सम्मेलन आयोजित किये

जाते हैं तब उनमें सभी स्वयंसेवक अपने पूर्व निर्धारित गणवेश में ही उपस्थित एवं सम्मिलित होते हैं।

गणवेश धारण करने पर स्वतः ही अनुशासन की भावना आ जाती है। गणवेश से उसके व्यक्तित्व में निखार जा जाता है। गणवेश द्वारा व्यक्ति अपनी विशिष्ट छाप अंकित करता है। साधु सन्त अपने विशिष्ट गणवेश के कारण ही समाज में पूज्य और वन्दनीय माने जाते हैं। सम्पूर्ण भारत में संघ–शाखाओं में एक सा ध्वज, एक सा गणवेश, एक ही निर्धारित शाखा–समय तथा एक ही प्रकार के संस्कृत शब्दावली युक्त आदेशों की भाषा ने संघ की बिल्कुल अलग पहचान सुनिश्चित कर दी।

प्रतिज्ञा– यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। जब तक कोई स्वयंसेवक प्रतिज्ञा ग्रहण नहीं कर लेता तब तक वह सच्चा स्वयंसवेक नहीं माना जाता। यह प्रतिज्ञा बिल्कुल प्रारम्भ में नहीं कराई जाती है। जब कोई बाल स्वयं सेवक 'आई0 टी0 सी0' अथवा 'ओ0 टी0 सी0' की परीक्षा 'संघ शिक्षा वर्ग' में प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह इसका अधिकारी नहीं माना जाता। किन्तु जब स्वयं सेवक उत्तम रीति से कोई परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है तब कोई मान्य अधिकारी (जैसे जिला संघ चालक आदि) ध्वज के समक्ष उसे यह प्रतिज्ञा दिलवाता है। प्रतिज्ञा की शब्दावली निश्चित एंव निर्धारित है। यथा–

"सर्वशक्तिमान श्री परमेश्वर तथा अपने पूव्रजों का स्मरण कर मैं (नाम लें) प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने पवित्र हिन्दु धर्म, हिन्दु संस्कृति तथा हिन्दु समाज का संरक्षण कर हिन्दू राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति करने के लिये मैं राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का घटक बना हूँ। संघ का कार्य मैं प्रामाणिकता, निःस्वार्थबुद्धि तथा तन–मन–धन पूर्वक करूँगा और इस व्रत का मैं आजन्म पालन करूँगा। भारत माता की जय।"

इस प्रकार संघ यह मानता है कि भारत हिन्दु राष्ट्र है। 'संगठन में शक्ति है।" एवं हिन्दू समाज का संगठन कर अपने राष्ट्र को परम वैभव के शिखर पर ले जाना इसके तीन मूलभूत सिद्धान्त हैं। निःसन्देह संघ का कार्य संगठनात्मक एवं सांस्कृतिक है,

राजनीतिक नहीं।

उत्सव—अपने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त संघ वर्ष में अपने पूर्व निर्धारित छैः उत्सव अथवा पर्व भी मनाता है। जो इस प्रकार हैं—

(1) वर्ष प्रतिपदा—(प्रत्येक वर्ष चैत्र शुक्ल 1 प्रथमा को)

(2) हिन्दू साम्राज्य दिनोत्सव— (ज्येष्ठ शुक्ल 13)

(3) गुरु पूर्णिमा—(आषाढ़ पूर्णिमा अथवा व्यास पूर्णिमा)

(4) रक्षा बन्धन (श्रावणी पूर्णिमा)

(5) विजय दशमी (श्रावणी की दशमी)

(6) मकर संक्रान्तिं— (प्रत्येक वर्ष 14 जनवरी को)

इनसे समाज में समरसता एवं भाई—चारे का भाव जाग्रत होता है और सभी वर्ग के व्यक्ति इनमें सम्मिलित होकर विविधता में एकता के पुनीत भाव को दर्शाते हैं।

संघ का एकात्मकता स्तोत्र— सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिकता के सम्यक्, उत्कर्ष के लिये इस एकात्मता स्तोत्र का निर्माण कराया गया है। प्रत्येक स्वयं सेवक के लिये नित्य—प्रति 'प्रातः स्मरण' एवं संघ के 'एकात्मता स्तोत्र' का पाठ आवश्यक है। क्योंकि जब जब हम लोग इन श्लोकों का पाठ करते हैं तब तब हमारी आँखों के सामने अपने पूर्वजों का कृतित्व, एवं सदाचरण प्रत्यक्ष हो उठता है। हम भी उन जैसा बनने का प्रयत्न करते हैं। संघ द्वारा निर्मित एकात्मता स्तोत्र एवं एकता मंत्र इस प्रकार है।

ऊँ नमः सच्चिदानन्दरूपाय परमात्मने।

ज्योतिर्मयस्वरूपाय विश्वमांगल्यमूर्तये।।1।।

प्रकृति पंच भूतानि ग्रहा लोकाः स्वरातस्तथा।

दिशः कालश्च सर्वेषां सदा कुर्वन्तु मंगलम्।।2।।

रत्नाकराधौतपदां हिमालयकिरीटिनीम्

ब्रह्मराजर्षिरत्नाढ्यां वंदे भारतमातरम्।।3।।

महेन्द्रो मलयः सह्यो देवतात्मा हिमालयः।

ध्येयो रेवतको विंध्यो गिरिश्चारावलिस्तथा।।4।।

गंगा सरस्वती सिंधुर्ब्रह्मपुत्रश्चगण्डकी।

कावेरी यमुना देवी कृष्णा गोदा महानदी।।5।।

अयोध्या मथुरा माया काशी कांचि अवंतिका।

वैशाली द्वारिका ध्येया तक्षशिला गया।।6।।

प्रयागः पाटलीपुत्रं विजयानगरं महत्।

इन्द्रप्रस्थं सोमनाथं तथाऽमृतसरः प्रियम्।।7।।

चतुर्वेदाः पुराणनि सर्वोपनिषदस्तथा।

रामायणं भारतं च गीता सद्दर्शनानि च।।8।।

जैनागमास्त्रिपिटका गुरुग्रंथः सतां गिरः।

एषः ज्ञाननिधिः श्रेष्ठः श्रद्धेयो हृदि सर्वदा।।9।।

अरुन्धत्यनसूया च सावित्री जानकी सती।

द्रौपदी कण्णगी गार्गी दुर्गावती तथा।।10।।

लक्ष्मीरहल्या चन्नम्मा रुद्रमाम्बा सुविक्रमा।

निवेदिता सारदा च प्रणम्या मातृदेवताः।।11।।

श्रीरामो भरतः कृष्णो भीष्मो धर्मस्तथाऽर्जुनः।

मार्कण्डेयो हरिश्चन्द्रः प्रह्लादो नारदो ध्रुवः।।12।।

हनुमांजनको व्यासो वसिष्ठश्च शुको बलिः।

दधीचि–विश्वकर्माणौ पृथुवाल्मीकिभार्गवाः।।13।।

भगीरथश्चैकलव्यो मनुर्धन्वन्तरिस्तथा।

शिबिश्च रंतिदेवश्च पुराणोद्गीतकीर्तयः।।14।।

बुद्धा जिनेन्द्रा गोरक्षः पाणिनिश्च पतंजलिः।

शङ्करो मध्वनिम्बार्कौ श्रीरामानुजवल्लभौ।।15।।

झूलेलालोऽथ चैतन्यः तिरुवल्लुवरस्तथा।

नायन्मारालवाराश्च कंबश्च बसवेश्वरः।।16।।

देवलो रविदासश्च कबीरो गुरुनानकः।

नरसिस्तुलसीदासो दशमेशो दृढव्रतः।।17।।

श्रीमत् शङ्करदेवश्च बंधू सारण–माधवौ।

ज्ञानेश्वरस्तुकारामो रामदासः पुरन्दरः।।18।।

बिरसा सहजानन्दो रामानन्दस्तथा महान्।

वितरन्तु सदैवैते दैवीं सद्‌गुण–सम्पदम्।।19।।

भरतर्षिः कालिदासः श्रीभोजो जकणस्तथा।

सूरदासस्त्यागराजो रसखानश्चसत्कविः।।20।।

रविवर्मा भातखण्डे भाग्यचन्द्रः स भूपतिः।

कलावन्तश्च विख्याताः स्मरणीय निरन्तरम्।।21।।

अगस्त्यः कम्बु कौण्डियौ राजेन्द्रश्चोलवंशजः।

अशोकः पुष्यमित्रश्च खारवेलः सुनीतिमान्।।22।।

चाणक्य–चन्द्रगुप्तौ च विक्रमः शालिवाहनः।

समुद्रगुप्तः श्रीहर्षः शैलेन्द्रो बप्परावलः।।23।।

लाचिद् भास्करवर्मा च यशोधर्मा च हूणजित्।

श्रीकृष्णदेवरायश्च ललितादित्य उद्‌बलः।।24।।

मुसुनूरिनायकौ तौ प्रतापः शिव भूपतिः।

रणजित्सिंह इत्येते वीरा विख्यातविक्रमाः।।25।।

वैज्ञानिकाश्च कपिलः कणादः सुश्रुतस्तथा।

चरको भास्कराचार्यो वराहमिहिरः सुधीः।।26।।

नागार्जुनो भरद्वाजः आर्यभट्टो वसुर्बुधः।
ध्येयो व्यंकटरामश्च विज्ञा रामानुजादयः।।27।।
रामकृष्णो दयानन्दो रवीन्द्रो राममोहनः।
रामतीर्थोऽरविंदश्च विवेकानन्द उद्यशाः।।28।।
दादाभाई गोपबन्धुः तिलकोगांधिरादृताः।
रमणो मालवीयश्च श्री सुब्रह्मण्यभारती।।29।।
संघशक्तिप्रणेतारौ केशवो माधवस्तथा।
स्मरणीयाः सदैवैते नवचैतन्यदायकाः।।31।।
अनुक्ता ये भक्ताः प्रभुचरणसंसक्तहृदयाः।
अविज्ञाता वीरा अधिसमरमुद्ध्वस्तरिपवः
समाजोद्धर्तारः सुहितकर विज्ञान–निपुणाः
नमस्तेभ्यो भूयात् सकलसुजनेभ्यः प्रतिदिनम्।।32।।
इदमेकात्मतास्तोत्रं श्रद्धया यः सदा पठेत्।
स राष्ट्रधर्मनिष्ठावान् अखण्डं भारतं स्मरेत्।।33।।

संघ का प्रातःस्मरण– संघ में प्रातः स्मरण का विशिष्ट महत्व है। जिस प्रकार मन्दिरों में नित्य प्रति देवस्तुति की जाती है। ठीक उसी प्रकार–'प्रातःकाल उठकर आत्महित की कामना से प्रातःस्मरण पाठ करने से सर्वशक्तिमान परमेश्वर में विश्वास, अपनी मातृभूमि और राष्ट्र के प्रति भक्ति और प्रेम तथा अपने प्रतापी पूर्वजों के स्मरण से जगे आत्म गौरव और स्वाभिमान के पवित्र भाव मन में आते हैं जिसके कारण प्रफुल्लता स्फूर्ति, दृढ़ता, उल्लास और उत्साह के साथ अपने कर्तव्य के पथ पर बढ़ता हुआ मनुष्य नई–नई सफलता अवश्य प्राप्त करता है। दिन भर मन प्रसन्नता और उमंग से भरा रहता है।"[4] इसके कुल 30 श्लोक हैं। प्रारम्भ का श्लोक है–

"कराग्रे वसते लक्ष्मीः कर मध्ये सरस्वती।

कर मूले तु गोविन्दः प्रभाते कर दर्शनम्।।1।।

सम्पूर्ण प्रातः स्मरण इस प्रकार हैः–

समुद्र वसने देवि! पर्वतस्तन मण्डले

विष्णु पत्नि! नमस्तुभ्यं पाद स्पर्श क्षमस्व मे।।2।।

ब्रह्मामुरारिस्त्रिपुरान्त कारी

भानु शशी भूमिसुतो बुधश्च।

गुरुश्च शुक्रः शनि राहुकेतवः

कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।3।।

सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः

सनातनोऽप्यासुरि पिङ्गलौ च

सप्त स्वराः सप्त रसातलानि

कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।4।।

सप्तार्णवाः सप्त कुलाश्लाश्च

सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त।

भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त

कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।5।।

पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथापः

स्पर्शी च वायुर्ज्वलनं च तेजः।

नभः सशब्द महता सहैव

कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।6।।

महेन्द्रो मलयः सह्यौ

देवताम्या हिमालयः।

ध्येयो रैवतको विन्ध्यो

गिरिश्चारार्वालस्तथा।।7।।

गंगा सिन्धु कावेरी यमुनाच सरस्वती।

रेवा महा नदी गोदा ब्रह्मपुत्र पुनातु माम्।।8।।

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका

पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।।9।।

प्रयागं पाटलीपुत्र विजयानगरं पुरीम्।

इन्द्रप्रस्थं गयां चैव प्रत्यूषे प्रत्यहं स्मरेत।।10।।

अरुन्धत्यनसूया च सावित्री जानकी सती।

तेजस्विनी च पंचाली वन्दनीया निरन्तरम्।।11।।

लक्ष्मीरहल्या चन्नम्मा मीरा दुर्गावती तथा।

कन्नागी च महासाध्वी शारदा च निवेदित।।12।।

वैन्यं पृथुं हैहयमर्जुनं च शाकुन्तलेयं भरतं नलं च।

रामं च यो वैस्मरति प्रभाते तस्यार्थलाभो, विजयश्च हस्ते।।13।।

दृष्टाङ् मनुर्मृगुस्सौ हरिपूर्ण चन्द्रो भीष्मार्जुन ध्रुव वसिष्ठ शुकादयश्च।

प्रहलाद नारद भगीरथ विश्वकर्म बाल्मीकथोऽत्र चिरचिन्त्य शुभाभिधनाः।।14।।

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमाँश्च विभीषणः।

कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः।।15।।

सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।

जीवे वर्षशतं साग्रमपमृत्यु विवर्जितः।।16।।

पुण्यश्लोको नलो राज पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः

पुण्यश्लोको विदेहश्च पुण्यश्लोको जनार्दनः।।17।।

बुद्धो जिनेन्द्रो गोरक्षः शंकरश्च पतंजलि।

रामानुजोऽथ चैतन्यः कबीरो गुरु नानकः।।18।।

ज्ञानेश्वरस्तुकारामः समर्थौ मध्वबल्लभौ।

नरसीस्तुलसीदासः कम्बः साधु कुलोसमाः।।19।।

नारन्माशलवाराश्च तिरुबल्लवरस्तथा।

विवरन्तु सदैवैते दैवीं में गुण सम्पदम्।।20।।

अगस्त्यः कम्बु कौण्डिन्यौ राजन्द्रश्चोल भूषणः।

सर्वे दिग्जयिनिः ख्याताः शैलेन्द्रो वप्पावलः।।21।।

चाणक्यश्च चन्द्रगुप्तश्च विक्र ाः शालिवाहनः।

अशोकः पुष्यमित्रश्च खारवेलः सुनीतिमान।।22।।

हूणजेता यशोधर्मा समुद्रो गुप्तवंशजः

श्रीकृष्ण देवरायश्च प्रदाता हर्ष वर्धनः।।23।।

साधु शंकर देवश्च तथा सायणमाधवौ।

प्रतापः शिवराजश्च गोविन्दो वसवेश्वरः।।24।।

रामकृष्णो दयानन्दो रवीन्द्रो राममोहनः।

रामतीर्थोऽरविन्दश्च विवेकानन्द उद्यशः।।25।।

तिलको रमणश्चैव सुधीर्नारायणो गुरुः।

महामना मालवीयो महात्मा गान्धिरेव च।।26।।

केशवः संघ निर्माता हेडगेवारवंशजः।

सन्ततं चिन्तयेदेतान् हिन्दुभूमि सुतोत्तमान्।।27।।

अनुक्ताये भक्ता हरिचरण संसक्तहृदया।

अविज्ञाता वीरा अधिसमर मुदध्वस्तरिपवः।

हुतात्मानः सन्तों भरत मुनि ये सन्ति च परे।

नमस्तेभ्यो भूर्यादुषसि सकलेभ्यः प्रतिदिनम्।।28।।

रत्नाकराधौत पदां हिमालय किरीटिनीम।

ब्रह्मराजर्षि रत्नाढ्यां वन्दे भारत मातरम्।।29।।

प्रातः स्मरणमेतद यो विदित्वादरतः पंठत्।

स सम्यक् धर्म निष्ठः स्यात् संस्मृताखण्ड भारतः।।30।।

। भारत माता की जय।

प्रेरक सांस्कृतिक गीत—शिक्षा के माध्यम से ही मानव समाज का संचित ज्ञान उसके शिशु बाल, किशोर और तरुण व्यक्तियों में संचालित होता है। भारतीय धर्म और संस्कृति, आदर्शों और परम्पराओं के ज्ञान के साथ ही आधुनिक आवश्यकताओं और भविष्य की संभावनाओं के विषय में राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विवेकपूर्ण विचार कल्पना और कार्य करने की क्षमता निर्माण करना संघ का उद्देश्य है।

हमारे शिशु, बाल तरुण किशोर और प्रौढ़ समय—समय पर राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक भावनाओं से परिपूर्ण गीतों को जब हृदयंगम करके अपनायेंगे तब उनमें उदात्त भावों के अनुकूल स्वयं को वैसा ही बनने का स्वप्न पूरा करेंगे। एक सुसंस्कृत एवं सचरित्र पीढ़ी का निर्माण होगा जिनके सबल स्कन्धों पर इस राष्ट्र का भविष्य अवलम्बित होगा। इसीलिये इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु संघ ने सुकवियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जिससे वे राष्ट्रीय परिवेश के अनुकूल संस्कारक्षम गीतों का प्रणयन करके भली भाँति सारस्वत् सेवा करके अपने को कृतकृत्य कर सकें।

पाश्चात संस्कृति एवं सभ्यता से प्रभावित दूषित गीतों के कुप्रभाव से बचाना भी संघ का एक अभिनव उद्देश्य हैं। काव्य पंक्तियों को स्मरण करके, तदनुरूप जीवन बनाने में पीढ़ी सफल हो, इन गीतों की संरचना इसी शुभ उद्देश्य हेतु कराई गई है। जैसे—

मातृभूमि गान से गूँजता रहे गगन

स्नेह—नीर से सदा, झूलते रहे सुमन

जन्म सिद्ध भावना स्वदेश का विचार हो

रोम—रोम में रमा स्वधर्म संस्कार हो

आरती उतारते प्राण–दीप हों मगन,

मातृभूमि गान से गूँजता रहे गगन।

हार के सुसूत्र में मोतियों की पंक्तियाँ

ग्राम नगर प्रान्त से संग्रहीत शक्तियाँ

लक्ष–लक्ष रूप से राष्ट्र हो विराट तन।

स्नेह नीर से सदा झूलते रहें सुमन।

ऐक्य शक्ति देश की प्रगति में समर्थ हो

धर्म आसरा लिये मोक्ष काम अर्थ हो

पुण्य भूमि आज फिर ज्ञान का बने सदन।

मातृभूमि गान से गूँजता रहे गगन।

राष्ट्रीय साहित्य का प्रकाशन– राष्ट्रीय वाङ्मय के प्रकाशनार्थ सन् 1928 में नागपुर में अभिनव ग्रन्थमाला का गठन किया गया। जिसमें स्वयं डाक्टर हेडगेवार ने दस रुपये जमा करके शुभाशीष प्रदान किया। इसके पश्चात अनेक स्थानों पर इस प्रकार के भिन्न भिन्न नामों से प्रकाशन केन्द्र खोले गये। जिसमें नागपुर और प्रायः प्रत्येक प्रान्त की राजधानी से अनेकानेक ग्रन्थों का प्रकाशन सुनिश्चित किया गया। कतिपय प्रमुख प्रकाशनों के नाम उल्लेखनीय है। यथा–

1–भारत–भारती बाल पुस्तक माला, रुइकर पथ, नागपुर 440002

2–'राष्ट्र धर्म लोकहित प्रकाशन संस्कृति भवन राजेन्द्र नगर लखनऊ

भोजन मंत्र– वेद हमारे प्रेरणा स्रोत हैं संघ के कार्यक्रमों में सहस्त्रों स्वयंसेवको का एकत्रीकरण होता है। सम्पूहिक भोजन होता हैं बिना किसी जाति–पाँति अथवा ऊँच नीच की भावना से विरत रहकर अत्यन्त शान्तिपूर्वक। इसीलिये भोजन से पूर्व यह मंत्र सामूहिक रूप से पढ़े जाते है–

ऊँ यन्तु नद्यो वर्षन्तु पर्जण्याः। सुपिप्पला ओषधयो भवन्तु।

अन्नवतामोदनवतामामिक्षवताम्। एषां राजा भूयासम्। ओदंनमुद्ब्रुवते परमेष्ठी वा एषः यदोदनः। परमामेवैनम् श्रियं गमयति।"[6]

ॐ मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसार युत स्वसा। सव्रता भूत्वावाचं वदत भद्रया।"7

"ब्रह्मर्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मण हुतम्।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना।।"

ॐ सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सहवीर्य करवा वहै। तेजस्विना वधीत मस्तु मा विद्वषाव है। ॐ शान्ति! ॐ शान्ति! ॐ शान्ति।

शान्ति पाठ– प्रत्येक कार्यक्रम अथवा आयोजन के अन्त में 'शान्ति पाठ' का विधान है। अतएव प्रत्येक स्वयंसेवक इसका विधिपूर्वक पाठ करके परमेश्वर से प्रार्थना करता है कि सर्वत्र शान्ति हो। यथा–

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्ति र्विश्वेदेवाः शान्ति र्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।" अर्थात् द्युलोक, अन्तरिक्ष ओर पृथिवी सभी शान्ति एवं कल्याण देने वाले हों । सभी जल औषधियाँ और वनस्पतियाँ हमें सुख–शान्ति प्रदान करें। सभी देवता, परब्रह्म परमेश्वर और सभी सम्मिलित रूप में शान्ति प्रदान करने वाले हों। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक सभी प्रकार की शान्ति हो, शान्ति हो। यह शान्ति हम में सदैव वृद्धि को प्रप्त हो।

एकता मंत्र– भारत वर्ष में विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय हैं। अनेक अन्य विविधतायें भी हैं जैसे वेश–भूषा, खान–पान, रहन–सहन, पूजा–पद्धतियों, भाषायें इत्यादि किन्तु इनके होने पर भी हम सब यही चाहते हैं कि समूचे भारत में एकता अक्षुण्ण रूप से स्थिर बनी रहे। इसलिये संघ में 'एकता मंत्र' का निर्माण किया गया। यथा–

यं वैदिका मंत्रदृशः पुराणंः इन्द्रं यमं मातारिश्वानमाहुः।

वेदान्तिनोऽनिर्वचनीयमेकं यं ब्रह्म शब्देन विनिर्दिशन्ति।।1।।

शैवाः यमीशं शिव इत्यवोचन यं वैष्णवाः विष्णुरितिस्तुवन्ति।

बुद्धस्तथाऽर्हन्निति बौद्ध जैनाः सत् श्री अकालेति च सिक्ख सन्त।।2।।

शास्तोति केचित कतिचित् कुमारः स्वामीति भातेति भक्त्या।

यं प्रार्थयन्ते जगदीशितारं स एकएव प्रभुरद्वितीयः।।3।।"[8]

सुभाषित–कोई भी अक्षर ऐसा नहीं होता जिससे मंत्र नहीं बन सकता। ऐसी कोई वनस्पति नहीं जिसकी औषधि नहीं बन सकती। प्रत्येक व्यक्ति का उपयोग किया जा सकता है। केवल योजक की आवश्यकता है। कोई भी वस्तु निरुपयोगी नहीं है। उसके उपयोग करने की क्षमता वाले व्यक्ति की आवश्यकता है। यथा–

अमंत्रक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।

अयोग्यः पुरुषः नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः।।[9]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1–अखण्ड ज्योति (मासिक) सम्पा0 डॉ0 प्रणव पण्डया, वर्ष 67, अंक 11, नवम्बर 2003, पृष्ठ, 3

2–राष्ट्र जीवन दिशा, दीन दयाल उपाध्याय, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ 165 से 174

3–राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, पूर्वी उत्तर प्रदेश बौद्धिक विभाग, मास जौलाई अगस्त, 1970 ई0 परम पूज्य सदा शिव राव गोलवलकर का बौद्धिक अंश, पृष्ठ 5 से 15

4–वन्दना, सम्पा0 कृष्णचन्द्र गान्धी, संस्करण 2034, पृ0 10

5–डॉ हेडगेवार चरित्र, लेखक ना0ह0 पालकर, द्वितीय वृत्ति संवत् 2040 लोकहित प्राकशन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ पृष्ठ 228

6– कृष्ण यजुर्वेद

7–अथर्ववेद,

8–एकात्मा स्तोत्रम्, लोकहित प्रकाशन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ, पंचदश संस्करण, पूर्णिमा 2003, पृष्ठ, 15

9–एकात्मा स्तोत्रम्, लोकहित प्रकाशन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ पंचदश संस्करण, पूर्णिमा 2003, पृष्ठ, 15

नवम अध्याय

विशिष्ट शोधों द्वारा आंग्ल इतिहासकारों की पूर्वाग्रही सोच का खण्डन

प्रामाणिक नीवन इतिहास के लेखन को प्रोत्साहन

'मीसा' बन्दियों का अभूतपूर्व त्याग

शिक्षा—जगत शिशु मन्दिर, विद्या मन्दिर एवं अन्य

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान द्वारा आमूलचूल अवधारणा

नवम् अध्याय

भारतीय इतिहास की अभिनव संरचना– इतिहास लेखन के लिए एक स्पष्ट दृष्टि की आवश्यकता होती है। आज वह सर्वत्र दिखलाई नहीं देती। अपने पूर्वजों के क्रिया–कलापों और उनके जीवन की सच्ची घटनाओं से हम आधुनिक जीवन को स्फूर्तिमय प्रेरणामयी नहीं बना सकते हैं तो इतिहास आज के सन्दर्भ में मूल्यहीन हो जायेगा। किसी जाति के अतीत का आलेख यदि प्रेरणा देने में समर्थ नहीं है तो उससे जाति के विनाश की आशंका रहती है क्योंकि तब जीवन अपना प्रगति–मार्ग अवरुद्ध करता है।

सच्चे इतिहास के लिये आवश्यक है कि उसमें अपने पूर्व पुरुषों के जीवन की सच्ची घटनाओं का अंकन हो और वे घटनायें इस प्रकार से प्रस्तुत की जायें कि उसमें से पाठक को एक चेतना की प्राप्ति हो, कार्यका सन्देश मिले, राष्ट्रीय जागरण हो और जाति अपने समस्त विषादों को झाड़कर, उठकर खड़ी होने के लिये उद्यत हो जावे। इतिहास जीवन के विकास में सहायक बनना चाहिये।

आप कहेंगे कि इतिहास की घटनाओं में हमारे पूर्वजो की गलतियाँ भी तो समाविष्ट की जायेंगी। उनकी त्रुटियाँ, निराशा और पराभव यह सब भी तो इतिहास में अंकित होंगे? अवश्य ही ऐसा होगा। परन्तु पराभव और पराजय की घटनाओं को इस प्रकार लिखना चाहिए कि पाठक के मन में अपने पूर्वजों तथा समाज के प्रति हीनभाव न उदय हो। आजकल जो इतिहास मिलता है वह अंग्रेजों या अन्य विदेशियों द्वारा लिखे इतिहास के आधार पर मिलता है। विदेशियों का सदैव दृष्टिकोण यही रहा है कि इतिहास के द्वारा भारतवासियों में हीनभाव का उदय हो।

इतिहास जाति के उत्थान और पतन दोनों को चित्रित करेगा और ऐसा होना भी

चाहिए। परन्तु यहाँ भी इतिहास को जीवन से जोड़ना है तो उसी दृष्टि का उपयोग करना होगा। पाठक में अपने पूर्वजों के प्रति जब आत्मभाव उत्पन्न होगा तो उनके विजय और पौरुष की कहानी पाठक को प्रेरणा देगी, प्रसन्नता प्रदान करेगी और उनकी त्रुटियाँ अथवा उनके कारण होने वाली पराजय की घटनायें पाठक के हृदय में टीस उत्पन्न करेंगी और उसे या उस जाति को भविष्य में ऐसी त्रुटियाँ करने से रोकेंगी। उनके प्रति सतर्कता उत्पन्न करेंगीं। इतिहास हमें श्रेष्ठता की प्रेरणा दे और इतिहास की गलतियाँ उन्हें न दुहरने देने की सतर्कता दे। यह दोनों बातें मूलतः एक ही हैं, यही इतिहास पढ़ाने के प्रति हमारी दृष्टि होनी आवश्यक है।

भारतीय इतिहास ऐसे ही महापुरुषों की अक्षुण्ण कीर्ति का इतिहास है जो हमारी जाति को ही नहीं समस्त विश्व को आदर्श प्रदान कर सकने में सक्षम है।"[1]

वेदार्थानुसन्धान के विषय में आजकल प्रधानतया तीन मत मिलते हैं जिसमें से पहला मत है पाश्चात्य वैदिक अनुशीलनकारियों का अन्य दो मत हैं। इसी प्रकार के वैदिक विद्वानों के। पाश्चात्यों के अनुसार वेदार्थनुशीलन के लिये तुलनात्मक भाषा–शास्त्र तथा इतिहास की आवश्यकता तो है ही, साथ ही साथ भारतेतर देशों के धर्म तथा रीति–रिवाज का अध्ययन अपेक्षित है। क्योंकि इन दोनों की पारस्परिक तुलना ही हमें वैदिक धर्म के मूल स्वरूप का परिचय दे सकती है। इसी कारण से इसे 'हिस्टोरियल मैथड' अथवा 'ऐतिहासिक पद्धति' के नाम से पुकारते हैं। और भारतीय परम्परा। इसके विषय में ये लोग अत्यन्त उदासीन हैं। इनका तो यहाँ तक कहना है कि भारतीय व्याख्याता परम्परा का पक्षपाती होने से मूल अर्थ तक पहुँच ही नहीं सकता। अतः ब्राह्मण टीकाकार के ऊपर ये लोग अन्ध श्रद्धा को आक्षेप लगाते हैं और राथ आदि प्राचीन वेदानुशील पाश्चात्य पण्डित उसे वेदों का अर्थ करने के लिये सर्वथा अयोग्य ठहराते हैं और योग्य किसे बतलाते है? उस योरोपियन को, जो भारतीय परम्परा से अनभिज्ञ होकर भी भाषा शास्त्र, मानव शास्त्र आदि आदि विषयों की जानकारी रखता है।

इसी प्रकार वेदों के रचना काल (3200 वर्ष पूर्व) के सम्बन्ध में अनेक भ्रम और अनर्गल तथा अप्रामाणिक तथ्य डॉ. मैक्समूलर द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं जबकि ज्योतिषादि् ग्रन्थों की सहायता और प्रामाणिकता के आधार पर लोकमान्य तिलक एवं याकोबी (सुविख्यात् जर्मन भाषाविद्) ने वेदों का काल विक्रम संवत पूर्व चार सहस्त्र वर्ष पूर्व निश्चित किया है। यथा–

पाठक जानते हैं कि वर्ष में 6 ऋतुयें होती हैं–वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर। इन ऋतुओ का आविर्भाव सूर्य के संक्रमण पर निर्भर करता है। यह बात सुविख्यात है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक ऋतुयें पीछे हटती चली जा रही हैं। अर्थात् प्राचीन काल में जिस नक्षत्र के साथ जिस ऋतु का उदय होता था, आज वही ऋतु उस नक्षत्र से पूर्ववर्ती नक्षत्र के समय आकर उपस्थित होती है। प्राचीन काल में वसन्त से वर्ष का प्रारम्भ माना जाता था। 'ऋतूनां कुसुमाकरा:2 आजकल वसन्त सम्पात मीन की संक्रान्ति से आरम्भ होता है और यह संक्रान्ति पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण से आरम्भ होती है, परन्तु यह स्थिति धीरे–धीरे नक्षत्रों के एक के बाद एक के पीछे हटने से हुई है। किसी समय वसन्त सम्पात उत्तरा भाद्रपक्ष, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगसिरा आदि नक्षत्रों में था। वहाँ से वह क्रमश: पीछे हटता हुआ वर्तमान स्थिति पर पहुँच पाया है। नक्षत्रों के पीछे हटने से ऋतु परिवर्तन तब लक्ष्य में भली भाँति आने लगता है, जब वह एक मास पीछे हट जाता है। सूर्य के संक्रमण वृत्त 27 नक्षत्रों में भारतीय ज्योतिषविदो ने बाँट रक्खा है।

पूरा संक्रमण वृत्त 360 अंशों का है। अत: प्रत्येक नक्षत्र 360÷27 = 13 1/2 अंशों का एक चाप बनाता है। संक्रमण विन्दु को एक अंश पीछे हटने में 72 वर्ष लगते है। अत: पूरे एक नक्षत्र पीछे हटने के वास्ते उसे (72 x 13.1/2) = 972 वर्षों का महान काल लगता है। आजकल वसन्त सम्पात पूर्वा भाद्रपद के चतुर्थ चरण में पड़ता है। अर्थात् जब वह कृतिका नक्षत्र में पड़ता था, तब से लेकर आजतक वह लगभग साढ़े चार नक्षत्र पीछे

हट आया है। अतः ज्योतिष गणना के आधार पर कृतिका नक्षत्र में वसन्त सम्पात का काल आज से लगभग (972 x 4.1 / 2 = 4374) साढ़े चार हजार वर्ष पहले था अर्थात् 2500 वि0 पू0 के समय यह ज्योतिष की घटना मोटे तोर पर घटी होगी।

महाराष्ट्र के विख्यात ज्योतिर्विद पं. शंकर बाल कृष्ण दीक्षित ने शतपथ ब्राह्मण से एक महत्वपूर्ण वर्णन खोज निकाला है। जिससे उस ग्रन्थ के रचना काल के विषय पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस वाक्य में कृतिकाओं के ठीक पूर्वीय विन्दु पर उदय होने का वर्णन है, जहाँ से वे तनिक भी च्युत नहीं होती।"[3]

आजकल ये पूर्वीय विन्दु से कुछ उत्तर आगे हटकर उदय लेती हैं। अतः दीक्षित जी की गणनानुसार ऐसी ग्रह स्थिति 3000 वि0 पू0 में हुई होगी, जो शतपथ का निर्माण काल माना जा सकता है। तैत्तरीय संहिता, जिसमें कृतिका तथा अन्य नक्षत्रों का वर्णन है, निश्चय ही शतपथ से प्राचीन है। ऋग्वेद तैत्तरीय से भी पुराना है। अब यदि प्रत्येक के लिए 250 वर्ष का अन्तर मान लें तो ऋग्वेद का समय 3500 वि0पू0 से इधर का कभी नहीं हो सकता। अतः दीक्षित जी के अनुसार ऋग्वेद आज से 5500 (साढ़े पाँच हजार) वर्ष नियतमः पुराना सिद्ध हो जाता है।"[4]

(क) विशिष्ठ शोधों द्वारा आंग्ल इतिहासकारों की पूर्वाग्रही सोच का खण्डन– आज कल जो इतिहास ग्रन्थ पढ़ाये जा रहे है, प्रायः गलत धारणाओं का ही पिष्टपेषण करते हैं। विशेष रूप से बाबर के पश्चात् जितने भी इतिहास ग्रन्थ लिखे गये, वे अत्यन्त चाटुकारिता पूर्ण ढंग से लिखवाये गये। ये सब वर्णन सर्वाधिक असंगत, अप्रामाणिक और सन्देहास्पद हैं। ऐतिहासिक तथ्यों की खोज किये बिना ही वेतन भोगी इतिहास लेखकों ने मनगढ़न्त बातों की भरमार कर डाली। इसलिये आज इसकी महती आवश्यकता प्रतीत होती है कि प्रामाणिक, तथ्य पूर्ण एवं निरपेक्ष भाव से सही–सही बातों का निर्धारण किया जाये और अनुपयुक्त स्थलों को इतिहास–ग्रन्थों से निकाल कर इतिहास को निर्भ्रान्त बनाया जाये। उदाहरणार्थ–"शाहजहाँ ने बड़े ही भव्य भवनों का

निर्माण कराया। उसने अपनी बेगम की यादगार में विश्वप्रसिद्ध सुन्दर इमारत 'ताजमहल' का निर्माण कराया।" जबकि वस्तुस्थिति यह है कि ताज महल बाबर के समय में भी विद्यमान था। शाहजहाँ ने राजा मानसिंह के हिन्दू मन्दिर या प्रासाद का बलात् अधिग्रहण करके उसी पर कुछ निर्माण कराया था।

"यहाँ के केन्द्रीय कक्ष में 'मुमताज को ही दफनाया गया था किन्तु उसके बाद मुगल दरबार के जो लोग भी मरते गये, उन सबको ताज में ही दफनाने के लिये लाया जाता रहा जिससे कि सारा ताज कब्रिस्तान में परिवर्तित हो जाय और भविष्य में इस प्रकार की कोई सम्भावना नहीं न रह जाय कि उसका उपयोग हिन्दू कर सकें। सामान्य पर्यटक की दृष्टि से तो यह तथ्य छिपा ही रहा और यहाँ तक कि इतिहास के विद्वान भी इससे अनभिज्ञ हैं। यदि उनके पास समस्त ताज परिसर के सूक्ष्म अध्ययन का समय हो तो वे देखेंगे कि सातुन्जिसा खानम (मुमताज की नौकरानी) की कब्र भी एक कक्ष में है और सरहिन्दी बेगम (शाहजहाँ के हरम की एक रानी) दूसरे कक्ष में दफन हैं। इसी प्रकार अन्य अनेक सैकड़ों जाने–अनजाने मृतकों की कब्रें पूर्व से पश्चिम तक वहाँ बनी हुई हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि वे सभी कक्ष हिन्दू–वास्तुकला के प्रतीक, जैसा कि स्वयं ताज है अष्टभुजाकार हैं।"[5]

"मुण्डी और टेवर्नियर जैसे विदेशी पर्यटक तो निश्चित रूपेण यही कहेंगे कि कोई मुसलिम मकबरा बनवाया जा रहा था। किन्तु यह तो आधुनिक अनुसंधाताओं को चाहिए कि वे उनके उल्लेख कों पूर्ण सत्य स्वीकार न करें और जो कुछ उन पर्यटकों ने लिखा है, समुचित सन्दर्भ में जाँचे और परखें तथा उसके परिणाम पर विचार करें। अनुसंधाता यह भी न भूलें कि शाहजहाँ का अपनी ओर से इस प्रकार का कहीं कोई उल्लेख नहीं है कि जहाँ उसने यह कहा हो कि उसने ताज को बनवाया। विपरीत इसके उसका बादशाहनामा स्वीकार करता है कि वह राजा मानसिंह का महल था। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि शाहजहाँ कालीन रिकार्ड में भी ऐसा कोई कागज का टुकड़ा तक भी उपलब्ध नहीं

है जिसमें ताजमहल के विषय में कोई संकेत भी हो और न कोई नक्शा ही। पूर्ण परिसर का या किसी एक भाग का, उपलब्ध है। जो भी छुटपुट निर्माण–कार्य का उल्लेख है वह कब्र बनाना, मचान बाँधना, दीवार पर कुरान की आयतें खोदना तक ही सीमित है।"[6]

"भारत में आगरा नगर के बाहर यमुना नदी के दक्षिण तट पर मुगल बादशाह शाहजहाँ ने अपनी प्रियपत्नी अर्जुमन्दबानू बेगम की स्मृति में जिसे मुमताज–ए–महल पुकारा जाता था (जिसका अपभ्रंश ताजमहल है), एक मकबरा ताजमहल के नाम से बनवाया। सन् 1612 ई0 में दोनों के विवाह के उपरान्त मुमताज का शाहजहाँ की जीवन संगिनी बनने पर सन् 1631 ई0 में प्रसव के समय बुरहानुपुर में उनकी मृत्यु हो गई। भारत, फारस, मध्य एशिया तथा दूर–दूर के वास्तुकारों की परिषद् द्वारा योजना बनाये जाने पर सन् 1632 ई0 में भवन–निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ।.............यद्यपि सारा ताज परिसर पूर्ण होने में 22 वर्ष का समय लगा और उस पर 400 लाख रुपये व्यय हुआ तदपि सन्1643 ई0 तक मकबरा तैयार करने के लिये 20 हजार से अधिक श्रमिक दैनिक कार्य करते रहे।"[7] जब तक मुमताज जीवित थी, उसका नाम मुमताज महल नहीं अपितु ममुताज –उल–जमानी था। एनसाइकिलापीडिया ब्रिटेनिका के जैसे विवरण कि ताजमहल नाम मुमताज महल से लिया गया है, सर्वथा गलत है।"[8] तथ्यों के प्रमाणीकरण के लिये यह आवश्यक है कि बिल्कुल निष्पक्ष होकर तथ्यान्वेषण किये जायें। "ताजमहल के सम्बन्ध में जो सब कुछ खोजा जाना चाहिये, वह अभी तक खोजा नहीं गया है। ताजमहल की सभी कुंजियाँ होनी चाहिये तथा खोज के साधक और ताजमहल के कोने–कोने में जाकर देखने का अधिकार होना चाहिये। इसके अनेक भूगर्भस्थ कक्ष जिन्हें शाहजहाँ ने ईंट और चूने से बन्दकर दिया था, उन्हें खोलकर खोज करने की आवयश्कता है। मैं यह समझता हूँ कि कुछ निश्चयात्मक प्रमाण उन बन्द किये गये कक्षों में छिपे हुये हैं। उनमें संस्कृत शिल्प–लेख हिन्दू प्रतिमायें, पाण्डुलिपियाँ और मुद्रायें तथा उस भवन का प्राग शाहजहाँ कालीन इतिहास हो सकता है। ताजमहल भवन में स्थित बहुमंजिल कुआँ साफकर उसके

तल में भी ऐसे ही प्रमाण खोजे जाने चाहिये। अब तक मैं जिस कार्य में सफल हुआ हूँ, वह है मेरी यह धारणा कि ताजमहल निश्चित ही हिन्दू भवन है और शाहजहाँ ने इसे हथियाया था। किस हिन्दू राजा ने इसे बनवाया था और किस उद्देश्य से, यह भी खोज करना शेष है।''[9] इसी प्रकार जब बाबर इस प्रासाद में ठहरा और उसकी यहीं मृत्यु हुई तब इसे शाहजहाँ ने बनवाया, यह बिल्कुल ही गलत हो जाता है। एक अंग्रेजी इतिहासकार के अनुसार ''बाबर के संघर्षमय जीवन का उसके आगरा स्थित उद्यान प्रासाद में शान्तिमय अन्त हुआ।''[10] इस प्रकार बाबर का अन्त ताजमहल में ही हुआ था क्योंकि केवल ताजमहल ही एक ऐसा प्रासाद है जिसमें सुरम्य उद्यान था। बादशाहनामा इसका उल्लेख 'सब्ज जमीनी' के रूप में करता है जिसका अभिप्राय होता है हरा–भरा, विस्तीर्ण, वैभावशाली, रसीली, प्राचीरों से घिरा उद्यान।

इसी प्रकार शाहजहाँ का शासन काल न स्वर्णिम था और न शान्तिमय। श्री ओक लिखते है–'अपने 30 वर्ष के शासन काल में शाहजहाँ ने 48 अभियान छेड़े जो अनुपात में डेड़ अभियान प्रतिवर्ष होता है। इसका अभिप्राय यह कि शाहजहाँ का पूर्ण शासन काल अनन्त युद्धों का शासन काल था और फिर भी बिना किसी प्रमाण के वर्तमान इतिहास लेखक इस बात पर बल देते हैं कि शाहजहाँ का शासन काल स्वर्णिम और शान्तिमय काल था। इन युद्धों के अतिरिक्त शाहजहाँ के अधीनस्थ अनेक क्षेत्र अक्सर अकाल पीड़ित रहे। शान्ति और समृद्धि से दूर शाहजहाँ का राज्य भारतीय इतिहास का भयावह काल था, इससे बिना किसी आधार अथवा साक्ष्य के दिल्ली में तथा कथित जामा मसजिद और लाल किला और आगरा में ताजमहल के निर्माण का श्रेय शाहजहाँ को दिया जाता है, मिथ्या सिद्ध होता है।''[11] तथा तैमूरलंग ने अपने संस्मरणों में पुरानी दिल्ली और जामा मस्जिद दोनों का उल्लेख किया है। तैमूरलंग सन् 1398 ई. में क्रिसमिस के दिनों में पुरानी दिल्ली में था। इसका अभिप्राय हुआ कि शाहजहाँ के शासनारूढ़ होने से 230 वर्ष पूर्व। तैमूरलंग लिखता है–''रविवार के दिन मुझे यह बताया गया कि एक बड़ी संख्या में

धर्मद्रोही हिन्दू पुरानी दिल्ली की जागा मसजिद में शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर एकत्रित हुये और अपनी सुरक्षा के लिये तैयारी कर रहे है।"[12] इस सन्दर्भ में भारतीय इतिहास की भंयकर भूलें श्री पुरूतोत्तम नागेश द्वारा प्रणीत पुस्तक का दूसरा अध्याय पठनीय है।

इसी प्रकार श्रेष्ठ हिन्दू कलाकृति मयूर सिंहासन है जिसे शाहजहाँ ने ताजमहल से हटवा दिया। वह मयूर सिंहासन कालान्तर में मुसलिम आक्रमणकर्ता नासिर शाह फारस ले गया जो अब नष्ट हो गया है। उसको तोड़कर या तो आपस में बाँट लिया गया था या लूट लिया गया, क्योंकि मूर्तिभंजक मुसलमानों की धर्मान्धता में मूर्तियुक्त अपवित्र सिंहासन की विद्यमानता उसके लिये अभिशाप रूप थी। शाहजहाँ का दरबारी इतिहास, लेखक के अनुसार ऐसा लगता है कि 'मयूर सिंहासन तीन गज लम्बा, ढाई गज चौड़ा, पाँच गज ऊँचा और 86 लाख मूल्य के जवाहरात से जड़ा हुआ था। इसका छत्र 12 मणियुक्त स्तम्भों का था। प्रत्येक स्तम्भ के शिखर पर मयूरों का एक जोड़ा रत्नों से जड़ा हुआ स्थित था। प्रत्येक मयूर युगल के मध्य में मोती, हीरे, पन्ना आदि से जड़ा हुआ एक एक वृत्त बनाया हुआ था, सिंहासन का मूल्य 1 करोड़ रुपये था और इसे बनाने में सात वर्ष लगे थे।"[13] इसमें 11 आसन थे, जिनमें मध्य का आसन स्वयं शासक का था।

'हिन्दू परम्परा' के अनुसार राज्याभिषेक तथा अन्य राजकीय उत्सवों पर राजा के साथ उसकी रानी, पुत्र अथवा भाई सदा साथ ही होते हैं। भगवान राम को सदा महारानी सीता तथा तीनों भइयों के साथ बैठे हुये दिखाया जाता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस हिन्दू राजा ने इस सिंहासन को बनवाया था, उसके नौ पुत्र थे। मयूर–सिंहासन के ग्यारह आसन राजा, रानी, ओर उनके नौ पुत्रों के लिये बने थे। ......हिन्दू पुराणों के अनुसार विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती और योद्धा देव–सेनापति कार्तिकेय स्वामी दोनों का ही वाहन मयूर बताया गया है। प्राचीन भारत में ऐसा एक शासक जो अपने पराक्रम, विद्वत्ता और सत्य निष्ठा के लिये प्रसिद्ध था, जिसने ईसा से 57 वर्ष विक्रम संवत् प्रचलित किया था, वह विक्रमादित्य था। शाहजहाँ ने ताजमहल के साथ ही मयूर

सिंहासन को हथिया लिया था, मूलरूप में उसका निर्माण, अरब के विजेता सम्राट विक्रमादित्य ने करवाय हो।''[14]

(ख) प्रामाणिक नवीन इतिहास के लेखन को प्रोत्साहन–राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने जिस प्रकार समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपने किसी विशिष्ट अविवाहित आत्मदानी स्वयंसेवक को भेजकर उसे कभी अधिवक्ता समिति का दायित्व सौंपा तो किसी को शिक्षण मण्डल को प्रमुख बनाया, किसी को शिक्षा के क्षेत्र में भेजा तो किसी को वनगिरी वासियों की सेवार्थ भेजा। ठीक इसी प्रकार साहित्य में अभूतपूर्व परिवर्तन के लिये अखिल भारतीय साहित्य परिषद् का निर्माण किया तो किसी को सांस्कृतिक क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन के लिये 'सस्कार भारती' का निर्मार्ण करके उसके द्वारा समाज में एक नवीन जाग्रति उत्पन्न की। इतिहास एवं पुरातत्व के क्षेत्र में भी अनेक गलत परम्परायें और शोधें प्रचलित हैं। उनका शोधात्मक रूप से परीक्षण करके उन्हें प्रामाणिक बनाने के लिये 'अखिल भारतीय नवीन इतिहास लेखन समिति' का गठन किया।

इसके माध्यम से जहाँ प्रत्येक जिले का नवीन इतिहास लिखने की बात है वहीं इसकी प्रामाणिकता का भी ध्यान रखने को कहा गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण देश के इतिहासज्ञ एवं पुरातत्व विदों को इसमें सम्मिलित करके एक अनूठे राष्ट्रीय इतिहास–लेखन का सतत प्रयत्न किया जा रहा है।

अनेक विदेशी विद्वानों ने प्रायः यह सिद्ध करने का अथक प्रयत्न किय है कि आर्य भारत में बाहर से आये।

मानव जाति का ज्ञात ऋग्वेद प्राचीनतम ग्रन्थ 1017 सूक्तों का संग्रह है। इसमें दस मण्डल हैं, जिसमें कुछ छोटे, कुछ बड़े हैं। सिन्धुघाटी सभ्यता के उत्तर काल की भारतीय संस्कृति के इतिहास के बारे में जानकारी का यह एकमात्र स्रोत है। सिन्धु घाटी के लोागों की नागरिक सम्यता के विपरीति, ऋग्वैदिक सभ्यता यायावर (नौमेडिक) ग्रामीण लोगों की सभ्यता थी। उनकी अर्थ व्यवस्था कृषि प्रधान थी और उसकी गतिविधि का क्षेत्र सिन्धु

घाटी ओर उसकी सहायक नदियों–पाँच पूर्व की ओर और चार पश्चिम की ओर– के देश तक ही सीमित था। केवल बाद के काल में इस सभ्यता का विस्तार आगे पूर्व की ओर मध्य देश में हुआ और नये राज्य स्थापित हुये। तब पंचनद (पंजाब की पाँच नदियाँ) देश का महत्व घट गया। ऋग्वेद कालीन इस सभ्यता का सम्बन्ध उन लोगों के साथ जुड़ा है जो 'आर्य' कहलाते थे। ऐसा माना जाता है कि वे भारत में बाहर से आये थे। इसका प्रमाण यह है कि उनके द्वारा बोली जाने वाली भाषा और पश्चिम की पुरानी भाषाओं में–इण्डो आर्य या इण्डो जर्मन दोनों भाषा–परिवारों से निकली भाषाओं में भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से एक दूसरे से सादृश्य हैं किन्तु कुछ विद्वान उनके इस विदेशी उद्भव का और उनकी सभ्यता के उपरिलिखित पिछले स्वरूप का भी खण्डन करते हैं। भाषा सम्बन्धी इस सादृश्य को दर्शाने वाली भाषायें हैं–संस्कृत, फारसी, ग्रीक, लैटिन, टयूटोनिक, कैल्टिक और स्लावोनिक। इससे प्रतीत होता है कि इन भाषाओं को बोलने बाले लोग मूलतः किसी एक ही जगह से आये। वे किसी समय इस निवास–स्थान से चल पड़े और अलग संजातीय (ऐथोलौजिकल) इकाइयाँ बन गये क्योंकि इनमें से अधिकांश भाषाओं में मनुष्य के लिये वीर (वीरोज) शब्द मिलता है। इससे अनुमान किया गया कि मूल आर्य लोग इसी नाम से विख्यात थे। यह भी कहा गया है कि वे योरोप के उस प्रदेश में रहते थे जिनमें अब हंगरी, आस्ट्रिया और वोहीमिया हैं। आर्य लोग इस मूल निवास–स्थल से नये चरागाहों की खोज मूँ पूर्व की ओर चल पड़े। उसके बाद वे अलग दिशाओं में बँट गये। एक शाखा ईरान या फारस में रह गई जब कि अन्य आगे बढ़ती गई सिंध के क्षेत्र में जिसे 'पंचनद' कहा जाता था, बस गई। ऋग्वेद और अवेस्ता (प्राचीन ईरानियों का धर्म ग्रन्थ) में शब्दों, वाक्यांशो, पद्यांशों और यहाँ तक कि पुराण कथाओं और आख्यानों में साम्य से यह अनुमान होता है कि हिन्दुओं और पारसियों के पूर्वज दीर्घकाल तक साथ रहे थे और बहुत सम्भवतः अपने मूल निवास–स्थान को छोड़कर आनेवालो में सबसे अन्तिम वे ही थे।"[15]

सैंधव–संस्कृति के विनाश के पश्चात् भारत में जिस नवीन सभ्यता का विकास

हुआ उसे वैदिक अथवा आर्य सभ्यता के नाम से जानां जाता है। भारत का इतिहास एक प्रकार से आर्य जाति का इतिहास है। आर्यों का इतिहास हमें मुख्यतः वेदों से ज्ञात होता है जिसमें ऋग्वेद सर्व प्राचीन होने के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

सामान्यतः ऐसा माना गया है कि जिन विदेशी आक्रान्ताओं ने सैंधव नगरों का ध्वस्त किया था, वे आर्य ही थे (कुछ विद्वान इसे अर शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं जिसका अर्थ है उत्पादन साम्मर्थ्य। अर् से सम्पन्न लोग 'अर्य' कहलाये तथा उनका समूह 'आर्य' कहा गया।)''[16]

अनेक विद्वानों (भारतीय) की धारणा है कि आर्य मूलतः भारत के ही निवासी थे तथा यहीं से वे विश्व के विभिन्न भागों में गये। पं० गंगानाथ झा ब्रहर्षि देश, डी.एस. त्रिवेदी मुल्तान स्थित देविका एल.डी कल्ल कश्मीर तथा हिमालय क्षेत्र में आर्यों का मूल निवास बतलाते हैं।

आर्यो का आदि स्थान उत्तरी ध्रुव में मानने वाले सर्वप्रथम विद्वान पं0 बाल गंगाधर तिंलक हैं। तिलक महोदय का विचार है कि आर्यों ने ऋग्वेद की रचना सप्त सैंधव प्रदेश में की थी। इसमें एक सूक्त के अन्तर्गत दीर्घ कालीन उषा की स्तुति मिलती है। दीर्घ कालीन उषा उत्तरी ध्रुव में ही दिखाई देती हैं। महाभारत में सुमेरू पर्वत का वर्णन मिलता है, जहाँ छैः माह का दिन और छैः माह की रात होती है। यहाँ भी उत्तरी ध्रुव की ओर ही संकेत हैं अतः हम कह सकते हैं कि आर्य उत्तरी ध्रुव के ही निवासी थे और इसी कारण उनके मस्तिष्क में अपनी मूल भूमि की स्मृति बनी हुई थी।

मैक्समूलर आर्यो का आदि देश मध्य एशिया, रोडस वैक्ट्रिया तथा एडवर्ड मेयर पामीर के पठार को मानते हैं। ओल्डेन वर्ग तथा कीथ आदि विद्वान भी इसका समर्थन करते हैं।

ब्रैन्डेस्टीन के भारतीय भाषा कोष से प्रकट होता है कि आर्य मूलतः एक पर्वत के नीचे घास के मैदान में निवास करते थे। यह मैदान यूराल पर्वत के दक्षिण में स्थित

किर्जिंग का मैदान था।

स्केण्डनीविया नाम नामक स्थान कभी भी विदेशी आधिपत्य में नहीं रहा तो भी यहाँ के निवासी भारोपीय भाषा बोलते हैं। सिद्ध होता है कि भारोपीय भाषा का मूल स्थान यहीं था। मात्र भाषा विज्ञान के आधार पर इस समस्या का हल निकालना उचित नहीं लगता।"[17]

समस्त उपलब्ध पुरातत्वीय एवं भाषा शास्त्रीय सामग्रियों के आधार पर मेयर, पीक तथा गार्डन चाइल्ड्स का मत है कि दक्षिणी रूस आर्यों का मूल निवास–स्थान था, स्वीकार करना अधिक तर्क संगत प्रतीत होता है। इस प्रंसग में ये उल्लेखनीय है कि आर्यों को विदेशी मूल का मानने का मत प्रधानतः भाषा, विज्ञान पर आधारित होने के कारण बहुत अधिक सबल नहीं है। वेद में कोई उद्धरण ऐसा नहीं है जो यह सिद्ध कर सके कि आर्य यहाँ आक्रान्ता के रूप में आये थे। 'आर्य' शब्द को जातिवादी मानना ठीक नहीं है। ऋग्वेद के मंत्रों में प्रयुक्त शब्दों की संख्या 153972 है जिसमें 'आर्य' शब्द मात्र 33 बार ही आता है। फिर ऋग्वेद में उल्लिखित पर्वत, नदियों आदि की संख्या और महिमा को देखते हुये यही मानना पड़ेगा कि आर्य मूल रूप से प्रकृति सम्पदा से सम्पन्न इसी भारत के मूल निवासी थे क्योंकि हिमाद्रि का नैसर्गिक वर्णन और उषः काल का एक सुन्दरी नवयुवती के रूप में काव्यात्मक चित्रण भारतीय मेधा का ही सुफल है। अन्य जितने भी मत–मतान्तर हैं, वे सभी पूर्वाग्रह से ग्रसित और भ्रामक हैं। वैदिक कालीन भारत आज जैसा संकुचित सीमाओं में आबद्ध न होकर विस्तृत भू–भाग में अपना अस्तित्व रखता था। इसी की कल्पना उन्होंने 'भारत माता' के रूप में की जो उनकी अनूठी देन है। ऐसा मेरा अपना अनुमान और विश्वास है। एक प्रसिद्ध इतिहासकार के अनुसार–"आर्यों का प्रसार अफगानिस्तान से गंगा–घाटी तक था। ऋग्वेद में यत्र तत्र नदियों और पर्वतों के नाम मिलते हैं। हिमालय पर्वत का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। हिमालय की एक चोटी को 'मूजवन्त' कहा गया है, जो 'सोम' के लिये प्रसिद्ध थी। पश्चिम की ओर कुभा (काबुल), कुमु (कुर्रम),

गोमती, सुवास्तु नदियों के उल्लेख से यह पता चलता है कि अफगानिस्तान भी उस समय भारत का हीं अंग था। इसके पश्चात् पंजाब की पाँच नदियों–सिन्धु, वितस्ता (झेलम), चेनाव, रावी, विवासर (व्यास) का उल्लेख हुआ है। साथ ही शतुद्री (सतजल) सरस्वती, यमुना तथाा गंगा के नाम भी मिलते हैं। यह सम्पूर्ण भौगोलिक प्रदेश अनेक आर्यजनों में विभाजित था।''[18]

इस सन्दर्भ में माननीय कु. पी. सुदर्शन वर्तमान सरसंघ चालक का उद्धरण अत्यधिक चिन्तनीय, मननीय एवं स्मरणीय हैं। उनका मानना है कि–''अंग्रेजों ने अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों के लिये 'आर्य बाहर से आये यह गलत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। लेकिन इस एक गलत सिद्धान्त के आज कितने विवाद अपने देश मे खड़े हैं जो हमारे सामाजिक और राजनैतिक जीवन को विषाक्त कर रहे हैं। उत्तर और दक्षिण का विवाद, आर्य और द्रविड का विवाद, सवर्ण और हरिजन का विवाद, ब्राह्मण–अब्राह्मण का विवाद, आदिवासी और गैर आदिवासी का विवाद..........ऐसे सब विवाद इस एक गलत सिद्धान्त में से निकले हुये हैं, वही अब तक पढ़ाये जा रहे हैं। उसके कारण सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में कितना विभाजन, कितना परस्पर का विद्वेष तथा एक दूसरे के प्रति विष वमन किया जा रहा है, जब कि पूरा सिद्धान्त ही गलत है।''[19]

(ग) मीसाबन्दियों का अभूतपूर्व त्याग–संविधान में तीन प्रकार की असाधारण परिस्थितियों का उल्लेख है जिनके कारण संविधान द्वारा प्रस्थापित प्रसामान्य शासन तंत्र से विचलन किया जा सकता है, अर्थात् (1) युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण आपात् (अनुच्छेद 352) इसे दूसरे किस्म के आपात् से अलग दर्शाने के लिये "राष्ट्रीय आपता" कहा जाता है। (2) राज्य के सांवैधानिक तंत्र की विफलता (अनुच्छेद 356) (3) वित्तीय आपात (अनुच्छेद 360)।

अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत आपात की प्रथम उद्घोषणा राष्ट्रपति ने नेफा में में चीनी आक्रमण को ध्यान रखते हुये 26 अक्टूवर 1963 ई0 मे की थी। अनुच्छेद 259 के अधीन

किये गये राष्ट्रपति आदेश में यह उपबन्ध था कि भारत रक्षा के अधिनियम के अधीन गिरफ्तार या बन्दी बनाये गये व्यक्ति को अनुच्छेद 14, 19, या 21 के अधीन अपने मूल अधिकार के प्रवर्तन के लिये न्यायालय में अभ्यावेदन करने का हक नहीं होगा। राष्ट्रपति ने आपात की यह उदघोषणा 10 जनवरी, 1968 को आदेश निकालकर वापस ली।

अनुच्छेद 352 के अधीन आपात की दूसरी उद्घोषण राष्ट्रपति ने 3 दिसम्बर, 1971 को की जब पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध एक अघोषित युद्ध प्रारम्भ किया।

दिसम्बर, 1971 ई बाँग्लादेश में पाकिस्तान के हार मान लेने के कारण युद्ध बन्द हो गया और इसके पश्चात् भारत और पाकिस्तान के बीच शिमला समझौता हुआ किन्तु फिर भी पाकिस्तान से शत्रुभाव बने रहने के कारण 1971 ई0 की उद्घोषणा प्रवृत्त रही थी।

अनुच्छेद 352 के अधीन दो पूर्ववर्ती उद्घोषणायें बाह्य आक्रमण के आधार पर की गई थीं किन्तु अनुच्छेद 352 के अधीन 25 जून सन् 1975 ई0 को की गई आपात की तीसरी उद्घोषणा21 मार्च, 1977 ई0 को वापस ली गई।''20

यह दृष्टव्य है क 1978 के पश्चात सशस्त्र विद्रोह से कम किसी आन्तरिक अशान्ति के आधार पर आपात की उद्घोषणा करना सम्भव नहीं हैं क्योंकि संविधान (44 वाँ संशोधन) अधिनियम 1978 द्वारा 'आन्तरिक अशान्ति' शब्दों के स्थान पर 'सशस्त्र विद्रोह' शब्द रख दिये गये हैं।

जब आपात की उद्घोषणा की जाती हे तो केन्द्र को राज्य के शासन को या उसके किसी भाग को निलम्बित करने की शक्ति नहीं प्राप्त होती। राज्य की कार्यपालिका और विधायिका कार्य करती रहती है और अपनी शक्तियाँ भी उसी प्रकार बनाये रखती हैं। केन्द्र को राज्य में विधायन और प्रशासन की समवर्ती शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। किन्तु संवैधानिक तंत्र की विफलता की दशा में की जाने वाली उद्घोषणा के अधीन राज्य विधान मण्डल निलम्बन हो जाता है और राज्य की कार्यपालिका शक्ति पूर्वतः या भागतः

राष्ट्रपति द्वारा ग्रहण कर ली जाती है। इसी कारण इसे 'राष्ट्रपति शासन' कहा जाता है।''[21]

इस प्रकार आन्तरिक सुरक्षा प्रबन्धन कानून (मीसा) के तहत सभी दलों के बड़े–बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इनमें जय प्रकाश नारायण, मोरार जी देसाई, अटल विहारी बाजपेयी, चन्द्र शेखर के साथ–साथ चरण सिंह इत्यादि तथा अनेक ट्रेड यूनियन के भी सम्मिलित थे। इन उन्नीस महीनों में लगभग 1,75000 एक लाख पचहत्तर हजार लोग बन्दी बनाये गये।''[22]

मीसा बन्दियों का अभूतपूर्व त्याग निःसन्देह दैनन्दिनि शाखा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संध की एक ऐसी टकसाल है जिसमें से अनेक त्यागी, तपस्वी, बलिदानी और अपने देश की आन–बान और शान पर प्राण न्योछावर करने वाले दृढ़ संकल्पी निकलते हैं। शाखा की धरती की रगड़ स्वयं सेवको को जलती हुई अग्नि में जैसे सोना और तेजस्वी होकर कुन्दन बन जाता है विशुद्ध बन जाता है, निष्कलुष बन जाता है ठीक उसी प्रकार ये स्वयं सेवक भी कुन्दन की भाँति तेजस्वी होकर अनमोल रत्न की संज्ञा प्राप्त कर लेते है।

जब जब देश पर संकट के बादल घहराये तब–तब स्वयं सेवको ने अपने अभूत पूर्व त्याग का परिचय देकर उस झंझावात को सम्पूर्ण वेग से हटाने का काम किया। सन् 1965 ई0 के भारत पाक युद्ध के समय गुरुजी ने प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री को योग्य परामर्श देकर संघ की ओर से सब प्रकार के सहयोग का आश्वासन दिया। स्वयं सेवकों ने भी अपने सरसंघ चालक की इच्छा का सम्मान करते हुये अग्रिम मोर्चों पर तैनात सैनिकों के लिये भोजन एवं घायल जवानों के लिये रक्त की समुचित व्यवस्था की। इसी प्रकार सन् 1971 ई0 के युद्ध के समय भी स्वयं सेवकों ने सरकार एवं सेना को भरपूर सहयोग दिया। वस्तुतः यह सब स्वयं सेवकों ने श्रेय या प्रशंसा के लिये नहीं किया था, यह तो शाखा से प्राप्त संस्कारों की व्यवहार रूप में परिणति मात्र थी।''[23]

सन् 1947 ई0 में देश को स्वतंत्रता तो मिली परन्तु मातृभूमि के विभाजन का कड़ुवा

घूँट भी देशभक्तों को पीना पड़ा। इसके साथ ही पाकिस्तान से लुटपिट कर आने वाले हिन्दु बन्धुओं, माता–बहनों की सुरक्षा, देख रेख तथा पुनर्वास का कार्य स्वयं सेवकों ने जान पर खेल कर किया।

30 जनवरी 1948 को नाथूराम गोडसे ने गान्धी की हत्या कर दी, सारा देश स्तम्भित रह गया। श्री गुरु जी तब तमिलनाडु के प्रवास पर थे। उन्होंने सभी आगामी कार्यक्रम स्थागित कर दिये। प्रधानमंत्री नेहरू, गृहमंत्री सरदार पटेल तथा गान्धी जी के पुत्र देवदास गान्धी को तार द्वारा अपनी संवेदनाये भेजी तथा शाखाओं पर तेरह दिन तक शोक मनाने की सूचना प्रसारित कर दी।

पिछले कुछ समय से ही नेहरू जी तथा उनके कांग्रेसी मित्रों को संघ की बढ़ती हुई शक्ति से खतरा लग रहा था। वे चाहते थे कि संघ के कार्यकर्ता कांग्रेस में शामिल होकर उनकी राजनैतिक इच्छाओं की पूर्ति में सहयोग दें, परन्तु संघ ने हर बार उनका प्रस्ताव विनम्रता से अस्वीकार कर दिया। महात्मा गान्धी जी की हत्या से उन्हें एक बहाना मिल गया। संघ पर इसका झूठा आरोप लगाकर नेहरू जी ने 1 फरवरी सन् 1948 को पूज्य गुरु जी को बन्दी बना लिया तथा 4 फरवरी 1948 ई0 को संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया। श्री गुरुजी के साथ हजारों अन्य कार्यकर्ताओं को भी पकड़कर उन्हें शारीरिक तथा मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया।

परन्तु श्री गुरु जी ने ऐसे समय में भी सब स्वयं सेवकों को शान्त रहने का सन्देश दिया। स्थान–स्थान पर गुण्डों ने काँग्रेसी नेताओं की शह पर संघ कार्यालयों तथा वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के घरों पर हमले किये परन्तु गुरु जी के आदेशानुसार स्वयं सेवकों ने शान्तभाव से सब सह लिया।

इस बीच गुरु जी ने पत्र व्यवहार तथा प्रत्यक्ष भेंट द्वारा नेहरू तथा पटेल को संघ पर लगाये गये झूठे अरोपों के बारे में विस्तार से बताया। परन्तु गान्धी–वध का आरोप तो मात्र दिखावा था, वस्तुतः नेहरू जी संघ की बढ़ती शक्ति को अपने तथा काँग्रेस के लिये

खतरा समझकर उसे कुचल डालने पर प्रतिबद्ध थे। वार्ता एवं परामर्श करके 9 दिसम्बर सन् 1948 ई0 से सत्याग्रह की घोषणा कर दी। फिर क्या था गाँव–गाँव और नगर–नगर में फिर से शाखायें लगने लगीं। प्रवास, बैठक, पत्रक का दौर फिर से गूँजने लगे। नमस्ते सदा वत्सले'.........तथा 'भारत माता की जय' के स्वर फिर गूँजने लगे। साठ हजार से भी अधिक स्वयं सेवकों ने अपनी गिरफ्तारी दी। कारागार स्वयं सेवकों से भर गये। अन्त में सरकार को झुकना पड़ा उसने अपनी भूल स्वीकार की तथा संघ पर से सब आरोप वापस लेकर 12 जौलाई सन् 1948 ई0 को प्रतिबन्ध उठा लिया।

"इसी प्रकार 25–26 जून, 1975 की वह कालरात्रि जब इन्दिरा गाँधी की घृणित राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं ने भारत में लोकतंत्र की हत्या करनी चाही तथा सभी प्रमुख विरोधी पक्ष के नेताओं को बन्दी बनाकर देश में आपात काल घोषित कद दिया। 4 जौलाई, सन् 1975 ई0 को संघ पर प्रतिबन्ध की घोषणा हो गई। परमपूज्य बालासाहब देवरस (सरसंघ चालक) संघ शिक्षा वर्गों के प्रवास से वापस लौटे ही थे कि उन्हें बन्दी बना कर यरवदा (पुणे) कारागृह में ठूँस दिया। जेल से ही बालासाहब ने इन्दिरा गाँधी को पत्र लिखकर समझाने तथा ठीक मार्ग पर आने का सुझाव दिया पर वे तो सत्ता मद में अन्धी हो रही थीं। अन्ततः संघ के स्वयं सेवकों ने प्रतिबन्ध तथा आपात काल के विरोध में इतना जबर्दस्त सत्याग्रह तथा आन्दोलन चलाया कि सारे देश का वातावरण इन्दिरा जी के विरुद्ध हो गया और सन् 1977 ई0 के चुनाव में उन्हें, मुँहकी खानी पड़ी। वे स्वयं तथा उनके कुख्यात पुत्र संजय गाँधी भी चुनाव हार गयें।"[24]

सन् 1977 ई0 के चुनाव में कुछ समय पूर्व जब इन्दिरा गाँधी को अपनी स्पष्ट हार दिखाई देने लगी तो उन्होंने चाल चली। मध्यस्थों के माध्यम से संघ के वरिष्ठ अधिकारियों तक यह खबर भेजी कि संघ के प्रतिबन्ध को हटाकर उसके सभी कार्यकर्ताओं को जेल से मुक्त करने का प्रधानमंत्री का विचार है। पर, संघ के लोग चुनाव से अपने को अलग कर लें। संघ के अधिकारियों ने इस प्रस्ताव को दृढ़तापूर्वक ठुकरा दिया और इसका

सुपरिणाम बाद में सारे विश्व ने देखा।

इसके बाद केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार सत्तारूढ़ रही। संघ के स्वयंसेवकों के अपरिमित त्याग, बलिदान तथा परिश्रम से ही यह सम्भव हुआ था। परन्तु फिर भी संघ ने अपने को राजनैतिक गतिविधियों से दूर कर पुनश्च दैनिक शाखा की ओर उन्मुख कर लिया।

"1973 ई० से 1994 ई० तक इक्कीस वर्षों में सरसंघचालक के रूप में परम पूज्य बालासाहब ने संघ को अनेक विचार दिये। हिन्दुत्व पर आने वाली किसी भी चुनौती को उन्होंने अस्वीाकर नहीं किया। सन् 1983 ई० में तमिलनाडु के मीनाक्षीपुरम गाँव में जब कुछ हिन्दुओं ने सामूहिक रूप से मुसलिम पंथ स्वीकार, कर लिया तो सारे देश में इसकी आलोचना हुई। तत्कालीन प्रधामंत्री इन्दिरा गाँधी ने भी इस पर चिन्ता व्यक्त की। पर श्री बालासाहब ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। तथा धर्मान्तरण के इस कुचक्र को तोड़ने के लिये सार्थक पहल की। विश्व हिन्दु परिषद् के नेतृत्व के एकात्मता यात्रा के माध्यम से इस विषय को लेकर जन–जाग्रति की गई तथा संस्कृति रक्षा निधि के रूप में एक बड़ा कोष बनाकर पूरे देश में पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं को इस तरह खुले आम धर्मान्तरण कराने का साहस नहीं हुआ। इसी प्रकार 1988–89 ई० में प्रवास कर पोप के कुटिल षड़यन्त्रों ने भारतवासियों को सचेत किया। परिणामतः धर्मानतरण की उनकी मुहिम भी ठन्डी हो गई। राँची, जिसे ईसाई मिशनरियों का गढ़ माना जाता था, वहाँ की हिन्दू जनता तो इसकी उद्वेलित हो उठी कि उनके भय से पोप महोदय शहर में नहीं घुस सके, हवाई अड्डे से ही उन्हें वापस लौटना पड़ा।"[25]

सन्दर्भ गन्थ सूची

1–इतिहास गा रहा है, प्रथम भाग, लेखक, राणा प्रताप सिंह श्रीकृष्ण चन्द्र गाँधी प्रदेश निरीक्षक शिशु मन्दिर उ0 प्र0 की भूमिका से अवतरित, संस्करण प्रथम 14 जनवरी 1973 प्रकाशन सरस्वती शिशु मन्दिर प्रकाशन, निराला नगर लखनऊ

2–श्रीमद्भगवत गीता

3–'एक द्वे त्रीण चत्वारीति वा अन्यानि नक्षत्राणि, अथैता एव भूयिष्ठा यत् कृतिकास्तद् भूयानमेव एतदुपैति तस्मात् कृतिकास्वादधीत। एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते, सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशाश्च्यवन्ते।–शतपथ–2/1/1

4–वैदिक साहित्य, राम जी पाण्डेय, पृष्ठ 137, 138 तथा भारतीय ज्योति शास्त्र, शंकरलाल कृष्णदीक्षित, पूना, संस्मरण, 1896 ई0, पृष्ट0 136–140

5–ताज महल मन्दिर भवन है, पुरुषोत्तम नागेश ओक, भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली पृ 70

6–ताज महल मन्दिर भवन है, पुरुषोत्तम नागेश ओक, भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली पृ 70,71

7–एनसाइकिलोपीडिया बिटेनिका संस्करण 1964 भाग 21, पृ0 158

8–ताज महल मन्दिर भवन है, पुरुषोत्तम नागेश ओक, भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली पृ 74

9–ताज महल मन्दिर भवन है, पुरुषोत्तम नागेश ओक, भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली पृ 273

10–अकबर द ग्रेट मुगल, विसेण्ट स्मिय, पृ 90

11–ताज महल मन्दिर भवन है, पुरुषोत्तम नागेश ओक, भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली पृ 158

12–मलफजात–ए–तैमूरी या तुजकए–तैमूरी, भाग 3; पृष्ठ 44, 64, 47 का अनुवाद

13–इलियट एण्ड डौसन भाग 7, पृ0 45,46

14–ताज महल मन्दिर भवन है, पुरुषोत्तम नागेश ओक, भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली पृ 224

15–भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पी. एन. चोपड़ा. बी. एन. पुरी तथा एम. एन. दास. अनुवाद–उदयन परमार, संस्करण 1994, मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, पृष्ठ 38–39

16–प्राचीन भारत में ग्राम एवं ग्राम्य जीवन, एस. एन. मिश्र. में वी. एन. पाठक की व्याख्या पृष्ठ, 181

17–प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, पृ0 62–63

18–प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, पृ 66

19–अपने परम पूज्यनीय सरसंघ चालक, ले. विजय कुमार. लोकहित प्रकाशन लखनऊ पृष्ठ 57

20–भारत का संविधानः एक परिचय, डॉ. दुर्गादास बसु, सातवां संस्करण, 2000 पृ0 343, 344

21–भारत का संविधानः एक परिचय, डॉ. दुर्गादास बसु, सातवां संस्करण, 2000 पृ0 343, 344

22–भारत का संविधान, पुखराज जैन की पुस्तक के आधार पर

भारत का संविधान, डी.डी. पाण्डेय की पुस्तक के आधार पर

23–अपने परम पूज्यनीय सर संघ च लक, विजय कुमार, पृ0 23

24–अपने परम पूज्यनीय सर संघ चालक, विजय कुमार, पृ0 33

25–अपने परम पूज्यनीय सर संघ चालक, विजय कुमार, पृ0 36,37

दशम अध्याय

हिन्दू शब्द की व्युत्पत्ति

भारत हिन्दू राष्ट्र है

भारत माता की जय

दशम् अध्याय

डॉ0 हेडगेवार की हिन्दुत्व की अवधारणा– उपनिषदों पर आर्थर शेपनहावर–सम्पूर्ण विश्व में कोई अध्ययन इतना उत्साहवर्द्धक और लाभकारी नहीं है, जितना उपनिषदों का पढ़ना। यह मेरे जीवन का संतोष है एवं मृत्यु का भी।

हेनरी डेविड थोरो–वेदों का सार मैंने पढ़ा है। वह मेरे लिए अत्युच्च और जाति शुद्ध ज्योतिर्मय पिण्ड के प्रकाश जैसा है जो उन्नत मार्ग को बिना जटिलता के सरल और सार्वभौम तरीके से समझाता है। वह मेरे लिए तारों भरी रात्रि में सुदूर आकाश से आने वाले पूर्ण चन्द्रमा के प्रकाश जैसा है।

गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स–अंग्रेज शासन एवं संसाधनों के समाप्त हो जोने के बहुत दिनों बाद भी गीता का उपदेश बचा रहेगा।

हिन्दू धर्म ग्रन्थों पर राल्फ वाल्डी इमरसन–मौलिक एकतात्मता की अवधारणा पर चिन्तन सभी देशों में होता है। प्रार्थना से प्राप्त तन्मयता और भक्ति से प्राप्त परमानन्द सबसे तादात्म्य की अनुभूति देता है। वेद, गीता, विष्णु पुराण जैसे हिन्दू धर्म ग्रन्थों में इसी भाव की सवोंच्च अभिव्यक्ति प्रकट होती है।

गीता पर उन्होंने कहा–मैं भगवद्गीता का अत्यन्त ऋणी हूँ। यह पहला ग्रन्थ है जिसे पढ़कर मुझे लगा कि कोई विराट शक्ति से हमारा संवाद हो रहा है। इसमें क्षुद्रता और अनुपयुक्तता से परे, उच्चतम प्रज्ञा की स्पष्ट, शीतल, तर्क–शुद्ध ध्वनि है जिसकी हुंकार बीते युग एवं माहौल के होते हुए भी वर्तमान समस्याओं का निदान एवं उपाय बताने में पूरी तरह सक्षम है।

एनीवेसेन्ट–भारत एवं हिन्दू धर्म पर– विश्व के महान धर्मों के 40 वर्ष से अधिक समय तक अध्ययन करने पर यह ज्ञात हुआ कि महान हिन्दू धर्म की तुलना में कोई भी

धर्म न इतना सम्पूर्ण है, न इतना वैज्ञानिक है, न दार्शनिक और न इतना आध्यात्मिक है। यह कहना गलत न होगा कि बिना हिन्दुत्व के भारत का कोई भविष्य नहीं है। भारतवर्ष की जड़ें हिन्दुत्व की आत्मा से प्रस्फुटित हुई हैं अतः अगर हिन्दुत्व का संरक्षण भारतीयों ने न किया तो और कौन इसकी रक्षा करेगा।

गीता के विषय में आल्डस हक्सले–पुरातन दर्शन शास्त्रों मे गीता एकमात्र सबसे स्पष्ट तथा शाश्वत दर्शन की समीक्षा है। इसलिए इसका जीवन मूल्य केवल भारतीयों के लिए न होकर सम्पूर्ण मानव जाति के लिए है।

विल्हम वाँनह्म वोल्ट–निश्चित रूप से गीता अति सुन्दर और कदाचित किसी भी ज्ञात भाषा का सच्चा दार्शनिक गीत है और कदाचित यह विश्व की गम्भीर एवं उदार चरित वस्तु सी दिखाई देती है।

प्रो0 ब्रायन डेविड जोसेफरान (फ्रांस) सबसे कम आयु के नोबल पुरस्कार विजेता–वेदान्त और सांख्य में मन और विचार प्रणाली जो क्वांटम फील्ड (अर्थात परमाणु ओर आणविक स्तर पर कणों की क्रिया और वितरण) जैसे है–के लिए कुंजी है।

श्री एन ए. पालकीवाला–ब्रह्म के विषय में या अन्तिम वास्तविकता के बारे में जो हमारे प्राचीन ऋषियों ने बताया है वह एकदम वही है जिसे आज के महान वैज्ञानिक प्रकृति से लड़ने के विषय में सोचते हैं। विज्ञान जितनी प्रगति करता है वह वेदान्त के उतना समीप पहुँचता है। हमारी इतनी अश्चर्यजनक कुल–परम्परा होने के बावजूद हम छोटी–छोटी बातों में लिप्त रहते हैं।

मैक्समूलर–अगर मुझसे कोई पूछेगा कि कहाँ "मानव मस्तिष्क" ने सबसे मूल्यवान चीज विकसित की है, कहाँ सबसे जटिल जीवन की समस्या का सामधान खोजा गया है, जिसकी प्लेटो और कांट के पढ़ने वालों ने भी प्रशंसा की है तो मैं इस स्थान को भारतवर्ष की कहूँगा।

विल ड्यूरेन्ट–हठपूण विजय उदंडता एवं विनाश के प्रत्युत्तर में भारत वर्ष हमें

सहनशीलता, नम्रता, आत्मिक शान्ति एवं सम्पूर्ण प्राणिमात्र के लिए प्रेमपूर्ण एवं एकात्मकतावादी दृष्टि का पाठ पढ़ायेगा।

एरनोल्ड ट्वायनवी–मानव इतिहास की इस सबसे खतरनाक घड़ी में भारत वर्ष के सम्प्रट अशोक, रामकृष्ण परम हंस एवं गाँधी का मार्ग ही मुक्ति का मार्ग है। यहाँ ही हमें भावना के साथ दृष्टिकोण मिलता है कि मानव जाति एक विराट परिवार के रूप में विकसित हो सकती जिससे आने वाले विनाश से बचा जा सकता है।

यहूदी मेन्यूहिन–विश्वविख्यात वायलिन वादक–हिन्दू एक सामान्य पाश्चात्य की तुलना में सौ गुना सभ्य, सौ गुना व्यावहारिक, सौ गुना ईमानदार, सौ गुना धार्मिक तथा सौ गुना संतुलित दृष्टिकोण वाला होता है।

स्वामी विवेकानन्द–भारतवर्ष की चेतना हिन्दुत्व में निहित है तथा जब तक हिन्दू जाति अपने पूर्वजों से प्राप्त उत्तराधिकारों को नहीं भूलती है। तब तक इस धरती पर ऐसी कोई शक्ति नहीं जो उसे नष्ट कर सके।

महात्मा गाँधी जी– सत्य की खोज की अविराम यात्रा का नाम हिन्दुत्व है। यदि आज यह विकसित नहीं हो पा रहा है तो इसका कारण है कि हम सब थक चुके हैं। जैसे ही यह थकान दूर होगी, हिन्दुत्व का विश्व में एक विस्फोट होगा जिसकी अभी किसी को जानकारी नहीं है।

(क) भारत में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है–हिन्दुत्व, धर्म का पर्यायवाची है, जो कि भारत वर्ष में प्रचलित उन सभी आचार–विचारों का, जो कि व्यक्ति और समाज में पास्परिक सामाजिक समरसता, संतुलन तथा मोक्ष प्राप्ति में सहायक तत्वों को स्पष्ट करता है। यह एक जीवन दर्शन और जीवन पद्धति है जो मानव समाज में फैली समस्याओं को सुलझाने में सहायक है। अभी तक हिन्दुत्व को मजहब के समानार्थी मानकर उसे गलत समझा गया था, उसकी गलत व्याख्या की गयी, क्योंकि मजहब मात्र एक पूजा की पद्धति है, जबकि हिन्दुत्व एक दर्शन है जो मानव जीवन का समग्रता से विचार करता है।

समाजवाद और साम्यवाद भौतिकता पर आधारित राजनैतिक एवं आर्थिक दर्शन है। जबकि हिन्दुत्व एक दर्शन है जो मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त उसी मानसिक, बौद्धिक और भावात्मक आवश्कता की भी पूर्ति करता है। क्योंकि व्यक्ति मात्र सुविधाओं की प्राप्ति से प्रसन्न नहीं रह सकता। हिन्दुत्व एक जीवन पद्धति है जो व्यक्ति की सभी वैध आवश्यकताओं और अभिलाषाओं को संतुष्ट करती है। ताकि व्यक्ति मानवता के सिद्धान्तों के साथ प्रसन्न रह सके।

उच्चतम न्यायालय की दृष्टि में हिन्दू, 'हिन्दुत्व' ओर हिन्दुइज़्म'– "क्या हिन्दुत्व को सच्चे अर्थों में धर्म कहना सही है, इस प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय ने–"शास्त्री यज्ञपुरुष दास जी और अन्य विरुद्ध मूलदास भूरदास वैश्य और अन्य (1966 (3) एस. सी. 242) के प्रकरण का विचार किया। इस प्रकरण में प्रश्न उठा था कि क्या स्वामी नारायण सम्प्रदाय–हिन्दुत्व का भाग है अथव नहीं?

इस प्रकरण में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री गजेन्द्र गड़कर ने अपने निर्णय में लिखा–

"जब हम हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में सोचते हैं तो हमें हिन्दू धर्म को परिभाषित करने में कठिनाई अनुभव होती है। विश्व के अन्य मजहबों के विपरीत हिन्दू धर्म किसी एक दूत को नहीं मानता, किसी एक भगवान को पूजा नहीं करता, किसी एक मत का अनुयायी नहीं है, वह किसी एक दार्शनिक विचारधारा को नहीं मानता, यह किसी एक प्रकार की मजहबी पूजा पद्धति या रीति–रिवाज को नहीं मानता, वह किसी मजहब या सम्प्रदाय की पम्पराओं की सतुष्टि नहीं करता है। वृहद् रूप में हम इसे एक 'जीवन पद्धति के रूप में ही परिभाषित कर सकते हैं इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।"

रमेश यशवंत प्रभु, विरुद्ध प्रभाकर पाटेकर कुन्टे (ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1113) के प्रकरण में उच्चतम न्यायालय को विचार करना था कि विधान सभा के चुनावों के दौरान मतदाताओं से हिन्दुत्व के नाम पर वोट माँगना क्या मजहबी भ्रष्ट आचरण है?

उच्चतम न्यायालय ने इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देते हुए अपने निर्णय में कहा–

"हिन्दु, हिन्दुत्व, हिन्दुइज्म को संक्षिप्त अर्थों में परिभाषित कर किन्हीं मजहबी संकीर्ण सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता है। इसे भारतीय संस्कृति और परम्परा से अलग नहीं किया जा सकता। यह दर्शाता है कि हिन्दुत्व शब्द इस उस महाद्वीप के लोगों की जीवन पद्धति से संबन्धित है। हिन्दुत्व और हिन्दुइज्म को संकीर्णता से परिभाषित करना दुष्कर कार्य है। इसे कट्टरपंथी, मजहबी, संकीर्णता के समान नहीं कहा जा सकता। साधारणतया हिन्दुत्व को एक जीवन पद्धति और मानव मन की दिशा से ही समझा जा सकता है।

डॉ0 राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक "द हिन्दु व्यू ऑफ लाइफ" में हिन्दुत्व के स्वभाव का विवरण दिया है–

"अगर हम हिन्दुत्व के व्यावहारिक भाग को देखें तो हम पाते हैं कि यह एक जीवन पद्धति है न कि कोई विचारधारा। हिन्दुत्व, जहाँ वैचारिक अभिव्यक्ति को स्वतंत्रता देता है वहीं वह व्यावहारिक नियम को सख्ती से अपनाने को कहता है। नास्तिक या आस्तिक सभी हिन्दू हो सकते हैं, बशर्तें वे हिन्दू संस्कृति और जीवन पद्धति को अपनाते हों हिन्दुत्व धार्मिक एकरूपता पर जोर नहीं देता, वरन् आध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनाता है। अतः इस या उस दृष्टिकोण का अनुयायी कभी दुष्ट प्रवृत्ति का अनुगमन नहीं करेगा। वास्तव में व्यावहारिकता, सिद्धान्त के पूर्व की स्थिति है। हमारा धार्मिक और आध्यात्मिक चिन्तन चाहे जो कुछ हो पर इस बात पर सभी सहमत है कि हमें अपने हितकारियों के प्रति आभार और दुर्भाग्यहीनों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करना चाहिए। हिन्दुत्व सामाजिक जीवन पर जोर देता है और उन लोगों को साथी बनाता है जो नैतिक मूल्यों के बँधे होते हैं। हिन्दुत्व कोई सम्प्रदाय नहीं है, बल्कि उन लोगों का समुदाय है जो दुढ़ता से सत्य को पाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

'धर्म' पर उच्चतम न्यायालय का कथन–'धर्म' जिसे ऐतिहासिक कारणों से 'हिन्दू

धर्म' कहा जाता है वह जीवन के उन सभी नियमों को शामिल करता है जो कि सामाजिक स्थायित्व और सुख के लिए आवश्यक है। भारत के उच्चतम न्यायालय की ओर से विचार व्यक्त करते हुए न्यायमूर्ति जेत्र रामास्वामी ने उक्त बात कही। (ए. आई. सार. 1996 एस. सी 1765)।

'धर्म' या 'हिन्दू धर्म' सामाजिक सुरक्षा और मानवता के उत्थान के लिए किये गये कार्यों का समन्वय करता है। उन सभी प्रयासों का इसमें समावेश है जो कि उपरोक्त उद्‌देश्य की पूर्ति में तथा मानव मात्र की प्रगति में सहायक होते हैं। यही धर्म है, यही हिन्दू धर्म है और अन्ततः यही सर्वधर्म समभाव है। (पैरा–81)

इसके विपरीत भारत के एकीकरण हेतु धर्म वह है जो कि स्वयं ही अच्छी चेतना या किसी की प्रसन्नता से वांछित प्रयासों से प्रस्फुटित एवं सभी के कल्याण हेतु, भय, इच्छा राग से मुक्त, अच्छी भावनाओं एवं बन्धुत्व भाव, एकता एवं मित्रता को स्वीकृति प्रदान करता है। यही वह मूल 'रिलीजन' है जिसे संविधान सुरक्षा प्रदान करता है। (पैरा–82)

हिन्दुत्व के प्रधान पक्ष–हिन्दू जीवन पद्धति के अनेक विशिष्ट लक्षण हैं। इसके प्रमुख आयाम इस प्रकार हैं:–

(1)कृतज्ञता :– व्यक्तियों एवं अन्य जीवित प्राणियों के प्रति जो हमारे सहयोगी रहे हैं, कृतज्ञता का भाव रखना हिन्दू जीवन पद्धति है। ईश्वर के किसी रूप अथवा चुनी गई विधि से उपासना का आधार भी यही भावना है। पुनः देवताओं के समान बंधन का आध ाार भी यही कृतज्ञता की भावना है। पुनश्च, यही कृतज्ञता की भावना पेड़–पौधों एवं पशुओं की पूजा प्रथा, साथ ही दशहरे के आयुध पूजा के दिन, सभी उपकरणों अथवा विश्वकर्मा दिवस पर औजारों जिनसे हम जीवकोपार्जन करते है की उपासना का आधार है। इसी भावना के कारण ही गायों, बछड़ों, बैलों के वध को निषिद्ध किया गया है, तथा बैल, कृषि एवं परिवहन में हमारी सहायता करते हैं। हम गाय की पूजा, गौमाता के रूप में करते हैं।

(2)सेवा– दूसरों के प्रति सहृदय होना विशेषकर उनके प्रति जिनको इसकी

तत्काल आवश्यकता है, उन्हें भोजन, धन, दवा प्रदान करना अथवा अन्य किसी प्रकार से सेवा करना ही ईश्वर की सेवा के बराबर है। कहा गया है—नर सेवा ही नारायण सेवा है।

(3)अहिंसा—मनुष्यों एवं अन्य जीवित प्राणियों को शारीरिक अथवा मानसिक चोट नहीं पहुँचाना।

(4) माता—पिता एवं शिक्षकों के प्रति आदर— प्रत्येक व्यक्ति को अपने माता—पिता एवं शिक्षक का आदर भक्तिभाव से कर उनकी सेवा ईश्वर के समान ही करनी चाहिए। विशेषतः उसे अपने माता—पिता के अशक्त एवं वृद्ध होने पर देखभाल करनी चाहिए। उन्हें बाहर वृद्धाश्रम (ओल्ड एण्ड रेस्क्यू हाउसेज) में नहीं ढकेलना चाहिए। यह हिन्दू जीवन—पद्धतिका एक अति आवश्यक मूल्य है।

(5) स्त्रीत्व के प्रति आदर— स्त्रीत्व को अत्यधिक आदर प्रदान करना, हिन्दू जीवन पद्धति के महत्वपूर्ण मूल्यों मे से एक है। स्त्री को इसमें कामसुख की वस्तु न मानकर, दैवीय सांस्कृतिक धरोहर के रूप में स्वीकार किया जाता है। स्वयं की पत्नी को छोड़कर वह भी केवल उसकी पत्नी की भूमिका में प्रत्येक स्त्री के साथ अपनी माता के समान व्यवहार करना, हिन्दू जीवन पद्धति का अभिन्न अंग है। प्रत्येक स्त्री जिसमें बालिकाएँ भी सम्मिलित हैं, मातृत्व के दैवीस्वरूप में स्वीकार की जाती हैं इस मूल्य का विकास एवं संरक्षण ही स्त्रियों पर घात करने की पुरुषों की मूल प्रवृत्ति के विरुद्ध सर्वाधि क प्रतिरोधी उपाय है।

(6) करुणा—मनुष्य सहित सभी जीवित प्राणियों के प्रति प्रेम एवं दया भाव रखना क्योंकि उनमें से प्रत्येक हमारी तरह ही आत्मा है और जिसमें परमात्मा (ईश्वर) से विकसित होने वाला समान प्रकाश पुंज निहित है यही हिन्दू जीवन पद्धति का एक अन्य आयाम है। हिन्दू जीवन पद्धति सरल जीवन तथा पानी, खनिज, वृक्ष एवं वनस्पतियों जैसे प्राकृतिक संसाधनों के न्यूनतम उपयोग पर बल देती है, क्योंकि इनका लाभ सदैव ही सभी जीवित प्राणियों के लिए होना चाहिए।

(7) सच्चा जीवन– अवैधानिक धन का अर्जन न करना, अनैतिक एवं अवैधानिक इच्छाओं की पूर्ति में संलग्न न होना तथा एक सच्चा जीवन बिताना हिन्दू जीवन पद्धति का ही एक अन्य पक्ष है। यहाँ सच्चाई, सिद्धान्त है केवल नीति मात्र नहीं।

(8) संयम या इन्द्रिय निग्रह–एक मनुष्य को 'आत्म संयम' के गुण का विकास करना चाहिए क्योंकि केवल यही उसके मन को नियंत्रित कर सकता है। मन ही मनुष्यों के सभी अच्छे या बुरे कार्यों का मूल स्रोत है। यह गुण व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक एवं वित्तीय संसाधनों को इस रूप में नियंत्रित करने हेतु ही है ताकि इनका उपयोग सदैव अच्छे कार्यों के लिए हो, अत्यन्त आवश्यक है।

(9) त्रिकाण शुद्धि–व्यक्ति के विचार, वाणी तथा कर्म के बीच सामंजस्य होना चाहिए। इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति को वही बोलना चाहिए, जो वह अपने मन में सोचता है और तदनुरूप ही कार्य करना चाहिए। यही शरीर, मन एवं आत्मा की सच्चाई है।

(10) पारिवारिक जीवन–एक पुरुष एवं स्त्री के मध्य विवाह के माध्यम से निर्मित पति–पत्नी के सम्बन्धों की पवित्रता, जिससे परिवार अस्तित्व में आता है तथा इनके बीच संम्बन्धों का अटूट होना ही, हिन्दू–जीवन–पद्धति में प्रतिपादकों द्वारा प्रदत्त सुदृढ़ आधार है। उस पर ही सामाजिक जीवन संरचित है। अतः पारिवारिक जीवन को सर्वोच्च महत्व दिया गया है।

यह कहा जाता है कि "जो अच्छा पारिवारिक जीवन बिता रहे हैं। उन पर दैवी कृपा है।" इसी काल में, व्यक्ति का अर्थोपार्जन एवं पारिवारिकता, सभी अर्जन न करने वाले पारिवारिक सदस्यों को सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना, साथ ही समाज की भी किसी व्यवसाय अथवा व्यापार अथवा कार्य द्वारा सेवा करना तथा बच्चे पैदा करना, उन्हें बड़ा करना एवं अच्छे नागरिक के रूप में ढालना–जैसे उत्तरदायित्वों का वहन निर्विघ्न करना पड़ता है। परिवार के अन्य उत्तरदायित्व–अतिथि सत्कार, जरूरतमंदों की

सहायता तथा सर्वजन हिताय कर्म भी रहे है।

संस्कृति तथा राष्ट्रीयता पर सर्वोच्च न्यायालय एवं गाँधी जी–उपर्युक्त तथा हिन्दू –जीवन–पद्धति के अन्य मूल्यों के प्रचलन से ही, हिन्दू संस्कृति का अभ्युदय हुआ है जिसने इस देश के लोगों को एक राष्ट्र के बन्धन में जोड़ रखा है। इस पक्ष को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी प्रदीप जैन प्रकरण में (ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1420) प्रभावशाली ढंग से निम्न शब्दों में रखा गया है–

'यह इतिहास का एक रोचक तथ्य है कि भारत को सहस्राब्दियों में उद्विकसित एक समान संस्कृति के कारण राष्ट्र के रूप में गढ़ा गया है न किसी समान भाषा अथवा इसके क्षेत्रों के आधार पर अथवा निरन्तर एक क्षेत्रीय राजनीतिक शासनाधिकार के कारण यह अस्तित्व में आया है। यह सांस्कृतिक एकता–किसी अन्य बन्धन की अपेक्षा अधिक आधारभूत व सतत् है जो कि देश के लोगों को जोड़े रख सकती है–जिसने इस देश को, एक राष्ट्र के अटूट बन्धन में बाँधा है।''

उपर्युक्त हिन्दू संस्कृति ही जीवन पद्धति का एक सारभूत प्रत्यय है। महात्मा गाँधी ने हिन्दू जीवन पद्धति को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वीकार किया है जिसकी परिणति हमारी संस्कृति में हुई है। उन्होंने इस प्रकार से कहा है–मेरे अभिमत में किसी भी संस्कृति का खजाना इतना समृद्ध नहीं है जितना कि हमारा है। हमने इसका मूल्य संज्ञापित नहीं किया है। यदि हम अपनी संस्कृति का अनुपालन नहीं करते हैं तो एक राष्ट्र के रूप में, हम आत्महत्या कर रहे होंगे।' (साबरमती आश्रम की दीवारों पर अंकित)।

''जैसे पश्चिम में उन्होंने लुभावनी भौतिक चीजें खोजी हैं, उसी प्रकार हिन्दुत्व ने, इससे और भी अधिक महत्वपूर्ण चीजें 'धर्म', 'अध्यात्म' तथा 'आत्मा' में खोजी है। लेकिन इन मान्य एवं सुन्दर चीजों पर हमारी दृष्टि नहीं जाती है। हम पश्चिमी विज्ञान की भौतिक प्रगति की चकाचौध से प्रभावित हैं, मैं इस प्रगति से मोहित नहीं हूँ।''

वस्तुतः हिन्दुत्व में, ऐसा कुछ है जिसने इसे आज तक जीवित रखा है। इसने

बेबीलोन, पर्सियन तथा मिश्र की सभ्यताओं का विनाश देखा है। अपने चारों तरफ देखो, रोम कहाँ है और कहाँ है यूनान? आज तुम कही भी गिब्बन का इटली या प्राचीन रोम नहीं देख सकते, इटली जाने पर क्या तुम्हें प्राचीन रोम दिखाई देगा? ग्रीस (यूनान) जाओ, वहाँ क्या विश्व प्रसिद्ध सबसे बड़ी सभ्यता के दर्शन होते हैं? दूसरी ओर भारत आते हुए, किसी को अत्यन्त प्राचीन आलेखों का अध्ययन करने दो और तुम्हारे चारों तरफ देखने दो। तब उसे यह कहने में कठिनाई नहीं होगी कि हाँ, मैं यहाँ प्राचीन भारत को, आज भी जीवित देख रहा हूँ। यह सच है कि यहाँ–वहाँ गोबर के ढेर लगे हैं। लेकिन उनक नीचे भरपूर खजाना दबा हुआ है और यह क्यों बचा रहा है इसका कारण है कि हिन्दुत्व ने अपने समक्ष जो लक्ष्य निर्धारित किये थे, वे भौतिक नहीं आध्यात्मिक आधारों पर विकसित हुए थे। हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, हमारा स्वराज्य, हमारी आवश्यकताओं के प्रतिबन्धन व आत्मनिषेध पर आधारित है न कि आवश्यकताओं की अभिवृद्धि व आत्म अनुग्रह पर **(माई पिक्चर आफ फ्री इंडिया, पेज 10)।**

हमारी सभ्यता का मूल तत्व है कि हम अपने सार्वजनिक और निजी मामलों में, नैतिकता को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते है''..............''मेरा स्वराज, हमारी सभ्यता के उद्‌भव को सुरक्षित रखना है। यह अनेक बातें लिखना चाहता है लेकिन वे सभी, भारतीय स्लेट पर ही लिखी जानी चाहिए।'' (पूर्वोक्त, 64–65)

उपर्युक्त पक्ष हिन्दुत्व के प्रधान पक्ष है।

आज कुछ लोग अज्ञान में धर्म को ही बुराईयों की जड़ मानते हैं। इसी युग के सन्त तुलसीदास जी ने धर्म की व्याख्या अपने मानस ग्रंथ में की है जो हिन्दुत्व का आधार है–

परहित सरिस धर्म नहि भाई।

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

सार–संक्षेप–वर्तमान विषय का सार संक्षेप, निम्नलिखित प्रार्थना के साथ करना उपयुक्त होगा जो कि हिन्दू मत तथा हिन्दू जीवन पद्धति के मूल तत्वों को प्रदर्शित करती

है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।

(सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी को शुभ दर्शन हों और कोई दुख से ग्रसित न हो।)

लोका समस्ता सुखिनः भवन्तु (सभी लोग सुखी हों)।

डॉ0 हेडगेवार के स्वर में स्वर मिलाते हुए डॉ0 राम स्वरूप खरे की शब्दावली में कहा जा सकता है–"इस प्रकार भारत में रहने वाला वह प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है जो यहाँ की संस्कृति के प्रति पूर्णरूपेण आस्थावान है और जो अपनी इस पवित्र भूमि को माता के रूप में देखता है तथा जो यहाँ के महापुरुषों के कृतित्व के समक्ष श्रद्धावनत है जिसका उदात्त चरित्र है और जो सबका (प्राणी मात्र का) कल्याण चाहता है तथा जो प्रत्येक नारी में अपनी माता की दिव्य छटा का अनुभव करते हुये उसे प्रणम्य मानता है।"

"सम्पत्तयः परायत्तः प्रत्यासन्ना विपत्तयः।

संघ शक्ति–विहीनानां जीवनं मरणास्पदम।"

अर्थात् संगठन शक्ति से विहीन राष्ट्र की सम्पत्ति दूसरों के अधिकार में चली जाती है, उस राष्ट्र पर विपत्तियाँ टूट पड़ती हैं तथा उस राष्ट्र के लोगों का जीवन मृत्यु के समान हो जाता है वे जीते हुए भी मरे के समान हो जाते है।

"भारतवासियों को दृढ विश्वास होना चाहिए कि महान भारत का उत्थान अवश्यंभावी है और इसमें होने वाली हर घटना, कठिनाइयाँ, प्रतिकूलताएँ साधन ही हैं और लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक होने वाली हैं। सूर्योदय आ रहा है और प्रकाश अवतरित होने के बाद अन्धकार सदा के लिए बिदा हो जाएगा। भारत के भाग्य का सूर्योदय होकर रहेगा जो अपने आध्यात्मिक प्रकाश से भारत को भर देगा, साथ ही सारे विश्व को उस प्रकाश से सराबोर कर देगा।" महर्षि अरविन्द घोष

"समाज की उस सर्वशक्तिमान सत्ता का निमार्ण करना, जो सदा–सर्वदा के लिए बाह्य कारणों से उत्पन्न संकटों के बीच समाज को सुरक्षित रखे और राष्ट्रजीवन के समस्त क्षेत्रों का अनुप्राणित एवं उद्भासित करे, हमारी कल्पना का यही महान लक्ष्य हमारे सामने है।" मा. स. गोलबलकर (श्री गुरु जी)

स्वामी विवेका नन्द के अनुसार–"तभी और केवल तब ही तुम हिन्दू कहलाने के अधिकारी हो, जब इस नाम के सुनते ही तुम्हारी रगों में शक्ति की विद्युत तरंग दौड़ जाये"

"तभी और केवल तब ही तुम हिन्दू कहलनाने के अधिकारी हो, जब इस नाम को धारण करने वाला प्रत्येक व्यक्ति–वह चाहे, जिस देश का हो, वह चाहे तुम्हारी भाषा बोलता हो अथवा कोई अन्य, प्रथम मिलन में ही तुम्हारा सगे से सगा तथा प्रिय बन जाये।"

"मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी की समस्त पीड़ित और शरणागत जातियों तथा भिन्न धर्मों के बहिष्कृत मतालम्बियों को आश्रय दिया है।"

(ख) हिन्दू शब्द की व्युत्पत्ति–हिन्दू शब्द ईश्वर की भाँति विराट् एवं व्यापक है। इसकी असीम सत्ता को संकुचित परिभाषा की सीमा में नही बाँधा जा सकता। विष्णु की व्यापकता और जिष्णु की विजगीषु भावना इसमें समवेत रूप से सन्निहित है।

डॉक्टर वेबस्टर के अंग्रेजी भाषा के तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय शब्द कोश के विस्तृत संकलन में 'हिन्दुत्व' का अर्थ इस प्रकार दिया गया है–

"यह सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक विश्वास और दृष्टिकोण का जटिल मिश्रण है। यह भारतीय उपमहाद्वीप में विकसित हुआ। यह मानवता पर विश्वास करता है। यह एक विचार है जो कि हर प्रकार के विश्वासों पर विश्वास करता है तथा धर्म, कर्म, अंहिसा, संस्कार व मोक्ष को मानता है और उनका पालन करता है। यह एक जीवन–पद्धति है, जो हिन्दू की विचारधारा है।"

"आज हम जिस संस्कृति को हिन्दू संस्कृति के रूप में जानते हैं और जिसे भारतीय सनातन धर्म या शाश्वत नियम कहते हैं, वह उस मजहब से विश्वास करे या किसी ईश्वर में विश्वास नहीं करे फिर भी 'हिन्दू' है यह एक जीवन–पद्धति है, यह मस्तिष्क की एक दशा है।"[1]

स्वामी विवेकानन्द के स्वर में स्वर मिलाते हुए डॉक्टर हेडगेवार ने कहा कि यह भारत वर्ष सही अर्थों में 'हिन्दुस्थान' है। इसमें रहने वाला प्रत्येक वह व्यक्ति हिन्दू है जो अपने हिन्दू पूर्वजों की थाथी पर सम्पूर्ण आस्था और श्रद्धा रखते हुये इस राष्ट्र को 'भारत माता' के रूप में अपने हृदय में धारण करता है। यहाँ के वन, पर्वत, सरितायें, तीर्थ स्थान, धर्म ग्रन्थ का और सर्वजन सुखाय की भावना से ओत प्रोत होकर उनमें अपार श्रद्धा–विश्वास रखता है। स्वामी जी के अनुसार–'–तभी ओर केवल तभी तुम हिन्दू कहलाने के अधिकारी हो जब इस नाम को सुनते ही रगो में शक्ति की विद्युत तरंग दौड जाये।"[2]

"तभी और केवल तभी तुम हिन्दू कहलाने के अधिकारी हो जब इस नाम को धारण करने वाला प्रत्येक व्यक्ति वह चाहे जिस देश का हो, चाहे तुम्हारी भाषा बोलता हो अथवा कोई अन्य, प्रथम मिलन में ही तुम्हारा सगे से सगा तथा प्रिय से प्रिय बन जाये।"[3]

'मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है। जिसने इस पृथ्वी की समस्त पीड़ित ओर शरणागत जातियों तथा भिन्न धर्मों के बहिष्कृत मतावलम्बियों को आश्रय दिया है।"[4]

(ग) भारत हिन्दू राष्ट्र है–इतिहास प्रमाण है कि भारत एक सनातन एवं पुरातन हिन्दू राष्ट्र है तथा इसका मूल पुत्रवत सभी हिन्दू हैं जिसके सतत प्रयास, परिश्रम, शौर्य, त्याग, बलिदान तथा ज्ञान से ही भारत माता जगदगुरु कहलाई। कालान्तर में अनेकानेक कारणों से समाज निर्बल हुआ, राष्ट्र भाव का अभाव हुआ। परिणाम स्वरूप विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमणों एवं अत्याचारों से पराभूत होकर यह समाज लगभग बारह सौ वर्षों तक स्वतंत्रता के लिए संघर्षशील रहा। भारत को एक बार पुनः उसकी दुर्बलताओं से

मुक्त कराकर 'परम वैभवम् नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्' के लक्ष्य प्राप्ति हेतु परम पूजनीय डॉक्टर हेडगेवार जी ने छाती ठोककर कहा—"भारत हिन्दू राष्ट्र था, है और आगे भी रहेगा।" जेहादी, आतंकवादी, संघर्ष एवं रक्तपात से त्रस्त वर्तमान विश्व में सबकी आशा का केन्द्र विन्दु भारत तथा हिन्दू जीवन दर्शन है, जिसमें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः? तथा बसुधैव कुटुम्बकम्" के सन्देश को जन—जन तक पहुँचाने के निमित्त राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ सतत प्रयत्नशील हैं इसलिये हमें हिन्दू होने का गर्व है। क्योंकि "गत दस हजार वर्षों के इतिहास में हिन्दुओं ने राजनैतिक विजय पर किसी भी देशको 'उपनिवेश' नहीं बनाया।"

"हिन्दुओं ने 'अंक ज्ञान' का आविष्कार किया। पाँचवी सदी में आर्य भटट् ने "शून्य" का प्रयोग किया। इससे भी हजारों वर्ष पूर्व वैदिक काल में शून्य का ज्ञान था। हिन्दुओं ने विश्व को 'दशमलव पद्धति" का ज्ञान कराया।

"ईसा से 700 सौ साल पूर्व तक्षशिला नामक विश्व के प्रथम विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। पूरे विश्व से दस हजार पाँच सौ (10,500) छात्र साठ से भी अधिक विषयों का अध्ययन यहाँ करते थे। ईसा से चार सदी पूर्व शिक्षा क्षेत्र में 'नालन्दा विश्वविद्यालय' एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

"संस्कृत भाषा सभी योरोपीय भाषाओं की जननी है। कम्प्यूटर के लिये संस्कृत योग्यतम भाषा है।—(फोर्ब्स पत्रिका, 1987)

आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान मानव को सबसे पहले भारत वर्ष ने दिया। आज के ढाई हजार वर्ष पूर्व "महर्षि चरक" ने आयुर्वेद में औषधियों का संकलन किया। आज हमारी सभ्यता में दिन प्रतिदिन आयुर्वेद का महत्व बढ़ता जा रहा है।

"आज भारत वर्ष का चित्रण एक निर्धन एवं अविकसित देश के रूप में किया जाता है। किन्तु सत्रहवीं शताब्दी मे वर्तानियाँ सरकार के यहाँ आने से पूर्व यह विश्व का सम्रद्धतम देश था।

नाविक कला (नेविगेशन) का जन्म आज से छैः हजार वर्ष पूर्व सिन्धु नदी में हुआ

था। संस्कृत के ''नवगतिः'' शब्द से ही 'नेविगेशन' शब्द की उत्पत्ति हुई है। संस्कृत के ''नौ'' धातु से 'नेवी' की उत्पत्ति हुई है।

''भास्कराचार्य ने पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा की काल गणना आधुनिक खगोल शास्त्री 'स्मार्ट' से एक हजार वर्ष पूर्व की थी। पृथ्वी 365, 2586756484 दिनों में सूर्य की परिक्रमा करती है। (5 वीं सदी)

पाई (π) का मान बोधायन से सबसे पहले निकाला था और ''पाइथा गोरस के सिद्धान्त'' की अवधारणा भी उन्होंने ही छटवीं सदी में योरोपियन से बहुत पूर्व विकसित की थी।

''बीज गणित (एलजबरा) तथा त्रिकोणमिति (ट्रिगनोमेट्री) कलन गणित (कैलकुलस) का ज्ञान सबसे पहले भारतवर्ष ने विश्व को दिया।

''संघातीय समीकरण (क्वैड्रेटिक इक्वेशन) सबसे पहले ग्याहरवीं सदी में श्री धराचार्य ने दिया। ग्रीक व रोमन ने अधिकतम 106 संख्या का उपयोग किया, जबकि हिन्दुओ ने ईसा से पाँच हजार वर्ष पूर्व वैदिक काल में 10^{13} संख्या का प्रयोग किया। आज भी अधिकतम 10^{12} संख्या का ही प्रयोग किया जा रहा है।

''अमेरिका के भूगर्भ संस्थान के अनुसार 1816 तक विश्व में हीरों का स्रोत मात्र भारत वर्ष ही था।

''अमेरिका आधारित इलैक्ट्रोनिक्स एवं इलैक्ट्रिकल संस्थान ने यह सिद्ध किया है कि ''वायर लैस संचार'' विधा का आविष्कार सर जगदीश चन्द्र बोस ने किया था, न कि मारकोनी ने।

''सिंचाई के लिये सर्वप्रथम सौराष्ट्र (गुजरात) में ही नहर व तालाब का निर्माण किया गया।

''शक राजा रुद्रदमन के अनुसार एक सुन्दर झील का निर्माण 'रैवतक'' पहाड़ी पर चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में किया गया।

''शतरंज (चैस) का मूल स्थान भारत है।

''सर्जरी विज्ञान'' के जनक ''सुश्रुत'' थे। आज से 2600 वर्ष पूर्व उन्होंने तथा उनके समय के स्वास्थ्य वैज्ञानिकों ने जटिल सर्जरी जैसे–मोतियाबिन्द, मानस निर्मित अंग का प्रत्यारोपण, अस्थि भंग जोड़, यूरीनरी स्टोन हटाना और प्लाटिक सर्जरी आदि का प्रयोग किया।

''आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व विश्व की बहुत सारी सभ्यतायें बंजारों की तरह घुमक्कड़ थीं, तब सिन्धु घाटी में ''हड़प्पा सभ्यता'' स्थापित थी।

''सैनिक क्षमता युक्त' रॉकेट का प्रयोग विश्व में सबसे पहले रंगापट्टम (कर्नाटक) के युद्ध में अंग्रेज सरकार के विरुद्ध किया गया था। पूर्व में भारतवर्ष तकनीकी दृष्टि से समृद्ध था।''–(भारतरत्न सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक ए. पी. जे. अब्दुल कलाम (सम्प्रति भारत के गणमान्य महामहिम राष्ट्रपति)

इस सन्दर्भ में कुछ विदेशी और देशी विद्वानों के उद्धरण अत्यावश्यक से प्रतीत होते हैं। आइए, इन पर विचार करें और फिर पूर्वाग्रह से मुक्त होकर नवीन चिन्तन का सार स्वीकार करना सीखें। यथा– ''हम भारतीयों के ऋणी हैं, जिन्होंने हमें गिनना सिखाया जिसके बिना कोई उपयोगी वैज्ञानिक अविष्कार सम्भव नहीं था।'' अलबर्ट आइन्सटाइन

''भारत वर्ष विविध सम्प्रदायों की भूमि, मानव जाति का पालना है। ''मानव–शब्द'' का जन्म स्थान, पौराणिक घटनाओं के दादी परम्पराओं की परदादी है, सभी मूल्यवान वस्तुयें इसी भूमि में सुरक्षित है।''–मार्कट्वेन

''मनुष्य के सभी सपनों को साकार करने का घर दुनियाँ में भारत वर्ष है।''–फ्रांसीसी विद्वान रोमाँरोला

''भारत ने 2000 वर्षों तक बिना सेना भेजे हुये सांस्कृतिक दृष्टि से चीन पर शासन किया है।''–यू. एस. ए. में चीन के पूर्व राजदूत हू–शिह

''अगर कोई मुझसे पूछेगा कि कहाँ मानव मस्तिष्क ने सबसे मूल्यवान चीज

विकसित की है, कहाँ सबसे जटिल जीवन की समस्या का समाधान खोजा गया है, जिसकी प्लेटो ओर काण्ट के पढ़ने बालों ने भी प्रशंसा की है, तो मैं उस स्थान को भारतवर्ष ही कहूँगा।'' मैक्समूलर

''हठपूर्ण विजय, उद्दण्ड एवं विनाश के प्रत्युत्तर में भारत वर्ष हमें सहनशीलता, नम्रता, आत्मिक शान्ति एवं सम्पूर्ण प्र.णिमात्र के लिये प्रेमपूर्ण एवं एकात्मकतावादी दृष्टि का पाठ पढ़ायेगा।''—विलडयूरेण्ट

''मानव इतिहास की इस सबसे खतरनाक घड़ी में भारत वर्ष के सम्राट अशोक, रामकृष्ण परमहंस एवं गांधी का मार्ग ही मुक्ति का मार्ग है। यहाँ ही हमें भावना के साथ यह दृष्टिकोण मिलता है कि मानव जाति एक विराट् परिवार के रूप में विकसित हो सकती है, जिससे आने वाले विनाश से बचा जा सकता है।''—एरनोल्ड ट्वायनवी

''सम्पूर्ण विश्व में कोई अध्ययन इतना उत्साहवर्धक और लाभकारी नहीं है जितना उपनिषदों का पढ़ना। यह मेरे जीवन का सन्तोष है एवं मृत्यु का भी।''—आर्थर शोपेन हावर

''अंग्रेज शासन एवं संसाधनों के समाप्त हो जाने के बहुत दिनों बाद भी गीता का उपदेश बचा रहेगा।''—गर्वनर वारेन हेस्टिंग्स

''वेदों का सार मैंने पढ़ा है वह मेरे लिये अत्युच्च और अति शुद्ध ज्योतिर्मय पिण्ड के प्रकाश जैसा है जो उन्नतमार्ग को बिना किसी जटिलता के सरल और सार्वभौम तरीके से समझाता हैं। वह मेरे लिये तारों भरी रात्रि में सुदूर आकाश से आने पर पूर्ण चन्द्रमा के प्रकाश जैसा है।'' हेनरी डेविड योरो

''मौलिक एकात्मता की अवधारणा पर चिन्तन सभी देशों में होता है। प्रार्थना से प्राप्त तन्मयता और भक्ति से प्राप्त परमानन्द सबसे तादात्म्य की अनुभूति देता है। वेद, गीता, विष्णु पुराण जैसे हिन्दू धर्म ग्रन्थों में इसी भव की सर्वोच्च अभिव्यक्ति प्रकट होती है।''—राल्फ वाल्डो इमरसन

''इसी प्रकार श्री महाभारत पुराण का दिव्यांश श्री मद्भगवत् गीता पर भी

अनेकानेक विद्वानों ने अपने संक्षिप्त विचार व्यक्त किये हैं, जो निःसन्देह प्रेरणा परक एवं अत्यधिक विचारणीय हैं। यथा–

"मै भगवद्‌गीता का अत्यन्त ऋणी हूँ। यह पहला ग्रन्थ है जिसे पढ़कर मुझे लगा कि कोई विराट् शक्ति से हमारा सम्बाद हो रहा है। इसमें क्षुद्रता और अनुपयुक्तता से परे, उच्चतम प्रज्ञा की स्पष्ट, शीतल, तर्क शुद्ध ध्वनि है जिसकी हुंकार बीते युग एवं माहौल के होते हुए भी वर्तमान सहस्याओं का निदान एवं उपाय बताने में पूरी तरह सक्षम है।"–इमरसन

"पुरातन दर्शन शास्त्रों में गीता एक मात्र सबसे स्पष्ट तथा शाश्वत दर्शन की समीक्षा है। इसलिये इसका जीवन मूल्य केवल भारतीयों के लिये न होकर सम्पूर्ण मानव जाति के लिये है।"–आल्डसस हक्सले

"निश्चित रूप से गीता अति सुन्दर और कदाचित किसी भी ज्ञात भाषा का सच्चा दार्शनिक गीत है और कदाचित यह विश्व की गम्भीर एवं उदार चरित वस्तु सी दिखाई देती है।"–विल्हम वॉनहल वोल्ट

"वेदान्त और सांख्य में मन और विचार प्रणाली जो क्वांटम फील्ड (अर्थात् परमाणु और आणविक स्तर पर कणों की क्रिया और वितरण) जैसे हैं, के लिये कुंजी है।" प्रो0 ब्रायन डेविड जोसफरान, (फ्रांस के सबसे कम आयु के नोबुल पुरस्कार विजेता)

"हिन्दू एक सामान्य पाश्चात्य की तुलना में सौ गुना सभ्य, सौ गुना व्यावहारिक, सौ गुना ईमानदार, सौ गुना धार्मिक तथा सौ गुना संतुलित दृष्टि कोण वाला होता है।" विश्व विख्यात वायलिन वादक, यहूर्दा मेन्यूहिन

"इसी प्रकार अर्वाचीन कहा मनीषी, दार्शनिक, समाज सुधारक एवं सभी को एक सम्यक प्रेरणा प्रदान करने वाले महानुभावों के मतानुसार–"हिन्दुत्व" की अवधारणा को तनिक जानते चलें–

"सत्य की खोज की अविराम यात्रा का नाम हिन्दुत्व है। यदि आज यह विकसित

नहीं हो पा रहा है तो इसका कारण है कि हम सब थक चुके हैं। जैसे ही यह थकान दूर होगी, हिन्दुत्व का एक विस्फोट होगा जिसकी अभी किसी को जानकारी नहीं हे।"—महात्मा गांधी

"भारत वर्ष की चेतना हिन्दुत्व में निहित है तथा जब तक हिन्दू जाति अपने पूर्वजों से प्राप्त उत्तराधिकारों को नहीं भूलती है तब तक इस धरती पर ऐसी कोई शक्ति नहीं जो उसे नष्ट कर सके।"—स्वामी विवेकानन्द

"विश्व के महान धर्मों के 40 वर्ष से अधिक समय तक अध्ययन करने पर यह ज्ञात हुआ कि महान हिन्दू धर्म की तुलना में कोई भी धर्म न इतना सम्पूर्ण है, न इतना वैज्ञानिक है, न दार्शनिक औ न इतना आध्यात्मिक है। यह कहना गलत न होगा कि बिना हिन्दुत्व के भारत का कोई भविष्य नहीं है। भारतवर्ष की जड़ें हिन्दुत्व की आत्मा से प्रस्फुटित हुई हैं अतः अगर हिन्दुत्व का संरक्षण भारतीयों ने न किया तो और कौन इसकी रक्षा करेगा?"

—महान विदुषी एनीवेसेण्ट

(घ) भारत हम सबकी सबकी माता है और हम सब उसकी सन्तान—"यह न केवल मेरी धारणा है अपितु विश्व की अनूठी थाथी को धारण करने वाला वेद पुकार—पुकार करके कह रहा है—

माताभूमि—पुत्रोऽहं पृथिव्याः" इसीलिये माता को ईश्वर के समान सर्वोच्च पद दिया जाता रहा है क्योंकि वह व्यक्ति को जन्म देती है, इस अर्थ में वह 'जननी' है। उसका पालन—पोषण करती है, अपने बच्चों के कल्याण व भलाई के लिये असाधारण त्याग व कष्ट सहन करती है। व्यक्ति के लिये अपनी माता से बढ़कर दूसरा कोई प्यारा नहीं है। "पर दारेषु मातृवत" के अनुसार सभी स्त्रियों को माता के समकक्ष ही स्थान दिया गया है।

माता के प्रति कृतज्ञता की भावना का विस्तार पृथ्वी तक समाहित है जो कि हमें वह सब कुछ प्रदान करती है, जिसकी हमें आवश्यकता हैं, अतः उसकी पूजा "भू—माता"

के रूप में की जाती है। इसी प्रकार की भावना मातृभूमि (मरदलैण्ड) शब्द से प्रस्फुटित होती है। इस कारण हिन्दु जीवन–पद्धति में किसी का अपना देश केवल धन या सम्पत्ति का द्योतक नहीं होता वरन् इसे माता के स्थान पर रक्खा गया है, इसलिये हम भारत को 'भारत माता' मानते हैं। केवल एक जयघोष 'भारत माता की जय' या 'वन्दे मातरम्' इस भूमि के सभी जनों को उनकी भाषा, धर्म, जाति क्षेत्र इत्यादि के विभेद के होते हुए भी इसी कारण प्रेरित करता है और एकता सूत्र में जोड़ता है।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के द्वितीय सरसंघ चालक माधव राव सदाशिव राव गोलवलकर उपाख्य श्री गुरु जी ने हमारी मातृभूमि के प्रति हमारे स्नेह की व्याख्या करते हुए इस प्रकार कहा है–

"किसी की माता कितनी भी आकर्षणविहीन, अशिक्षित अथवा अन्य रूप में अशक्त हो, वह पृथ्वी पर सर्वाधिक प्यारी है। भारत माता के प्रति यही हमारी मान्यता है।"

"प्रत्येक हिन्दू मातृत्व को अत्यन्त महत्त्व देता है और उसमें स्वमाता (अपनी माता) के प्रति गहन आदर होता है। स्त्री माता (माता के रूप मे स्त्री) भू–माता (पृथ्वी माता) तथा भारत माता इसी कारण से एक हिन्दू जो भी देश उसकी मातृभूमि हो उस देश के प्रति निष्ठावान होता है। यह हिन्दू जीवन–पद्धति का एक विशेष गुण अथवा लक्षण है।

"इससे भी अधिक गाय जो हमें दूध देती है उसे भी माता के स्थान पर स्थापित किया गया है ओर 'गोमाता' कहा जाता है। हिन्दुओं के द्वारा खाद्य सामग्री के रूप में 'गोमाँस' के निषेध का यही आधार है।

"उपर्युकत सभी को ध्यान में रखते हुए, अर्नाल्ड टायनबी ने इस प्रकार कहा है–

"एक अध्याय, जिसका प्रारम्भ पाश्चात्य था, उसका भारतीय अन्त होना आवश्यक है, यदि यह मानव प्रजाति के आत्मविनाश का अन्त नहीं है......मानव इतिहास के इस सर्वोच्च विनाशकारी क्षण में, मानवता के लिए, भारतीय शैली ही एक मात्र मोक्ष का मार्ग है।"

(ङ) भारत माता की जय— यह केवल नारा नहीं है अपितु यह एक श्रेष्ठ जय घोष है। इसी को स्वतंत्रता के यज्ञ में सर्वश्रेष्ठ आहुति प्रदान करने वाले, एवं आनन्दमठ के प्रणेता महान साहित्यकार वंकिमचन्द्र चटर्जी ने 'वन्दे मातरम्' कहकर अपना विनम्र प्रणाम प्रस्तुत किया था। यह दो शब्द कोरे शब्द नहीं हैं। इनमें सर्वस्व बलिदान करने की अद्‌भुद प्रेरणा देने की क्षमता विद्यमान है। इस भूमि के सभी जनों को उनकी भाषा, धर्म, जाति क्षेत्र इत्यादि के विभेद के होते हुये भी इसी कारण प्रेरित करता है और एकता के सूत्र में जोड़ता है। वस्तुतः यह एक "दिव्य मंत्र" है। यह तो एक प्रत्यक्ष कल्पतरु है जिसकी सिद्धि प्राप्त कर लेने पर मनोवांछित फल प्राप्त किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1–गर्व से कहो हम हिन्दू हैं, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ द्वारा प्रकाशित 'बुकलैट' से उदघृत।

2–गर्व से कहो हम हिन्दू हैं, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ द्वारा प्रकाशित 'बुकलैट' से उदघृत।

3–गर्व से कहो हम हिन्दू हैं, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ द्वारा प्रकाशित 'बुकलैट' से उदघृत।

4–गर्व से कहो हम हिन्दू हैं, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ द्वारा प्रकाशित 'बुकलैट' से उदघृत।

एकदश अध्याय

उपसंहार

एकादश अध्याय

उपसंहार—डॉ0 हेडगेवार के जीवन काल में अन्य महापुरुषों की भाँति उनकी प्रसिद्धि नहीं के बराबर थी। इतना ही नहीं बल्कि सन् 1940 ई0 में जब 52वें वर्ष की अल्पायु में ही उनके बलिष्ठ शरीर का असमय अन्त हो गया और जब उनके द्वारा सन 1925 ई0 में संस्थापित राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ देश के प्रायः सभी प्रमुख प्रान्तों में पहुँच गया था तो भी संघ क्षेत्र के बाहर उनकी प्रसिद्धि नहीं थी। कदाचित यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण बात नहीं होगी कि आज जब भारत और उसके बाहर विदेशों में भी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का नाम लोगों के लिये उत्सुकता पूर्ण चर्चा का विषय है, उसके महान संस्थापक के बारे में कम ही लोगों को सही जानकारी होगी। अखिर ऐसा क्यों?

अभी तक डॉ0 हेडगेवार जी के बारे में जितनी जानकारी प्रकाश में आई, उससे यह तो निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि वे पूर्णतया प्रसिद्धि पराङ्मुख थे। अपने बारे में भारतीय सन्त परम्परा की भाँति वे कोई चीज प्रकाशित करवाना चाहते थे।

डॉ0 हेडगेवार की विशिष्ट महानता किस बात में थी, जो उन्हें अन्य प्रसिद्ध पुरुषों से कुछ भिन्न सिद्ध करती है, यह विचार का विषय है। महानता को मापने कोई सुनिश्चित स्थूल मापक नहीं है। सामान्यतः सभी महापुरुषों में एक बात समान रूप से पाई जाती है कि वह अपने निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में आने वाले सभी प्रकार की बाधाओं एवं विपत्तियों की परवाह न करते हुये और पूर्ण त्याग एवं समर्पित भाव से अग्रसर होते हैं। इनमें से कुछ अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सौभाग्यशाली होते हैं तो कुछ का लक्ष्य उनके जीवन–काल में नहीं अपितु उनके जीवन के बाद आगामी पीढ़ियाँ सफल देखती हैं।

हम जानते हैं कि महात्मा गांधी अपने जीवन काल में ही प्रसिद्धि के शिखर तक पहुँच गये थे। रूस में लेनिन को भी ऐसा यश एवं गौरव प्राप्त हुआ। चीन में माओ–त्से–तुंग को भी जीवन काल में ही सर्वत्र यश एवं प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी।

किन्तु डाक्टर हेडगेवार की स्थिति इन सबसे उनके जीवन काल में भिन्न थी। आज भारत में गांधी जी के मार्ग पर चलने वाले उनके कितने सच्चे अनुयायी हैं? लेनिन का रूस कहाँ रहा है? माओ का नाम तो अब चीन में भी आलोचना का विषय हो गया है।

रोम्यां रोलां ने एक प्रंसग में लिखा है कि यह सत्य है कि विश्व के सभी प्रमुख व्यक्ति यदि कुछ कर सके तो वह केवल अपनी प्रबल आशा एवं ज्वलन्त आस्था के कारण। किन्तु उनका कहना है कि यह भी विचारणीय है कि उनके बाद आज कितने लोग उन महापुरुषों से जीवन्त प्रेरणा लेते हैं? इतना ही नहीं तो कितने लोगों की आज बुद्ध या ईसा मसीह पर सच्ची श्रद्धा है। अन्य छोटे महापुरुषों की तो बात ही नहीं। दूसरे शब्दों मे रोलां का यह भाव प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति की महानता केवल उसके विचारों एवं आदर्शों की प्रसिद्धि पर निर्भर नहीं करती। बल्कि वह इस पर निर्भर करती है कि उसके अनुयायी कहलाने वाले कितने लोग कितनी श्रद्धा एवं सच्चाई के साथ उनके बताये आदर्शों पर चलते हैं।

लंका पर विजय प्राप्त करना था, उसके लिये समस्त सैन्य दल सहित पैदल ही समुद्र पार भी करना था। उधर प्रतिद्वन्दी था पुलस्त्य कुल का पराक्रमी रावण। इधर रण में सहायता के लिये वानर थे। तथापि पैदल चलने वाले मनुष्य राम ने उस समूचे राक्षस कुल का संहार किया। ताप्पर्य यह :के श्रेष्ठ महापुरुष बाह्य उपकरणों के सहारे नहीं अपितु अपने सत्व के बल पर ही कार्य सफल कर विजय प्राप्त करते हैं।[1]

हमें लगता है कि डॉक्टर हेडगेवार की महानता इसी विशेषता में थी। एक शताब्दी पूर्व उनका जन्म हुआ था। आधी शती से अधिक (लगभग 65 वर्ष) उनके देहवासान को हो चुकी है किन्तु आज देश में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की तीस हजार से भी अधिक शाखाओं पर प्रतिदिन आने वाले लाखों स्वयं सेवक और इनके अतिरिक्त संघ के करोड़ों समर्थक क्या डॉक्टर हेडगेवार जी के बताये हुये निःस्वार्थ राष्ट्र सेवा की भावना से जो

कार्य करते हैं क्या वह इसका ज्वलन्त प्रमाण नहीं हैं कि जैसे–जैसे समय बीतता जाता है। डॉक्टर हेडगेवार की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है और उनके जीवन काल में जिन्हें लोग बहुत कम जानते थे, अब उनके बारे में अधिकाधिक जानने को उत्सुक हैं।"[2]

इस प्रकार जब हम आद्य सर संघ चालक परम पूजनीय डॉक्टर हेडगेवार जी के जीवन, विचारों, आदर्शों एवं कृतित्व पर विचार करते हैं तो हमें दिखाई देता है कि उनके जीवन काल में संघ का प्रचार–प्रसार जहाँ प्रमुख प्रान्तों के कुछ नगरों तक ही हो पाया था, वहाँ आज देश के लगभग 482 जिलों में से प्रायः अधिसंख्य स्थानों पर डॉ0 हेडगेवार का जीवन सन्देश पहुँच चुका है। इतना ही नहीं देश के बाहर भी दर्जनों देशों में विभिन्न हिन्दू संगठनों के माध्यमों से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और उसके संस्थापक का संदेश वहाँ रहने वाले प्रवासी हिन्दुओं को एकता के सूत्र में आबद्ध कर उन्हें –हिन्दू धर्म' हिन्दू संस्कृति और भारत के सनातन जीवन मूल्यों से जोड़े रखने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

देश विदेश के बड़े–बड़े राजनेता, प्रशासक, न्यायविद, पत्रकार, साहित्यकार, विचारक आदि अब समय–समय पर यह उद्घोष करते हुये सुने जाते हैं कि भारत में चूँकि बहुमत हिन्दुओं का हैं इसलिये व्यवहार में यहाँ हिन्दु आदर्शों का आदरज होना ही चाहिये और इस अर्थ में यह हिन्दु राष्ट्र ही है। हिन्दु संस्कृति सहिष्णुता पर आधारित है और इतिहास साक्षी है कि हिन्दुओं ने कभी किसी अन्य धर्मावलम्बी का उत्पीड़िन नहीं किया। इतना ही नहीं तो उन्हें सदैव अपने यहाँ उदारता पूर्वक शरण दी है। अतः हिन्दुराष्ट्र की अवधारणा से अन्य धर्मावलम्बियों को शिकायत होने को कोई कारण नहीं।

संघ की शाखाओं के अतिरिक्त विश्व हिन्दु परिषद् वनवासी कल्याण आश्रम, विभिन्न सेवा प्रकल्पों, विद्यार्थी परिषद, भारतीय मजदूर संघ, भारतीय किसान संघ, विद्या भारती आदि विभिन्न संगठनों के माध्यम से जो कार्य देश भर में और देश के बाहर हो रहे हैं, क्या उनके मूल में डॉक्टर हेडगेवार जी के विचार एवं आदर्श प्रेरणा का काम नहीं

कर रहे है।"[3]

डॉक्टर हेडगेवार के सन्दर्भ में परमपूजनीय गुरुजी का यह मन्तव्य अत्यन्त मननीय है। वे कहते है–"हम राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के घटक 'क्रिया सिद्धिः सत्वं भवति महतां नोपरकणें" इस चिरन्तन महत्तत्व को पुनरपि प्रस्थापित करने वाले भारत के एक मेव अद्वितीय पुरुष परम पूजनीय डॉक्टर हेडगेवार जी के एकान्तिक निष्ठावान अनुयायी हैं। हम किसी भी प्रकार की बाह्य निष्ठा पर अवलम्बित नहीं है। केवल अविचल श्रद्धा, ध्येय पर स्थिर दृष्टि और अपने महनीय नेता की चिर स्मृति से अखण्ड प्रज्ज्वलित राष्ट्र प्रेम की अमर ज्योति के ही द्वारा हम अपना कार्य पूर्ण करेंगे और उद्दिष्ट साध्य कर हिन्दु राष्ट्र को विश्ववंद्य करेंगे।"[4]

परम पूजनीय डॉक्टर हेडगेवार ने अपनी छाती से लगाकर हम स्वयं सेवको का विकास किया और संघ की दैनिक शाखा की सहज–सरल पद्धति का निर्माण किया। जिस प्रकार निःस्वार्थ भाव से कोई व्यक्ति भगवान की उपासना करता है, उसी प्रकार दिन–रात राष्ट्र कार्य के लिये स्वयं सेवकों के विकास के बारे में चिन्तन करना ही संघ शाखा का संस्कार मंत्र है। यही राष्ट्र की उपासना है। व्यक्ति निर्माण के कार्य में इस संघ शाखा की प्रतिदिन की उपासना बताते हुये गुरुजी ने कहा–"डाक्टर जी ने दैनन्दिनि शाखा का निर्माण इसलिये किया कि पूजा दिन–प्रतिदिन व्रतस्थ हो अर्थात् नित्य प्रति समय निकालकर निभाते–निभाते अन्तःकरण उसी संस्कार में रंगकर चौबीसो धण्टे दूसरा कोई विचार न आ सके, ऐसी सहजावस्था संगठन की उत्पन्न हो।"[5] इस प्रकार सदैव विकासमान यह शाखा पद्धति ही देश भर में फैली और संगठन मे शक्ति तथा संगठन में अनुशासन को ठोस साकार रूप देने में समर्थ हुई। सम्पूर्ण हिन्दू समाज को संगठित करने की यह अनूठी शाखा कार्य पद्धति ही वह मुख्य बात है जिससे स्वयं सेवक कार्यकर्ता प्रकट होते हैं और आज समाज जीवन के विविध क्षेत्रों में देशभक्ति की भावना को फैलाते हुये देश का स्वर्णिम स्वप्न साकार करने में जुटे हैं।"[6]

डॉक्टर हेडगेवार जी के राष्ट्र समर्पित जीवन से राष्ट्रोद्धार के लिये 'संगठन में शक्ति' और संगठन याने 'अनुशासन' दो निष्कर्ष अपनी विशेष मैलिकता के साथ प्रकट हुये। इन निष्कर्षों के प्रकाश में उन्होंने अचूक कार्य योजना बनाई। दिन प्रतिदिन संस्कार प्रदान करने की अत्यन्त मौलिक रचना स्थापित की। खेल–खेल में संगठन और अनुशासन के संस्कार संघ शाखा में दिये जाने लगे। शाखा चल पड़ी। डॉक्टर जी की सम्पूर्ण तपस्या और तेज संघ की दैनिक शाखा पद्धति में समाया हुआ है। संघ शाखा और डॉक्टर हेडगेवार एक रूप है। इतना कि संघ शाखा छोड़कर कोई लाख कोशिश करे तो भी डॉक्टर हेडगेवार के सच्चे स्वरूप को पहचान नहीं सकता। संघ शाखा में संस्कार ग्रहण करने के लिये जो जितना पास होगा, वह डॉक्टर हेडगेवार जी के उतना ही नजदीक होगा। व्यक्ति निर्माण के इस कार्य के साथ ही डॉक्टर जी का सम्पूर्ण जीवन एकाकार हुआ है। यह संघ कार्य ही उनके राष्ट्र समर्पित जीवन का सच्चा और अनुकरणीय परिचय है। व्यक्ति निर्माण के इस कार्य की पूर्ति के लिये सर्वस्वार्पिणी परम पूज्य डाक्टर हेडगेवार जी ही हमारे आदर्श हैं।

डॉक्टर हेडगेवार की धर्म धारणा नितान्त अनूठी थी। वे बाह्य डम्बर को धर्म नहीं मानते थे। उनकी आँखों के समक्ष उदात्त तत्व को हृदयंगम करके 'स्व' का परित्याग करते हुये 'पर' को साथ लेकर चलने की अत्यन्त उदार दृष्टि थी। "धर्म की शक्ति यह है कि वह निरन्तर बना रहे और साथ ही निरन्तर परिवर्तित होता रहे। समय का सम्मान करने के लिये उसका जो पुराना हो गया है न उसे सर्वांश में मिटाने की जरूरत होती है और न जो नया है, उसे सर्वथा अच्छा कहकर अपनाने की। कालिदास की यह प्रसिद्ध उक्ति 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवंद्यम्" उस पर भी लागू होती है, विज्ञान में जिस प्रकार परीक्षण अनिवार्य है उसी प्रकार धर्म को भी परीक्षण से गुजरना चाहिये जिससे उसके अनुपयोगी अंश को छोड़ा जा सके। धर्म और विज्ञान वहाँ एक हो जाते हैं, जहाँ वे सत्य की खोज करते हैं अथवा उस खोज को मानव–हित में प्रयुक्त करते हैं। यहीं

दोनों के लक्ष्य एक हो सकते हैं। धर्म विज्ञान का आध्यात्मीकरण और विज्ञान धर्म का यौक्तिकी करण कर सकता है''[7]

धर्म शब्द का प्रयोग कर्तव्य, गुण, नियम, न्याय, शील, कर्म आदि कई अर्थों में होता आया है। वैदिक साहित्य में उसका अर्थ धारण करना, सहायता करना अथवा पोषण करना होता है। उपनिषदों में उसका प्रयोग विहित कर्मों के पालन के अर्थ में हुआ है। वैशषिक सूत्र में धर्म को अभ्युदय और निश्रेयस् का साधन माना है और पूर्व मीमांसा में प्रेरणा का। महाभारत में धर्म की व्याख्या ''ध्रियते सांक अनेन'' अथवा ''धरति धारयति या लोकं इमि धर्मः'' के रूप में हुई है। इसके अतिरिक्त कहीं सदाचार कहीं सत्य कहीं अहिंसा को धर्म की संज्ञा दी गई है। शरीर रक्षा भी धर्म है कालिदास की उक्ति 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'' का अपना महत्व है किन्तु अधिकांश व्यक्ति धर्म को वह तत्व मानते हैं जो अन्तरात्मा को तुष्ट करता है। अशोक ने धर्म को सामाजिक उत्तर दायित्व की एक ऐसी वृत्ति के रूप में लिया जिसमें व्यक्ति दूसरे के हित को अधिक महत्व देता है। फिर भी धर्म क्या है? यह कहना सरल कार्य नहीं है। सत्य की भाँति धर्म का तत्व भी गुहा में निहित है। फिर भी 'महाजनो येन गतः स पंथा' के अनुरूप अधिकांश लोगों के लिये धर्म का अर्थ मन्दिर जाना, पूजा पाठ करना आदि ही है। किन्तु धर्म व्यक्ति की निजी अनुभव की वस्तु और अनुभूति भी है। कुछ लोगों के लिये कर्मकाण्ड ही धर्म है पर इसके विपरीत दूसरे लोगों के लिये धर्म वह है जो व्यक्ति को बाह्य साधनों से मुक्त कर भावना और आस्था से उसके आचरण और आधार भूत लक्ष्यों को निर्धारित करता है डाक्टर हेडगेवार जी कहते थे ''धर्म व्यापक अर्थों मे प्रयुक्त शब्द है–कई पंथ और मत–मतान्तर समाहित हो जाते हैं और वे उसी के अंग बनकर धर्म से प्रजा का नियमन ही नहीं करती बल्कि उसे नैतिक मूल्यों, जीवन, दृष्टि और कल्याण, कारक माना जाता है।'[8] इस प्रकार धर्म एक जीवन्त तत्व है जो जन–जन के हृदय में वास करता है। धर्म को हम धारण करते हैं बाहर से नहीं अन्दर से। यही उसकी अन्तर्यात्रा है। उसमें ही सत्य प्रतिष्ठित है।''[9] धर्म के

अन्तर्गत जैसे मनुष्य का पूरा आचरण, नैतिक व्यवहार, विश्वास और परम तत्व के प्रति आशा का भाव सब कुछ समाहित हो जाता है। इसीलिये 'तस्मात् धर्मात् परम नास्ति'"[10] कहा गया है।

संघ कार्य को आगे बढ़ाने और अत्यधिक प्रभावी बनाने के लिये पूर्ण समय और पूर्ण जीवन–दानी तरुणों का संगठन किया जो भली भाँति सुशिक्षित होते थे, उन्हे संघ कार्य को गति देने हेतु एक अभिनव 'प्रचारक योजना' प्रारम्भ की और उसके अच्छे परिणाम सामने आने लगे। जैस प्रान्त प्रचारक संभाग प्रचारक, विभाग प्रचारक, जिला प्रचारक, तहसील प्रचारक, खण्ड प्रचारक, इत्यादि। इसी प्रकार संघ कार्य में किसी भी प्रकार का आर्थिक संकट न रहे। डॉक्टर साहब ने 'समर्पण निधि' की स्थापना की जिससे भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रकल्प संचालित किये। विशुद्ध संघ कार्य की अभिवृद्धि हेतु गुरुपूर्णिमा के पावन अवसर पर 'गुरु–दक्षिणा' का कार्यक्रम प्रारम्भ किया। इसमें प्रत्येक स्थिति का स्वयंसेवक अधिकाधिक धन श्रद्धा भाव से समर्पित करता है। पूरे भारत और विदेश में भी यह अभिनव प्रणाली के माध्यम से संघ कार्य भली भाँति संचालित हो रहा है।

इसी प्रकार डाक्टर जी की यह धारणा भी निर्भीक अजेय और अत्यन्त प्रामाणिक है कि अपना देश वास्तविक रूप में 'हिन्दुस्थान' है। इसके अनेक ऐतिहासिक प्रमाण भी हैं। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ उरई द्वारा सरकार्यवाह मान्यवर मोहन जी भागवत के नगर प्रवास के सुअवसर पर वितरित किया गया पत्रक उद्धरणीय है "इतिहास प्रमाण है कि भारत एक सनातन और पुरातन हिन्दू राष्ट्र है तथा इसका मूल पुत्रवत समाज हिन्दू है जिसके सतत प्रयास, परिश्रम, शौर्य, त्याग, बलिदान तथा ज्ञान से ही भारत माता जगद्गुरु कहलाई। कालान्तर में अनेकानेक कारणों से समाज निबल हुआ, राष्ट्र भाव का अभाव हुआ। परिणाम स्वरूप विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमणों एवं अत्याचारों से पराभूत होकर यह समाज लगभग 1200 वर्षो तक स्वतंत्रता के लिये संघर्षशील रहा। भारत को एक बार पुनः उसकी दुर्बलताओं से मुक्त कराकर 'परम वैभव' नेतुमेतत स्वराष्ट्रम' के लक्ष्य

प्राप्ति हेतु परम पूज्य डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की संस्थापना की। पिछले 77 वर्षों से संघ राष्ट्र जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विस्तार करते हुये एक सर्वव्यापी, सर्वस्पर्शी संगठन के रूप में विकास पथ पर अग्रसर है। जेहादी, आतंकबाद, संघर्ष एवं रक्तपात से त्रस्त वर्तमान विश्व में सबकी आशा का केन्द्र विन्दु भारत तथा हिन्दू जीवन दर्शन है जिसके 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्'' के सन्देश को जन–जन तक पहुँचाने के निमित्त 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संध सतत् प्रयत्न शील है।''[11] वास्तव में इस पत्रक से 'भारत हिन्दू राष्ट्र है' 'संगठन में शक्ति है' तथा स्वयं स्वीकृतनः कण्टकाकीर्ण मार्गम्' की उत्कट भावना विद्यमान है और इसके साथ ही साथ डाक्टर हेडगेवार की सत्य एवं कर्म निष्ठा के स्वर मुखरित है। वे सच्चे ध्येयवादी, लोक संग्राहक, निर्भीक, उपासना, एवं प्रखर राष्ट्र भक्त थे।

निम्नांकित सुभाषित कीर्तिमय ऐसे ध्येय–विन्दु हैं' जिन्हें डाक्टर हेडगेवार ने आत्म सात करते हुये सभी स्वयं सेवकों, को सावधान किया और कहा कि 'संगठित हिन्दू समर्थ भारत।''

'हिन्दू–हिन्दू एक रहें।' 'हिन्दु घटा, देश बँटा।', 'हिन्दू घटा देश कटा।' 'हिन्दू जागेगा, विश्व जागेगा।' अनेकता में एकता, हिन्दू की विशेषता।' हिन्दुत्व एक जीवन पद्धति है।' 'हिन्दवः सोदराः सर्वे।' ' न हिन्दू पतितो भवेत।' धर्मान्तरण पाप है।' सज्जन समर्थ हो, समर्थ सज्जन हो, सज्जन संगठित हो।' हमारी संस्कृति हमारी पहचान।' गो प्रधान कृषि प्रधान देश।' अस्पृश्यता अगर पाप नहीं तो दुनियाँ में कोई पाप नहीं।' 'स्वयमेव मृगेन्द्रता।' लोका समस्ता सुखिनः भवन्तु।''

संघ के पूर्व सरकार्यवाह माननीय प्रभाकर बलवन्त दाणी उपाख्य भैया जी दाणी जो डॉक्टर साहब से संघ के प्रारम्भ से ही जुड़े रहे, के शब्दों में–उनका अन्तःकरण मातृभूमि के उद्धार के लिये आमरण तड़पता रहा। जन्मभूमि के लिये उन्होंने अपने जीवन सर्वस्व की आहुति चढ़ा दी। डॉक्टर जी का जीवन मानो अखण्ड रूप से चलने वाला यज्ञ

था। अपने जीवन को तिल–तिल जलाकर उन्होंने हिन्दू राष्ट्र में नूतन प्रकाश फैलाकर हिन्दू समाज को नव–दृष्टि प्रदान की।"[12]

देश भक्त जन्म लेते हैं, बनाये नहीं जाते। यह तत्व प्रत्येक देश भक्त को माता के स्तन्य (दूध) से ही प्राप्त होता है। देश भक्ति चर्चा व्याख्या का विषय ही नहीं है, वह स्वयं सिद्ध है। डॉक्टर साहब ने देश भक्ति की दस सूत्री कसौटी निर्धारित की थी, जो इस प्रकार है–

1–देश भक्त का अर्थ है, हम जिस भूमि और समाज में जन्में हैं उस भूमि और समाज के प्रति मालूम पड़ने वाली आत्मीयता ममता।

2–देश भक्ति का अर्थ जिस समाज में हम जन्में हैं उसकी परम्परा और संस्कृति के सम्बन्ध में होने वाला प्रेम का उफान तथा मालूम पड़ने वाल अभिमान।

3–देश भक्ति का अर्थ है, अपने समाज द्वारा सँजोये और बढ़ाये हुये जीवन मूल्यों के प्रति आत्यन्तिक निष्ठा।

4–देश भक्ति का अर्थ है अपने समाज के उत्कर्ष के लिये, विकास के लिये सर्वस्व समपर्ण करने के निमित्त उत्फूर्त करने वाली प्रेरणा शाक्ति।

5–देश भक्ति का अर्थ है व्यक्ति निरपेक्ष और समष्टि कनिष्ठ जीवन का पवित्र गंगा–प्रवाह।

6–देश भक्ति का अर्थ है सभी प्रकार की भोग लालसाओं का उच्छेद कर माता के वात्सल्य से समाज की ओर देखने की जीवन–दृष्टि।

7–देश भक्ति का अर्थ है सभी प्रकार की व्यक्तिगत आशा एवं आकांक्षाओं का समाज के चरणों पर चढ़ाकर अपनी सारी शक्ति केवल समाज की सेवा में लगाने की कर्तव्य कठोर प्रेरणा।

8–देश भक्ति का अर्थ है मातृभूमि के चरणों में समर्पित अनन्य निस्वार्थ कर्तव्य कठोर जीवन–कुसुमों की मादक सुगन्ध।

9–देश भक्ति का अर्थ है, समाज–ब्रह्मा की नाभि से निकला हुआ कमल।

10—देश भक्ति का अर्थ है, सम्पूर्ण समाज के एकात्मकता के भाव का आविष्कार।

परम पूजनीय डॉक्टर हेडगेवार को इन्हीं कसौटियों पर टिक सकने वाले देश भक्तों का संरक्षण विकास, निर्माण और प्रसार करना था और एतदर्थ प्रयत्न करने की प्रक्रिया का नाम ही 'राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ' है और यही उनका जीवन—कार्य। निःसन्देह डॉक्टर हेडगेवार का अभिप्रेत था कि जन्मजात देश भक्ति समाज में निर्माण हुये बिना देश का जीवन उन्नत नहीं हो सकता। हम कितने ही कारखानें और कितने ही उद्योग खड़े करें, राष्ट्र—जीवन निष्ठा के रहने से निश्चय ही उनसे सफलता नहीं मिल सकती। कितनी ही राष्ट्र हमें मदद दें, तब तक हमारा राष्ट्र जीवन उन्नत नहीं हो सकता, जब तक हमारी राष्ट्रीय दृष्टि स्थिर न होगी।, किन्तु यदि एक बार हमारी राष्ट्रीय दृष्टि स्थिर हो जाय तो किसी की मदद के बिना, भूखे पेट भी हम अपना जीवन समृद्ध कर सकेंगे। परम पूजनीय डॉक्टर हेडगेवार ने अपने निःस्वार्थ जीवन द्वारा स्वयं सेवकों और समाज को यह मंत्र दिया है। हमारा यह पावन कर्तव्य है कि हम सब उनके बान्धव उनके जैसा ही जीवन भी पुनीत करने का निश्चय करें और पूजनीय डॉक्टर जी द्वारा दिये गये मंत्र को अपने जीवन में चरितार्थ कर ध्येय—मन्दिर तक अविराम, निर्भय तथा पूर्णनिष्ठा के साथ बढ़ते चले जाँय। सफलता निश्चित है।''[13]

परिस्थिति की वस्तु परक समीक्षा, इतिहास सिद्ध निष्कर्ष, निःस्पृह और निरपेक्ष विचार, स्पष्ट ध्येय, निःस्वार्थ कार्य, अचूक दृष्टि, अजातशत्रुभावी लोक संग्रह और सबसे अधिक विलक्षण व्यक्ति निर्माण की अत्यन्त सरल कार्य पद्धति—सभी बातों में मौलिकता का एक चमत्कार, डॉक्टर हेडगेवार के शब्द जितने प्रेरक रहे उतने ही सरल और हृदय को छू जाने वाले होने के कारण अद्भुत संस्कार निर्माण करते हैं। उनके सन्देश पूर्ण वाक्य नित्य स्मरण करने योग्य हैं। उन्हीं में से कुछ चुने हुये उद्धरण यहाँ प्रस्तुत है—

चौबीसों धण्टे राष्ट्रीयता के विचार हमारे मनों में गूँजते रहें, इसलिये संघ का नाम राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ रक्खा गया है।

मैं दाबे के साथ जंता दूँ कि संसार में संगठन ही ऐसी एक मात्र शक्ति है जिसके बल पर सारी राष्ट्रीय समस्यायें हल हो सकती हैं।

हमारा उद्देश्य और कार्य नितान्त पवित्र तथा जन–कल्याणकारी होने के कारण ईश्वरीय है और यही कारण है कि हर समय और हर परिस्थिति में हम अवश्य सफल होंगे।

अतएव स्वयं सेवक को वही काम करना उचित है कि जिससे संगठन को लाभ पहुँचे।

हम आत्म–निरीक्षण करके अपने सभी दुर्गुणों का मूलोच्छेदन कर डाले।" हमारी चादर इतनी साफ रहे कि हमारे चरित्र में ढूँढ़ने से भी दोष या कलंक का छींटा तक न मिले।

मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि इस विशाल भारत के कोने कोने में एसे ध्येय निष्ठ और बलवान तरुणों के संघ का जला फैला दो।

विश्वास कीजिये, हिन्दू शक्ति सारे सगठन में अजेय सिद्ध होगी।"[14]

किसी भी राष्ट्र की सम्पूर्ण उन्नति में वहाँ के महापुरुषों के कृतित्व का सबसे बड़ा योगदान रहता है। ये मनीषी सच्चे हितैषी, चिन्तक और सर्वथा निस्पृही हुआ करते हैं। कोई शक्तिमान होता है तो कोई बुद्धिमान, कोई बलवान होता है तो कोई धनवान, कोई अपना सर्वस्व समर्पण करके निस्वार्थ भाव से राष्ट्र सेवा का व्रत ले लेता है तो कोई आजीवन व्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये भारत माता के चरणों में अपना जीवन पुष्प समर्पित कर देता है। ऐसे ही तेजवान, बुद्धिमान और गणुवान सपूत कुछ कर दिखाने की कला में निष्णात होते हैं।

दृढ इच्छा शक्ति सम्पन्न सच्ची और अनूठी लगन के धनी एवं उत्तम चरित्र के अधिनायक भले ही अपने वाह्य जीवन में साधारण से क्यों न दिखलाई दें किन्तु वे सच्चे अर्थों में समाज क प्रेरणा पुंज, दिशा निर्देशक ओर राष्ट्र निर्माण के कुशल शिल्पी होते हैं।

इनका आन्तरिक जीवन सद्‌गुणें की खान होता है। निर्धनता इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। ये महान व्यक्तित्व साधन हीनता की स्थिति का रोना नहीं रोते वरन् कठिनाइयों और मार्ग की अनेकानेक बाधाओं का हँस–हँसकर धीरता पूर्वक सामना करते हुये निर्भीक मना होकर सदैव आगे ही बढ़ते रहते हैं। ये सद्‌मार्ग पर चलते हुये कभी पीछे नहीं लौटते, इन्हें ही नरोत्तम, पुरुषोत्तम और अवतारी दिव्य पुरुष की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इन्हें नर से नारायणत्व प्राप्ति की कला आती है। यही कारण है कि ऐसे महानुभावों का साधारण व्यक्तित्व असाधारणत्व की कोटि में आ जाता है। ये सर्व समर्थ होते हैं। इनके शब्द कोश में 'असम्भव' शब्द होता ही नहीं।

डॉ0 राम स्वरूप खरे के मतानुसार–डॉ0 हेडगेवार ऐसे ही भुवन–भास्कर थे जिन्होंने देश में व्याप्त समूचे अन्धकार को विनिष्ट करके साहस, शक्ति, और अभिनव प्रेरणा का दिव्य लोक विकीर्ण किया जिसमें परतंत्र भारतवासियों ने अपने स्वाभिमान का दर्शन किया और सच्ची राष्ट्र–भक्ति का विशिष्ट भाव जाग्रत किया। वे एक सच्चे हिन्दू थे। उनमें हिन्दुत्व की श्रेष्ठ भावना कूट–कूट कर भरी थी। 'भारत हिन्दू राष्ट्र है' की अवधारणा उनकी अनूठी देन है।''

निर्धन किन्तु सुशील परिवार में जन्म लेने कारण उनमें कभी हीनता की भावना नहीं आई। वे ऐसा मानते थे कि हम परिस्थितियों के दास नहीं वरन् उनके नियामक हैं। हम अपने पौरुष से उन्हें अपने अनुकूल बनायेंगे। विषम परिस्थितियों को हम सफलता के सोपान बनाकर निर्भीक मना बन अपने लक्ष्य तक अवश्यमेव पहुँचेंगे। वे अत्यन्त मृदु और मधुर भाषी थे। निश्छिल स्नेह को वे मिलने–जुलने का सुदृढ़ सेतु मानते थे। वे राष्ट्र को परम वैभव के शिखर तक ले जाना चाहते थे। उनका कहना था कि चुपचाप नतमस्तक होकर अन्याय सहन नहीं करना चाहिये वरन् एकजुट होकर (डटकर) उसका विरोध करना चाहिये। संसार में शक्तिशाली की ही जय–जयकार होती है। इसलिये हम सब भारतीयों को पूर्णरूपेण शक्ति सम्पन्न बन कर राष्ट्रसेवा का पुनीत व्रत लेना चाहिये।

विजय दशमी के दिन अपने घर में पन्द्रह बीस महानुभावों को एकत्र करके डॉक्टर हेडगेवार ने सबसे कहा–"हम लोग आज से संघ शुरू कर रहे है।" इस प्रकार 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' का श्री गणेश हुआ। डॉक्टर हेडगेवार इस संघ के आद्य सरसंघ चालक बने अर्थात् इन्होंने ने ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की संस्थापना की।

हम सब लोगों को इनका अनुकरण करके इनके जीवन से भक्ति–स्वाभिमान और सच्चरित्रता सीखना चाहिये। ऐसे मौन साधक हमारे राष्ट्र के भव्य–भवन की आधार शिला हैं। यह नवीन भारत के नव निर्माता हैं। राष्ट्र के जाररूक प्रहरी हैं इन्होंने भारत माँ की गरिमा बढ़ाई है इन्हें कोटि–कोटि नमन।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1—'विजेतत्या लंका चरणतरणीयो जलनिधिः/विपक्षः पौलस्त्यो रण भुवि सहायाश्च कपयः।

पदातिर्मर्त्यौऽसौ सकलमवधीद सक्षस कुलं/क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे।।

2—महापुरुषों की छाया में, गिरीश चन्द्र मिश्रा, लोकहित प्रकाशन राजेन्द्र नगर, लखनऊ, प्रथम संस्करण सवत् 2056 पृष्ठ2

3—महापुरुषों की छाया में, गिरीश चन्द्र मिश्रा, लोकहित प्रकाशन राजेन्द्र नगर, लखनऊ, प्रथम संस्करण सवत् 2056 पृष्ठ 3,4

4—मा0 स0 गोलवलकर 'गुरुजी' हमारे डॉक्टर जी के पृष्ठ 3 से उदधृत

5—समग्र दर्शन खण्ड, 3 पृष्ठ 19

6—डाक्टर हेडगेवार एक चमत्कार, पं0 राम शंकर अग्निहोत्री पृ0 30

7—संस्कृति समस्या और समाधान, डॉ गोविन्द चातक, पृ0 104

8—संघ संस्थापक हेडगेवार, युग कवि राम स्वरूप खरे पृ0 7

9—धर्मोहि परमलोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्, बाल्मीकि रामायणम् बाल्मीकि

10—वृहदारण्योपनिषद्, 1/4/14

11—माघ शुक्ल अष्टमी संवत् 2052 तदनुसार दिनांक 9 फरवरी 2003 प्रभात शाखा टाउन हाल उरई द्वारा बाँटा गया पत्रक जिसमें सभी स्वयं सेवकों को खाकी नेकर काली टोपी (गणवेश) अनिवार्य था। विशाल स्वयं सेवक समागम में भाग लेने हेतु

12—संघ दर्शन में भैया जी दाणी, चतुर्थ आवृत्ति संवत 2035 पृष्ठ 24

13—संघ दर्शन में भैया जी दाणी, चतुर्थ आवृत्ति संवत 2035 पृष्ठ 33

14—परम पूजनीय डाक्टर हेडगेवार (छोटा जीवन चरित्र) पृ0 63 पृ 78 पृ0 57 पृ0 54 पृ0 53 पृ0 50 पृ0 79

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संस्कृत ग्रन्थ

1–श्री विष्णु पुराण

2–श्री भगवत् गीता

3–श्री भागवत पुराण

4–मुक्तिकोपनिषद् छान्दो

5–यजुर्वेद

6–ऋग्वेद

7–अथर्ववेद

8–एतरेय उपनिषद्

9–ईशावास्योपनिषद्

10–संस्कृत सुभाषितम्

11–अभिज्ञान शाकुन्तलम्

12–नीतिशतकम्

13–महाभारत

14–एकात्मता स्तोत्र

15– प्रातः स्मरण्

हिन्दी ग्रन्थ

1—अपने परम पूज्य सर संघ चालक, विजय कुमार

2—अनुशासित समाज की ओर, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ

3—अनुभूति के क्षण, सम्पादक डॉ0 राम स्वरूप खरे

4—अशोक, भगवती प्रसाद पांथरी

5—अधूरी क्रान्ति, डॉ0 सम्पूर्णानन्द

6—आद्य सर संघ चालकः डॉ0 हेडगेवार, डॉ0 राम स्वरूप खरे

7—इतिहास गा रहा है, राणा प्रताप सिंह

8—इलियट एण्ड डौसन, भाग 7

9—इतिहास दर्शन, डॉ0 झारखण्ड चौबे

10—उपनिषद् की भूमिका, डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन

11—एकात्मता स्तोत्रम्, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ

12—काँपती परछाइयाँ, डॉ0 राम स्वरूप खरे

13—कौटिल्य कालीन भारत, आचार्य दीपंकर

14—काँग्रेस का इतिहास, पटटामि सीता रमैया

15—चिन्तर के मोती, डॉ0 राम स्वरूप खरे

16—डॉ0 हेडगेवार चरित्र, ना0 ह0 पालकर

17—डॉ0 हेडगेवार, अनु0 कु0 शशि सक्सेना

18—डॉ0 हेडगेवार एक चमत्कार, पं0 राम शंकर अग्निहोत्री

19—ताजमहल मन्दिर भवन है, पुरुषोत्तम नागेश ओक

20—तुजक—ए—तैमूरी, हिन्दी अनुवाद

21—तुम्हारे ऋणी हम प्रलय तक रहेंगे, डॉ0 रामरंग शर्मा

22—परम पूजनीय श्री गुरु जी, श्रीधर भास्कर वर्णेकर

23–प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव

24–प्राचीन भारत का इतिहास, द्विजेन्द्र नारायण झा

25–प्राचीन भारत में जनतंत्र, देवी दत्त शुक्ल

26–प्राचीन भारत का इतिहास, डॉ0 सत्यनारायण दुबे

27–प्राचीन भारत, डी0 एन0 झा

28–बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति, प्रो0 उपेन्द्र नाथ राय

29–भक्ति आन्दोलन, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

30–भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पी0 एन0 चौपड़ा अनु0 उदयन परमार

31–भारत का संविधानः एक परिचय, डॉ0 दुर्गादास बसु

32–भारत का संविधान, पुखराज जैन

33–भारत का संविधान, डी0 डी0 पाण्डेय

34–भारतीय इतिहास, अंशु मंगल

35–भारत का इतिहास, को0 अ0 अन्तोनोवा, ग्रि0 म0 बोगर्द लेविन, ग्रि0 ग्रि0 कोतोव्स्की

36–भारतीय सभ्यता का सांस्कृतिक विकास, बी0 एन0 लूनियाँ

37–भारत का इतिहास, डॉ0 आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव

38–भारतीय संस्कृति का इतिहास, डॉ0 रमेश चन्द्र वर्मा

39–भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, डॉ0 पृथ्वी कुमार अग्रवाल

40–मुगल कालीन भारत, लईक अहमद

41–मौर्य साम्राज्य का सांस्कृतिक इतिहास, भगवती प्रसाद पांथरी

42–मौर्य साम्राज्य का इतिहास, सत्यकेतु विद्यालंकार

43–राष्ट्र जीवन की दिशा, दीन दयाल उपाध्याय

44—राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघः लक्ष्य और कार्य, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ

45—राष्ट्र मन्दिर के कुशल शिल्पी, आचार्य श्री राम शर्मा

46—राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघः तत्व और व्यवहार, डॉ0 हेडगेवार

47—राष्ट्र चिन्तन, दीन दयाल उपाध्याय

48—विचार नवनीत, मा0 स0 गोलवलकर

49—वन्दना सम्पा0 कृष्णा चन्द्र गाँधी

50—वीर सावरकर, शिव कुमार गोयल

51—संस्कृतिः समस्या और संभावना, गोविन्द चातक

52—संघ दर्शन, प्रभाकर बलवन्त दाणी

53—साहित्य की चेतना, विद्या निवास मिश्र

54—संघ संस्थापक हेडगेवार, युग कवि डॉ0 राम स्वरूप खरे

55—संघ का इतिहास, सम्पा0 माधव सदाशिव गोलबलकर

56—श्री गुरु जी, पद्‌माकर भाटे

57—श्री गुरु जीः अविस्मरणीय जीवन, कौशलेन्द्र

58—हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र

59—हर्ष चरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेव शरण अग्रवाल

60—हिन्दी भाषा और भारतीय संस्कृति, डॉ0 शंकर दयाल शर्मा

61—हिन्दुत्व आज और कल, उत्तम राव कनिटकर

62—हिन्दुत्व सम्पूर्ण जीवन दर्शन, डॉ0 बा0 मो0 आठले

आंग्ल भाषीय ग्रन्थ

1—फिलौसफी ऑफ राइट, हीगेल

2—माक्स एंजिल, मार्क्स

3—एनसियेण्ट इण्डिया, बी. जी. गोखले

4—अर्ली इण्डियन रिलीजन, बनर्जी

5—इनफ्लुएंस ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, प्लेखनोव, अनु0 डॉ0 ताराचन्द्र

6—लेंग्वेज, ट्रुथ एण्ड लौजिक, ए0. जे0 अय्यर

7—द आर्ट ऑफ हिस्ट्री, जे0 बी0 ब्लैक

8—मैन ऑन हिज पास्ट, एच0 वटरफील्ड

9—द एम्स ऑल हिस्ट्री, थामसन डेविड

10—आइडिया आफ प्रोगरैस, एम, जिंसबर्ग

11—ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री, डी0 सी0 सॉभर वेल

12—दमीनिंग ऑफ ट्रुथ इन हिस्ट्री, आर0 बी0 हलडेन

पत्र—पत्रिकायें

1—अग्नि शिखा (मासिक) अरविन्द सोसायटी पाण्डिचेरी

2—जाह्नवी 7

3—राष्ट्र धर्म

4—पांचजन्य 11

5—कल्याण (संस्कृति अंक) 4

6—दैनिक हिन्दुस्तान 8

7—अखण्ड ज्योति (मासिक) 2 अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

8—कादम्बिनी 6

9—नवनीत 10

10—आर्गनाइजर 3

11—धर्मयुग, 9, 8

12—वीणा 12

13—हिन्दू, 13

14—कर्मयुग प्रकाश, 5

परिशिष्ट– 1

जन्म कुण्डली

परिशिष्ट १

प० पू० डॉ० केशव बलिराम हेडगेवार की जन्मपत्री

।। श्रीगजाननः प्रसन्नः ।।

।। श्रीगणेशाय नमः ।। स जयति० ।।

आदित्यादिग्रहाः सर्वे सनक्षत्राः सराशयः ।
कुर्वन्तु मंगलं तस्य यस्यैषा जन्मपत्रिका ।। १ ।।
जननी जन्मसौख्यानां वर्धिनी सर्वसंपदाम् ।
पदवी पूर्वपुण्यानां लिख्यते जन्मपत्रिका ।। २ ।।

स्वस्ति श्रीमन्नृपविक्रमार्कसमयातीत संवत् १९४५ तथा च श्रीमद्भूपतिशालिवाहनशके १८१० सर्वधारीनाम संवत्सरे उदगयने वसंततौ मांगल्यप्रदशुभकारिणि फाल्गुनमासे कृष्णपक्षे अमावास्यायां तिथौ घ० २५ प० २९ परं चैत्रशुक्ल १ रविवासरे शके १८११ विरोधिनाम संवत्सरे उत्तराभाद्रपदानक्षत्रे घ० १४ प० ५७ ब्राह्मयोगे घ० ६ प० २७ परं ऐंद्रयोगे तात्कालिक किंस्तुघ्नकरणे एवमादिपंचांग शुद्धावत्रदिने श्रीमन्मार्तण्डमण्डलोदयादिष्ट घ० ४७ प० ३० तत्समये सकलधैर्यादिगुणसम्पन्नराजमान्यराजश्री बलिरामपंत हेडगेवार तस्य भार्या कुलद्वयानंददायिनी सौभाग्यवती रेवती-तथा यमुना-नाम्नी पुत्ररत्नं प्रासूत ।। असौ देवद्विज प्रसादाद्दीर्घायुर्भूयात् ।। तस्य अवकहडाचक्रानुसारेण रेवतीजन्मनक्षत्रस्य द्वितीयचरणानुगं दोमदेव इति जन्मनाम सुप्रतिष्ठितम् ।। देवगणः ।। गजयोनिः ।। अन्त्यनाडिः ।। मीनराशिः । वर्ज्यवारः शुक्रवारः ।। मंगलमाहेश्वरी शुभं भवतु ।

।। इयं जन्मलग्नकुंडलिः ।।
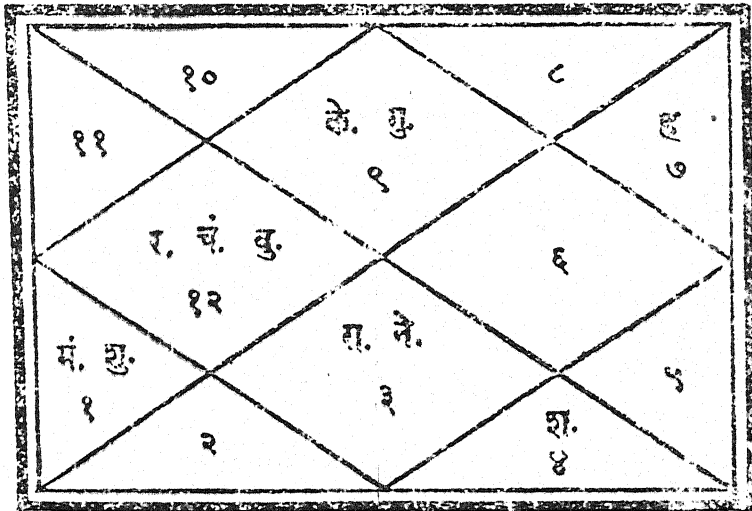
शुभं भवतु

जन्मस्थान-नागपुर, दिनांक ३१ मार्च १८८९ मध्यरात्रि के पश्चात् १ बजकर १३ मिनिट अर्थात् जन्मदिनांक १ अप्रैल १८८९ व जन्मतिथि चैत्र शुक्ल १ शकसंवत १८११ ।

परिशिष्ट २

डॉ० हेडगेवार का स्वहस्तलेख

श्री [illegible] पुणे ८

ता. ८-५-३६

तीर्थस्वरूप

श्री. आबाजी यांस

कृतानेक सा. न. वि. वि. —

काल रोजी श्री. [illegible] साहेब बरोबर पाठविलेले पत्र पोचले असेलच. आज आतांच ता. ८-५-३६ ला श्री. कृष्णरावांचे मोहरीरांचे पत्र मिळाले. वाचून आनंद झाला. इकडील सर्व कामे ठीक चालले असून सर्वलोक पूर्णपणे आनंदात आहेत.

मी उद्याला ता. ९ रोजी नागपूर मेलने निघून मध्ये कुठेही न थांबता ता. १० रोजी सकाळी नागपूरला येऊन पोचेन. प्रत्यक्ष भेटीत सर्व गोष्टी बोलेनच. कळावे

आपला — के. ब. हेडगेवार

परमपूजनीय डॉक्टरजी द्वारा अपने चाचा श्री आबाजी हेडगेवार को भेजे गये एक पत्र के दोनों ओर का यह छायाचित्र है। इस प्रत्यक्ष पत्र में उनका देवनागरी में स्वहस्तलेख और हस्ताक्षर मिलता है। पत्र में दूसरी ओर स्वयं

परिशिष्ट– 2

डॉ0 हेडगेवार की हस्तलिपि
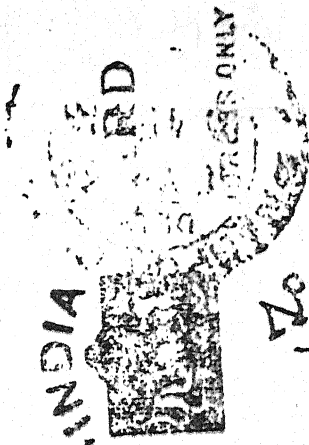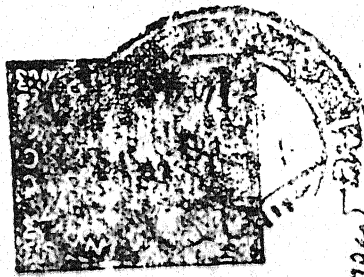
ही अपना नाम लिखने से अंग्रेजी का हस्ताक्षर भी स्पष्ट रीति से दिखायी देता है। पत्र में 'तीर्थस्वरूप' शब्द में 'र्थ' व 'मध्यंतरी' शब्द में 'त' अक्षर पत्र को फाइल में लगाने के लिए किए गये छेद में कट गया है।

परिशिष्ट ३

हेडगेवार वंशवृक्ष

परिशिष्ट— 3

डॉ0 हेडगेवार के प्रमुख चित्र

नेशनल मेडिकल कालेज कलकत्ता जहाँ डॉ० जी ने शिक्षा ली
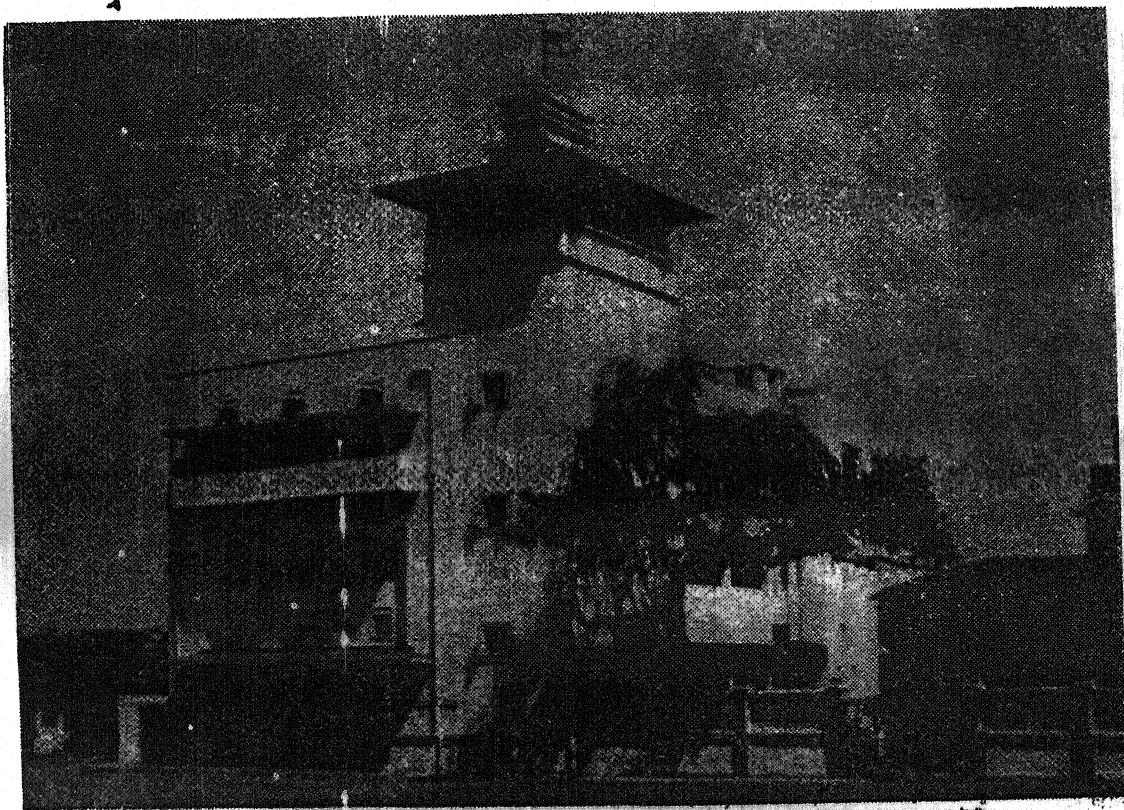
डॉ० हेडगेवार भवन
(रा० स्व० संघ का वर्तमान प्रधान कार्यालय नागपुर)

जंगल सत्याग्रह

कुर्सी पर बैठे हुए (बायीं ओर से):-[१] विट्ठलराव देव, [२] दादाराव परमार्थ, [३] डॉ० हेडगेवार, [४] भैयाजी कुम्बलवार [५] आप्पाजी जोशी ।
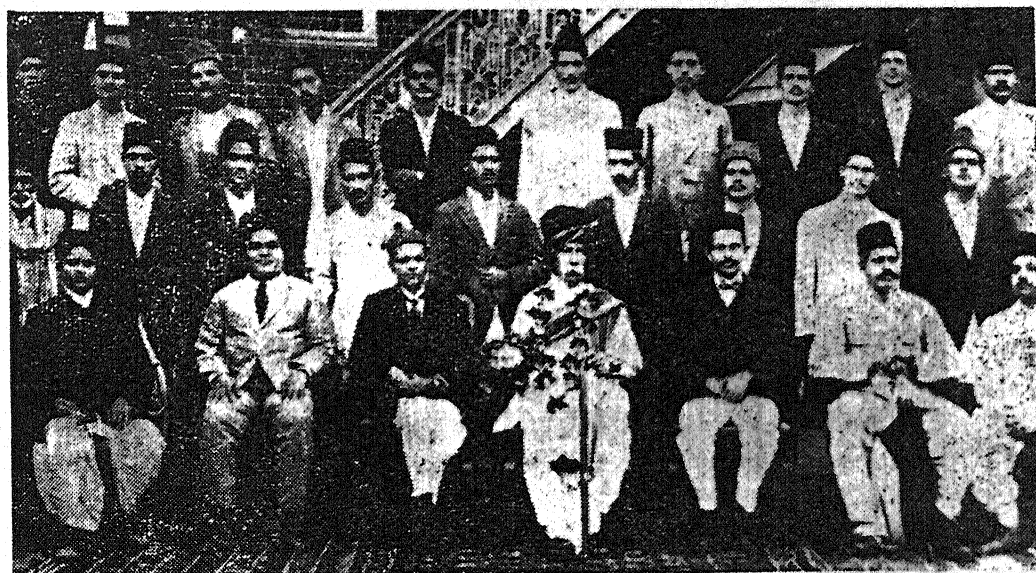
दि आइडियल डेमोक्रेटिक इन्श्योरेन्स कम्पनी लि०, नागपूर ।

बैठे हुए (बायीं ओर से) [१] दत्तोपंत परांजये, [२] दामुपन्त देशमुख, [३] शेषराव पाँढरीपाण्डे, [४] दादासाहब खापर्डे, [५] नाना साहब तेलंग, [६] डॉ० हेडगेवार [७] डी०डी०देश.पाण्डे,
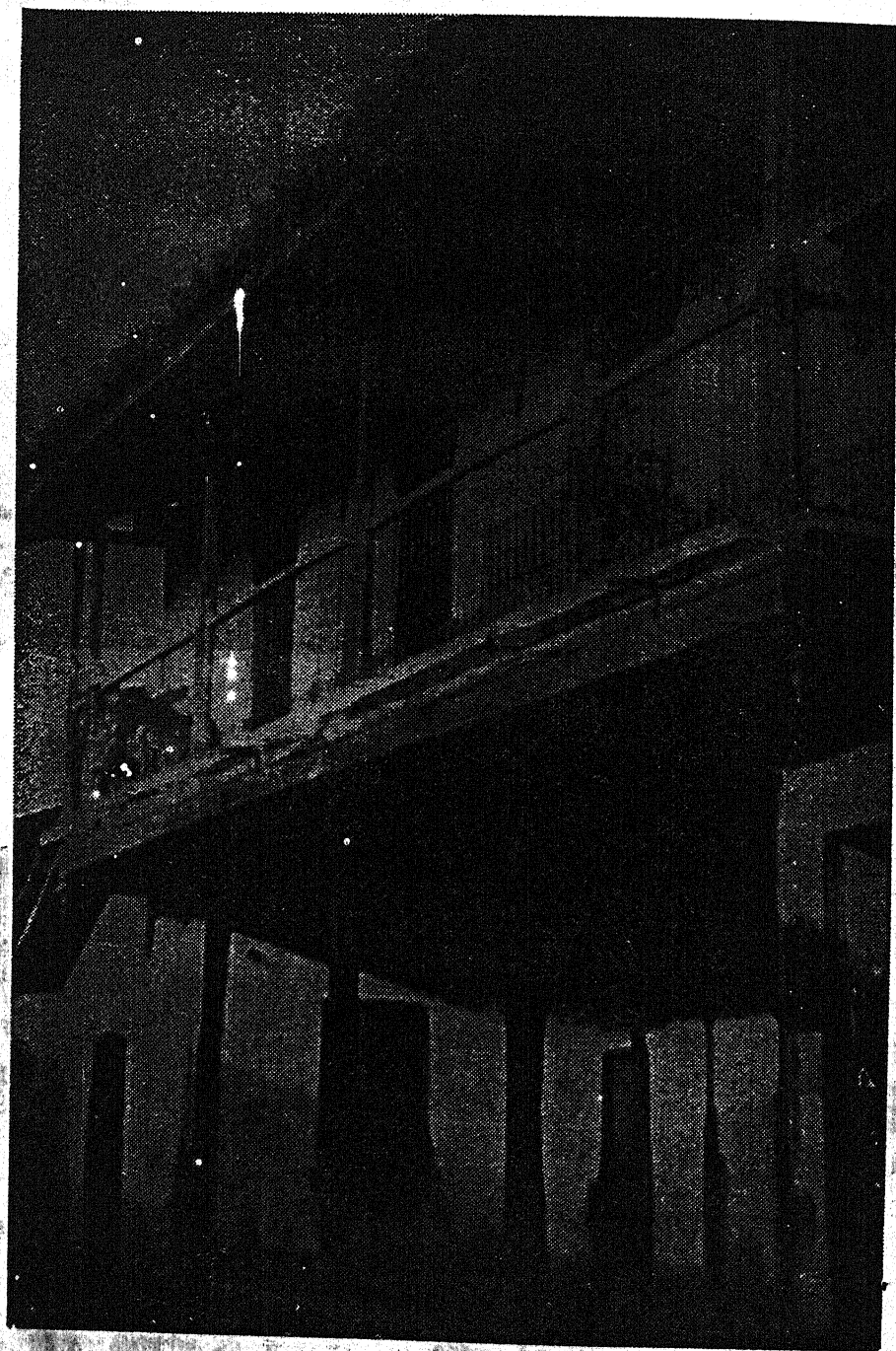
डॉ० हेडगेवार का निजी गृह
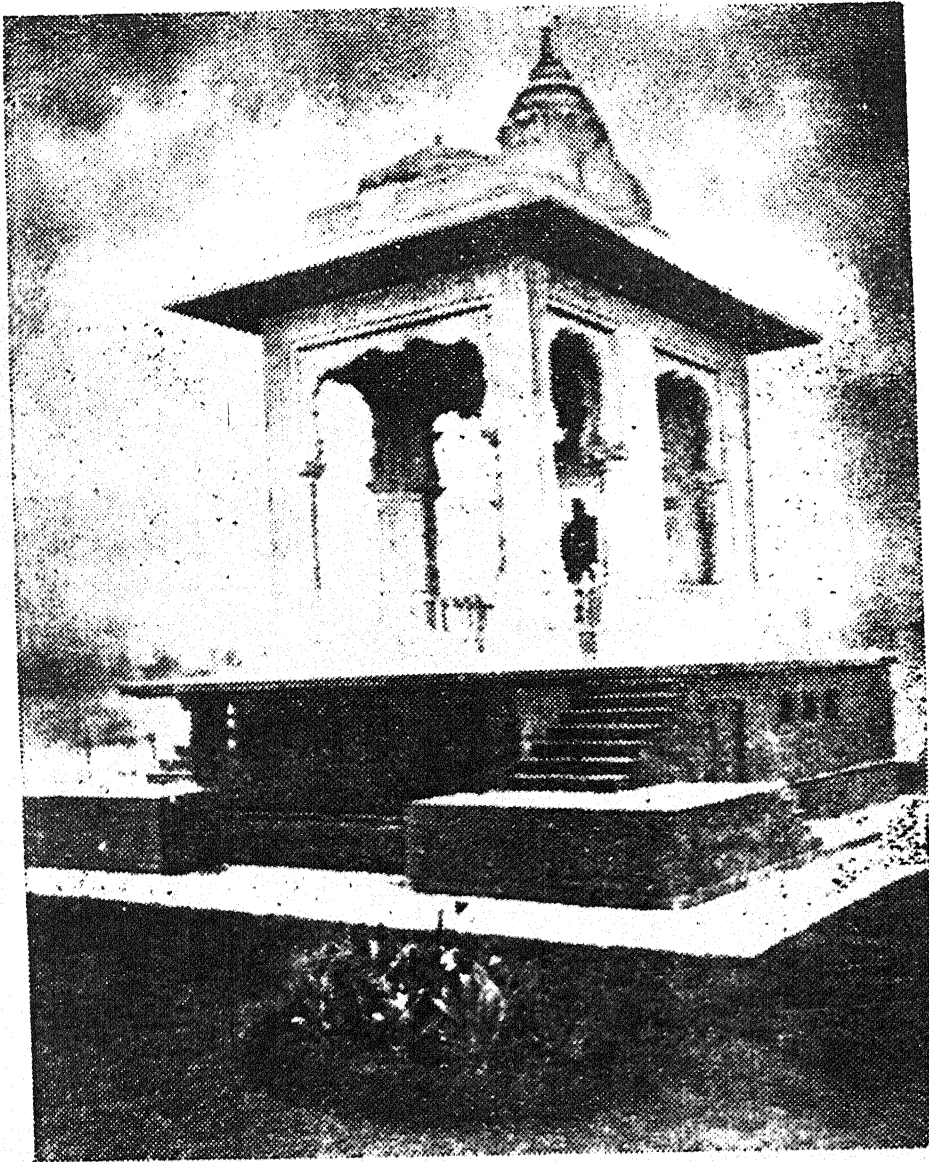
डॉ० हेडगेवार स्मृति-मंदिर, रेशमबाग, नागपुर
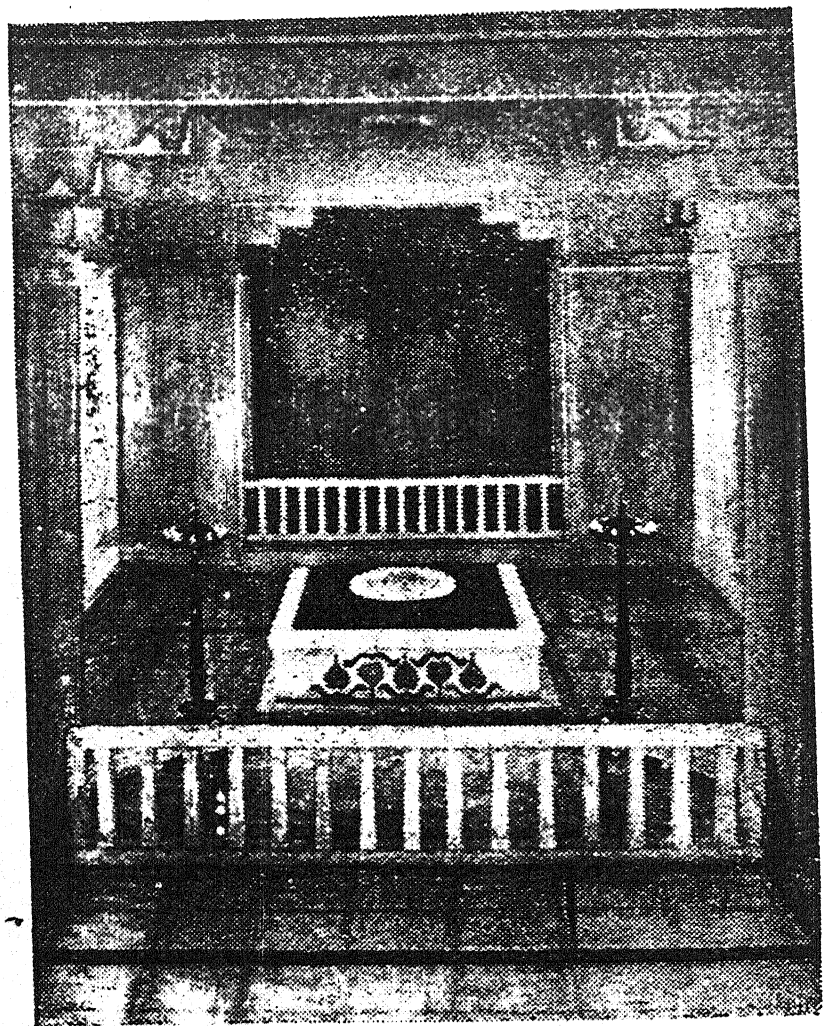
डॉ० हेडगेवार स्मृति मंदिर नागपुर, गर्भ-गृह

परिशिष्ट– 3

डॉ0 हेडगेवार का स्वर्णिम स्वप्न अखण्ड भारत

अखण्ड भारत

BUNDELKHAND UNIVERSITY
Central Library
Acc. No. 26416
Date 30/07/88
JHANSI